शरद जोशी

जन्म : 21 मई 1931, उज्जैन (म० प्र०

श्रीभट्टनारायणविरचित

वेणीसंहार

[हिन्दी अनुवाद, सकलाङ्गपूर्ण समीक्षात्मक भूमिका, व्याख्यात्मक टिप्पणी, यथोचित संशोधित जगद्धरकृत संस्कृत टीका तथा अन्य उपयोगी परिशिष्टों सहित]

सम्पादक :
डॉ० शिवराज शास्त्री
एम. ए., पी-एच. डी.
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र।



प्रकाशक
साहित्य भण्डार
सुभाष बाजार, मेरठ-२

प्रकाशक :
रतिराम शास्त्री
अध्यक्ष :
साहित्य भण्डार,
सुभाष बाजार, मेरठ।

इस शैली पर सम्पादित
लेखक की अन्य पुस्तकें
१. रत्नावली-नाटिका
२. भोज-प्रबन्ध
३. नैषधीय-चरित सर्ग १

संशोधित पञ्चम संस्करण १९७९
मूल्य : सात रुपये मात्र (७·००)।

मुद्रक :
सर्वोदय प्रेस,
जत्तीवाड़ा, मेरठ।
दूरभाष, ७४३५२



प्राक्कथन

वेणीसंहार-नाटक भारतीय विश्वविद्यालयों में संस्कृत में पाठ्यक्रम में प्रायः स्नातक अथवा स्नातकोत्तर उपाधि परीक्षाओं में पाठ्य पुस्तक के रूप में पढ़ाया जाता है। अंग्रेजी भाषा में इसके कई उत्तम संस्करण उपलब्ध है। इधर स्वाधीनतोत्तर काल में राष्ट्र-भाषा हिन्दी के माध्यम से पठन-पाठन की प्रवृत्ति हो गई है। प्रस्तुत संस्करण के सपादक के देखने में वेणीसंहार का कोई ऐसा हिन्दी संस्करण नही आया, जो उच्च कक्षाओं के छात्रों की आवश्यकताओ को पूर्ण करता हो।

वेणीसंहार का वर्तमान हिन्दी-संस्करण विश्वविद्यालयों के छात्रों की आवश्यकताओं को दृष्टि में रखकर तैयार किया गया है। इस संस्करण मे मूल-पाठ के सामने हिन्दी-अनुवाद दिया गया है, जिससे पाठक अनायास संस्कृत और हिन्दी का मिलान कर सकें। हिन्दी अनुवाद मे शब्दशः अनुवाद पर बल दिया गया है जिससे हिन्दी की सहायता से मूल को हृदयङ्गम किया जा सके। भूमिका में कवि और उनकी कृति का विशद विवेचन किया गया है।

मूल-पाठ को सुबोध बनाने के लिये सहायता के रूप मे जगद्धरकृत संस्कृत टीका भी आवश्यकतानुसार परिवर्धित अथवा संक्षिप्त करके दी गई है। कितने ही स्थलों पर संपादक की जगद्धर की व्याख्या से सहमति नही है। ऐसे स्थलों पर जगद्धर की टीका में परिवर्तन न करके साथ मे अपना अभीष्ट मत भी दे दिया है ऐसे स्थलों का व्याख्यात्मक टिप्पणी में विशेषतया निर्देश कर दिया गया है। पाठ-भेद और उनकी व्याख्या भी टिप्पणी में ही दी गई है।

पाठकों की सहायता के लिये मूल-पाठ और अनुवाद (पृ० २ से २६१ तक) के बाद श्लोकों की वर्णानुक्रम-सूची (पृ० २६२) वेणीसहार के सुभाषितों का संग्रह (पृ० २६६) तथा नाटक मे प्रयुक्त छन्दो के लक्षण स्थल-निर्देश सहित (पृ० २६८) दिये गये हैं।

इस संस्करण को तैयार करने मे संपादक ने वेणीसंहार के अंग्रेजी और हिन्दी के सभी उपलब्ध सस्करणो से सहायता ली है, इसलिये वह उन सब संस्करणों के विद्वान् सपादको के प्रति कृतज्ञ है।

यथाशक्ति प्रयत्न करने पर भी मुद्रण में कुछ अशुद्धियां रह गई हैं। इनके लिये हमे खेद है। पाठको से नम्र प्रार्थना है कि पढ़ना आरम्भ करने से पूर्व अन्त मे दिये गये शुद्धि-पत्र मे देखकर पाठ शुद्ध कर लेने की कृपा करें।

यदि यह सस्करण अपने पाठकों की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सका तो सम्पादक अपने प्रयत्न को सार्थक समझेगा। सपादक को विद्वान् अध्यापकों तथा छात्रों से अग्रिम सस्करण मे अभीष्ट सुधारो के लिये सुझाव पाकर अत्यधिक प्रसन्नता होगी।

१८ सितम्बर १९६०

२०१, उर्मिला शास्त्री रोड, मेरठ।

शिवराज शास्त्री

नाटक के पात्र

पुरुष-पात्र

युधिष्ठिर— ज्येष्ठ पाण्डव, मुख्य नायक।
भीम, अर्जुन— युधिष्ठिर के अनुज, कुन्ती-पुत्र।
नकुल, सहदेव— युधिष्ठिर के दूसरे अनुज, माद्री-पुत्र।
कृष्ण— अर्जुन का सारथि और सखा, विष्णु का अवतार।
धृतराष्ट्र— कौरव राजकुमारों का पिता, पाण्डवों का चाचा।
दुर्योधन— कौरवों में ज्येष्ठ, कौरव-राज।
कर्ण— दुर्योधन का मित्र, अङ्ग देश का राजा।
कृप— दुर्योधन आदि का गुरु, अश्वत्थामा का मामा।
अश्वत्थामा— द्रोणाचार्य का पुत्र, कृप का भानजा।
संजय— धृतराष्ट्र का सारथि।
सुन्दरक— अङ्गराज कर्ण का सेवक।
जयन्धर— युधिष्ठिर का कञ्चुकी।
विनयन्धर— दुर्योधन का कञ्चुकी।
चार्वाक— मुनिवेषधारी राक्षस, दुर्योधन का मित्र।
अश्वसेन— द्रोणाचार्य का सारथि।
रुधिरप्रिय— पाण्डवों का पक्षपाती एक राक्षस।
सूत— दुर्योधन का सारथि।
बुधक, पाञ्चालक— युधिष्ठिर के सन्देशहर।

स्त्री-पात्र

द्रौपदी— (कृष्णा, याज्ञसेनी)—पाण्डववधू, नायिका।
बुद्धिमतिका— द्रौपदी की सखी।
चेटी— द्रौपदी की दासी।
भानुमती— दुर्योधन की पत्नी।
सुवदना— भानुमती की सखी।

तरलिका—	भानुमती की दासी।
गान्धारी—	दुर्योधन की माता।
माता—	जयद्रथ की माता।
दु:शला—	जयद्रथ की पत्नी, दुर्योधन आदि की बहिन।
वसागन्धा—	राक्षसी, रुधिरप्रिय की पत्नी।
विहङ्गिका—	कौरव पक्ष की दासी।

कुछ अन्य संकेतित पात्र

भीष्म, द्रोण, अभिमन्यु, बलराम, धृष्टद्युम्न, दु:शासन, जयद्रथ, विदुर, शल्य, आदि।

विषय-सूची

भूमिका

भाग १—कवि

(१) भट्टनारायण का जीवन

संस्कृत कवियों के विषय में विश्वसनीय जानकारी का अभाव—संस्कृत के कवियों के सम्बन्ध में बहुधा जैसा होता है, वेणीसंहर नाटक के रचयिता भट्ट-नारायण के विषय में भी यही बात है। भट्टनारायण के जीवन, समय तथा अन्य व्यक्तिगत परिस्थितियों के सम्बन्ध में कोई निश्चित तथा विश्वस्त जान-कारी उपलब्ध नहीं है। सस्कृत के प्राचीन कवियों ने अपने विषय में प्रायः मौन रक्खा है।

भट्टनारायण के विषय में वेणीसंहार की प्रस्तावना से प्राप्त जानकारी—संस्कृत नाटककारों की प्रायः यह पद्धति रही है कि उन्होंने अपने नाटक की प्रस्तावना में पूर्ववर्ती कवियों और अपने कुल तथा विद्वत्ता आदि का कथन किया है। परन्तु भट्टनारायण ने अपने नाटक की प्रस्तावना में भी अपना कोई विशिष्ट परिचय नहीं दिया है। वेणीसंहार की प्रस्तावना से लेखक के विषय में केवल यही सूचना मिलती है कि यह नाटक किसी 'मृगराजलक्ष्मा' कवि भट्ट-नारायण की कृति है। यह भट्टनारायण कौन था, कहाँ का रहने वाला था, उसने किस कुल में जन्म लिया था आदि प्रश्नों का हमें उसकी रचना में कोई उत्तर नहीं मिलता।

भट्टनारायण के सम्बन्ध में वंशानुवर्णनों में उपलब्ध (chronicles) जान-कारी—परन्तु यह कुछ सौभाग्य की बात है कि बंगाल के राजाओं के सम्बन्ध में संस्कृत भाषा में निबद्ध कतिपय ऐतिहासिक लेख (chronicles) मिलते हैं जिनसे किसी भट्टनारायण के विषय में कुछ प्रकाश पड़ता है। यद्यपि यह

वर्णन ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत अधिक विश्वसनीय नहीं है, और न ही उनके आधार पर यह निश्चित किया जा सकता है कि उसमें जिस भट्टनारायण का उल्लेख हुआ है: वह वेणीसहार का रचयिता भट्टनारायण ही है, फिर भी भट्टनारायण के समय के विषय मे अन्य प्रमाणों से जिस परिणाम पर पहुँचते हैं, उनका इन ग्रन्थो से समर्थन होता है। इसलिये यह विश्वास किया जा सकता है कि इन लेखो का भट्टनारायण वेणीसहार का रचयिता हो सकता है। यह स्मरणीय है कि इन ऐतिहासिक लेखों मे भट्टनारायण को कही भी कवि अथवा किसी नाटक का रचयिता नही कहा गया है।

'क्षितीशवंशावलीचरितम्' के अनुसार भट्टनारायण मूल रूप में कान्य-कुब्ज का निवासी शाण्डिल्यगोत्रोत्पन्न सारस्वत ब्राह्मण था। वह बंगाल में सेन-वंश के प्रवर्तक 'आदिसूर' के निमन्त्रण पर अन्य चार ब्राह्मणों के साथ कन्नौज से जाकर बंगाल मे बस गया था, जहाँ आदिसूर ने उसे कोई वैदिक अनुष्ठान कराने के लिये दक्षिणा में पाँच गाँव दिये थे। धीरे-धीरे यह सम्पत्ति इतनी बड़ी हो गई थी कि भट्टनारायण को एक राजवंश का प्रवर्तक माना जाने लगा था।

परम्परा के अनुसार भट्टनारायण कलकत्ता के वर्तमान 'टैगोर' वंश का आदि पुरुष माना जाता है, परन्तु इसमे लिये कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है।

'क्षितीशवंशावलीचरित' 'वगराजघटक', 'राजावली' तथा 'दक्षिणराधीय-घटककारिका' आदि वंशानुवर्णन करने वाले ग्रन्थ इस बात मे तो एकमत हैं कि भट्टनारायण अन्य चार ब्राह्मणो के साथ कान्यकुब्ज से गौडदेश बंगाल) आया था। लेकिन भट्टनारायण के कान्यकुब्ज से गौड देश जाने के कारणो के विषय मे उनकी अपनी-अपनी अलग कथा है।

क्षितीशवंशावलीचरित के अनुसार आदिसूर शूद्र राजा था, इसलिये बंगवासी वैदिक विद्वानो द्वारा उसके लिये यज्ञ करने से निषेध कर देने का आदिसूर ने कान्यकुब्ज के राजा से योग्य वैदिक ब्राह्मण भेजने की प्रार्थना की थी। दूसरी कथा के अनुसार कभी वगदेश मे अनावृष्टि हुई तो यज्ञ द्वारा वर्षा प्राप्त करने के लिये कान्यकुब्ज से पाँच ब्राह्मण निमन्त्रित किये गये थे। बङ्गराजघटक के अनुसार 'आदिसूर' ऐसा यज्ञ करना चाहता था जिससे भगवान् प्रसन्न हो जाये। उसके राज्य में रहने वाले ब्राह्मण कोई उपाय न बता सके तो उसने कान्यकुब्ज

से पाँच ब्राह्मण बुलाये । एक अन्य कथा के अनुसार वंगदेश पर आने वाली विपत्तियों के लक्षण देखकर 'आदिशूर' ने उनके निवारण के लिये कान्यकुब्ज से पाँच ब्राह्मण बुलवाये । एक अन्य कथा के अनुसार इन ब्राह्मणों ने धार्मिक उत्पीडन के कारण कान्यकुब्ज का त्याग किया था ।

भट्टनारायण की जाति—कुछ विद्वानो ने भट्टनारायण की जाति के विषय मे सन्देह किया है । कुछ लोगो ने वेणीसंहार की प्रस्तावना मे भट्टनारायण द्वारा अपने लिये प्रयुक्त 'मृगराजलक्ष्मण.' शब्द से निर्दिष्ट 'मृगराज' उपाधि मे 'सिंह' का सकेत देखकर उसे क्षत्रिय माना है । दूसरे लोग उसके नाम के 'भट्ट' अश से उसे ब्राह्मण बतलाते हैं । कुछ विद्वानो ने वेणीसहारगत आन्तरिक प्रमाणों—जैसे, विदूषक पात्र का अभाव, कर्ण तथा अश्वत्थामा के कलह में अश्वत्थामा के प्रति कवि की सहानुभूति और तृतीय अङ्क मे राक्षस-राक्षसी के संवाद में ब्राह्मणशोणित खल्वेतद् । गलं दहद्दहत्प्रविशति' इस सदर्भ द्वारा ब्राह्मण जाति की श्रेष्ठता के प्रति कवि की आस्था आदि—से वेणीसहार के कवि को ब्राह्मण सिद्ध किया है ।

परन्तु तथ्य यह है कि न तो 'मृगराज' उपाधि से भट्टनारायण को क्षत्रिय सिद्ध किया जा सकता है और न ही अन्य दिये गये प्रमाणों से उसे ब्राह्मण सिद्ध किया जा सकता है । 'कवेर्मृगराजलक्ष्मण' इत्यादि प्रसङ्ग से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि कवि स्वय को 'कविसिह' (कवियो मे सिंह के समान) बतलाना चाहता है । दूसरे यदि हम भट्टनारायण के समय मे अथवा उसके पूर्वकाल में क्षत्रियो के प्रचलित नामो पर दृष्टि डालें तो पता चलेगा कि उस काल मे क्षत्रियो के नाम के अन्त मे 'सिंह' प्राय. नही आता था । भट्टनारायण के ब्राह्मण होने के पक्ष में वेणीसहार से दिये गये आन्तरिक प्रमाणों मे भी कोई बल नही है, क्योंकि उस काल में ब्राह्मण की श्रेष्ठता और अवध्यता आदि के प्रति ब्राह्मण-धर्मावलम्बी प्रत्येक मनुष्य का, चाहे वह किसी भी जाति या वर्ण का था, समान विश्वास था ।

किसी विशेष प्रमाण के अभाव मे भी, केवल 'क्षितीशवंशावलीचरित' आदि की परम्परा के आधार पर यह विश्वास किया जा सकता है कि भट्टनारायण जाति से ब्राह्मण था ।

भट्टनारायण के धार्मिक विश्वास—वेणीसंहार की प्रस्तावना में नान्दी श्लोकों में भट्टनारायण ने 'हरि' 'कसद्विष्' (कृष्ण) और धूर्जटि (शिव) तीन देवों की स्तुति की है। इसलिये यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है कि वह शैव था या वैष्णव। वेणीसंहार के प्रथम अङ्क के श्लोक २३ और षष्ठ अङ्क के श्लोक ४३, ४५ और ४६ के आधार पर भट्टनारायण को वैष्णव कहा जाता है। कुछ विद्वान् उसे वैष्णवों में भी पाञ्चरात्र सम्प्रदाय का अनुयायी मानते हैं। परन्तु वेणीसंहार में भीम और युधिष्ठिर के मुख से कृष्ण की दिव्यता के प्रति प्रकट किये गये विश्वास को कवि का अपना विश्वास नहीं माना जा सकता है, क्योंकि महाभारत में भी, जहाँ से नाटक की कथा ली गई है, कृष्ण पाण्डवों की मति में भगवान् ही है। दूसरे श्लोक १.२३ और ६.४३, ४५, ४६ में ऐसे किसी सिद्धान्त का उल्लेख नहीं हुआ है, जो एकमात्र पाञ्चरात्र सम्प्रदाय का सिद्धान्त हो। श्लोक ६ ४३ से प्रतीत होता है कि वह दार्शनिक सम्प्रदायों में से किसी एक सम्प्रदाय का अनुयायी नहीं था, क्योंकि इस श्लोक में कवि ने साख्य और वेदान्त के सिद्धान्तों को मिला दिया है।

भट्टनारायण का पाण्डित्य—भट्टनारायण का केवल एक ग्रन्थ वेणीसंहार ही उपलब्ध है। इसलिये उसके पाण्डित्य के सम्बन्ध में केवल इसके ही आधार पर विचार बनाया जा सकता है। वेणीसंहार के अध्ययन से पता चलता है कि भट्टनारायण साख्य, योग और वेदान्त के मन्तव्यों से परिचित थे। भट्टनारायण का महाभारत से अच्छा परिचय था, यह तो इसी से सिद्ध है कि उसने अपने नाटक की कथावस्तु महाभारत से ली है। नाटक में आये शिव, विष्णु तथा कृष्ण और राधा सम्बन्धी उल्लेखों से प्रतीत होता है कि भट्टनारायण को इतिहास, पुराण तथा भागवत आदि शास्त्रों का भी अच्छा ज्ञान था। नाटक में प्रयुक्त विविध छन्दों तथा अलङ्कारों का प्रयोग उसके काव्य-शास्त्र के ज्ञान को प्रकट करता है। नाट्यशास्त्र का तो उसने गहन अध्ययन किया प्रतीत होता है। परवर्ती नाट्य-शास्त्रकारों ने नाट्याङ्गों के उदाहरण अधिकतर वेणीसंहार और रत्नावली से ही दिये हैं। भट्टनारायण वैदिक कर्मकाण्ड से भली-भाँति परिचित था। प्रचलित परम्परा के अनुसार वह चार

अन्य ब्राह्मणों के साथ यज्ञ कराने के लिये गौड देश गया था। इसकी पुष्टि इस बात से भी होती है कि उसने युद्ध को यज्ञ का रूपक दिया है।[1] छठे अङ्क में युधिष्ठिर द्वारा गुप्तचरों को दिये गये निर्देशों से कवि का अर्थशास्त्र तथा राजनीति सम्बन्धी ज्ञान परिलक्षित होता है। भट्टनारायण का कदाचित् भाषा पर पूर्ण अधिकार नही स्वीकार किया जा सकता है। उसकी भाषा अनेक स्थलो पर पाणिनीयव्याकरण से असम्मत है। स्वयं काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति के रचयिता वामन ने वेणीसहार के तीन स्थलो पर भट्टनारायण के प्रयोगो को व्याकरणसम्मत सिद्ध करने का प्रयत्न किया है।[2] यह निश्चय से नही कहा जा सकता है कि वेणीसहार में व्याकरण-सम्बन्धी अशुद्धियाँ भट्टनारायण के असामर्थ्य के कारण हुई है अथवा प्रचलित प्रयोग-पद्धति (Colloquialism) अपनाने के कारण अथवा महाभारत के प्रभाव से।

(२) भट्टनारायण का समय

भट्टनारायण का समय निश्चित करने में आन्तरिक साक्ष्य का अभाव—जब कोई लेखक अपने समय के विषय मे कोई साक्षात् उल्लेख नही करता है तो उसका समय निश्चित करने के लिये दो उपाय अपनाये जाते है—प्रथम यह देखा जाता है कि क्या लेखक ने किसी पूर्ववर्ती लेखक अथवा घटना का उल्लेख किया है जिससे उसके काल की पूर्व-सीमा निर्धारित की जा सके। दुर्भाग्य से भट्टनारायण ने वेणीसहार में कोई ऐसा संकेत नही दिया है जिससे निश्चित रूप से यह जाना जा सके कि उसके समय की पूर्व सीमा क्या हो सकती है।

भट्टनारायण का समय निश्चित करने मे बाह्य साक्ष्य—दूसरा उपाय यह है कि यह देखा जाय कि उस लेखक या उनकी कृति का किन परवर्ती

---

१ वेणीसंहार १/२५

२ सुभ्रू कि संभ्रमेण' २·१६ (इस सस्करण में 'भीरु कि संभ्रमेण' पाठ अपनाया गया है); 'मंथमयितुमारब्ध' (इस सस्करण में 'सयन्तुमारब्धः' पृ० ३४); 'पतितं वेत्स्यसि क्षितौ' (इस संस्करण में 'पतितं द्रक्ष्यसि क्षितौ' ३/४१)।

लेखकों ने उल्लेख किया है अथवा उसकी कृति में वर्णित किसी घटना विशेष का कथन किया है अथवा उसके किसी अंश को उद्धृत किया है। इस प्रकार किसी लेखक या कृति का समय निर्धारित करने के उपाय को बाह्य साक्ष्य कहते हैं। इस प्रकार के साक्ष्य से किसी लेखक अथवा कृति के समय की उत्तर सीमा निर्धारित हो जाती है। सौभाग्य से भट्टनारायण के समय की उत्तर सीमा निर्धारित करने के लिये पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है। काव्यालङ्कार-सूत्रवृत्तिकार वामन ने अपने ग्रन्थ में कितने ही उदाहरण वेणीसंहार से लिये हैं और वेणीसंहार के कुछ प्रयोगों को व्याकरणसम्मत सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। ध्वन्यालोककार आनन्दवर्धन, दशरूपक के टीकाकार धनिक, काव्य-प्रकाश के रचयिता मम्मट, सरस्वती-कण्ठाभरण के लेखक भोजदेव तथा दूसरे अलङ्कारशास्त्रियों ने अपने ग्रन्थों में गुण दोष, अलङ्कार तथा सन्ध्यङ्ग आदि के अनेक उदाहरण वेणीसंहार से लिये हैं। जिन लेखकों ने वेणीसंहार को उद्धृत किया है, उनमें सबसे प्राचीन काव्यसूत्रालङ्कारवृत्ति का रचयिता वामन है। वामन का समय ईसा की आठवीं शताब्दी का मध्य भाग कहा जाता है। काश्मीरी पण्डितों में प्रचलित परम्परा के अनुसार यह वामन काश्मीर के राजा जयापीड (७७९–८१३ ई०) का मन्त्री था। वामन ने अपने ग्रन्थ में भवभूति कवि को भी उद्धृत किया है। भवभूति कान्यकुब्ज के राजा यशोवर्मा के आश्रित था जिसे ७४० ई० के लगभग काश्मीर नरेश मुक्तापीड ललितादित्य ने परास्त किया था। इसलिये काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति का लेखक वामन आठवीं शताब्दी के प्रथम भाग के पश्चात् ही रहा होगा। काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति और काशिकावृत्ति के लेखक वामन एक नहीं हो सकते, क्योंकि काशिका का समय ६५० ई० से बाद नहीं हो सकता है।[1] इसलिये भट्टनारायण का समय ईसा की आठवीं शताब्दी के मध्य भाग से पूर्व होगा। लेकिन वह वामन से कितने पहले हुआ है, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है।

ग्रिल महोदय ने भट्टनारायण का समय ईसा की छठी या सातवीं शताब्दी माना है। कुछ लोग प्राचीन परम्परा पर विश्वास करके भट्टनारायण को सेनवंश के प्रवर्तक आदिसूर का समकालीन मानते हैं और आदिसूर का

१ देखिये, मैक्डानल : हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिट्रेचर पृ० ४३ और ४३२।

समय ईसा से पूर्व ३०० वर्ष मानते हैं। प्रो० विल्सन ने वेणीसंहार का समय ईसा की ८वीं या ९वीं शताब्दी माना है। उनके मत का आधार यह है कि अबुलफजल के अनुसार आदिसूर ईसा की १२वीं शताब्दी में वर्तमान राजा बल्लालसेन से पूर्व २३ वाँ राजा था, यदि मध्यवर्ती राजाओं के राज्यकाल की अवधि ३०० वर्ष मान ली जाय तो आदिसूर का समय ८वीं या ९वीं शताब्दी मानना उचित ही होगा। कनिंघम महोदय ने सेनवंश का शासन-काल ९५०–११०८ ई० माना है। एक अन्य श्रोत के अनुसार भी आदिसूर का समय, यदि आदिसूर और शूरसेन एक ही व्यक्ति हो तो, ६५० ई० के आसपास सिद्ध होता है। ह्वान्त्सांग के वर्णन के अनुसार शूरसेन नेपाल के राजा अंशुवर्मन् (६४४–६५२ ई०) की बहिन भोगवती का पति था। इसलिये आदिसूर और परिणाम-स्वरूप, भट्टनारायण का समय ७वीं शताब्दी का उत्तर भाग माना जा सकता है। भट्टनारायण सम्भवतः भवभूति का समकालीन रहा हो।

भट्टनारायण बाण का परवर्ती प्रतीत होता है। बाणभट्ट ने हर्षचरित की प्रस्तावना में पूर्ववर्ती कवियों के उल्लेख में भट्टनारायण और भवभूति का कथन नहीं किया है। इसलिये सम्भव है कि भट्टनारायण बाण के पश्चात् हुआ हो। दूसरे, भट्टनारायण की भाषा और शैली से भी यही प्रतीत होता है कि वह बाण का परवर्ती था।

इस प्रकार भट्टनारायण का समय कहीं ६५० ई० और ७५० ई० के मध्य मानना बिल्कुल उचित और सम्भव प्रतीत होता है।

(३) भट्टनारायण की रचनायें

भट्टनारायण की इस समय केवल एक कृति वेणीसंहार उपलब्ध है। परन्तु सुभाषित-संग्रहों में भट्टनारायण के नाम से उद्धृत कुछ ऐसे श्लोक मिलते हैं, जो वेणीसंहार में नहीं पाये जाते। इसलिये यह सम्भव है कि भट्टनारायण की कोई अन्य रचनायें भी रही हों। प्रो० गजेन्द्रगडकर ने किसी हरिशर्मा द्वारा प्रतिलिपि की गई दशकुमारचरित की एक पाण्डुलिपि के आधार पर भट्टनारायण को दशकुमारचरित की पूर्वपीठिका का रचयिता माना है।[1]

---

१ ए. बी. गजेन्द्रगडकर, दी वेणीसंहार : ए क्रिटिकल स्टडी, पृ० २१, २९।

पाण्डुलिपियों की एक सूची में 'जानकीहरण' नाम के एक नाटक को भट्टनारायण की रचना बतलाया गया है।[1]

परन्तु यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है कि सुभाषित-संग्रहों में जिस भट्टनारायण के नाम से श्लोक उद्धृत किये गये हैं, पाण्डुलिपियों की सूची में जिस भट्टनारायण को जानकीहरण नाटक का रचयिता कहा गया है और हरिशर्मा ने जिस भट्टनारायण को दशकुमारचरित की पूर्वपीठिका का रचयिता कहा है, वह सब भट्टनारायण वही है, जो वेणीसंहार का लेखक भट्टनारायण है। इसलिये भट्टनारायण सम्बन्धी ज्ञान की वर्तमान दशा में हमें केवल भट्टनारायण की एकमात्र कृति वेणीसंहार से ही सन्तुष्ट रहना चाहिये।

(४) संस्कृत-साहित्य में भट्टनारायण का स्थान

भट्टनारायण प्राचीन आलोचकों की दृष्टि में—जैसा की पहले संकेत किया जा चुका है, प्राचीन अलङ्कार-शास्त्रियों ने गुण, दोष, अलङ्कार तथा नाटयङ्गों के सिद्धान्तों के उदाहरण के लिये प्रायः भट्टनारायण के वेणीसंहार का आश्रय लिया है। इससे प्रतीत होता है कि प्राचीन आलोचक उसकी कृति से अत्यधिक प्रभावित थे। साथ ही यह भी सत्य है कि प्राचीन आलोचकों ने जैसे भास, कालिदास आदि प्राचीन कवियों की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है, उस प्रकार भट्टनारायण की प्रशंसा में किसी का मुख नहीं खुला है, प्रत्युत मम्मट आदि काव्यालोचकों ने उसकी कृति में दोष प्रदर्शित करके उसकी निन्दा की है।

भट्टनारायण अपनी दृष्टि में—भट्टनारायण ने अपने विषय में कोई विशिष्ट सूचना नहीं दी है। लेकिन वेणीसंहार की भूमिका से जो सूचना मिलती हैं, उससे प्रतीत होता है कि उसे अपने काव्य पर गर्व था। उसने स्वयं को 'कवेर्मृगराजलक्ष्मण.' कहा है। यदि वेणीसंहार के कुछ संस्करणों में छठे अङ्क के अन्त में पाया जाने वाला श्लोक, जिसमे कवि ने कालचक्र को उपालम्भ दिया है भट्टनारायण की ही रचना हो तो प्रकट है कि उसे विपरीत परिस्थितियों

---

१ ए बी. गजेन्द्रगडकर, दी वेणीसंहार; ए क्रिटिकल स्टडी, पृ० २३।

में भी अपने इस 'महान् प्रबन्ध' की अमरता की कामना थी।[1]

भट्टनारायण कवि के रूप मे—भट्टनारायण ने अपने नाटक वेणीसंहार में किसी एक रीति का अनुसरण न करके भाव और परिस्थिति के अनुसार गौडी और वैदर्भी दोनो रीतियो का उपयोग किया है। यद्यपि अनेक आलोचकों ने कथावस्तु की शिथिलता और सवादो की नीरसता तथा उनकी भाषा की क्लिष्टता के कारण वेणीसंहार की कटु आलोचना की है, परन्तु उसके कवि-पक्ष की श्लाघ्यता के विषय मे सभी एकमत है। भट्टनारायण के काव्य में ओज, शक्ति, गति तथा प्रभावोत्पादकता है। उसकी भाषा मे बाँकापन है, जिससे वह भाव और रस के अनुरूप ढल जाती है। भट्टनारायण वीर, वीभत्स, करुण और शृङ्गार रस की अभिव्यक्ति मे पूर्ण रूप से सफल रहा है। वीररस में उसकी पदयोजना समासबहुल और ओजपूर्ण है।

भट्टनारायण की एक अन्य विशेषता यह है कि वह ध्वनि और अर्थ की योजना की कला मे निपुण था। उसकी अक्षरयोजना भाव के अनुरूप होती है। 'चञ्चद्भुजभ्रमितचण्डगदाभिघात···' इत्यादि श्लोक में सयुक्त अक्षरो की योजना भीम के क्रोध और उत्साह को प्रकट करने मे सर्वथा सफल रही है। इसी प्रकार 'मन्थायस्तार्णवाम्भः··' इत्यादि श्लोक मे अक्षरो की योजना ऐसी है कि पाठक को दुन्दुभि के बजने की अनुभूति होने लगती है।

भट्टनारायण ने छन्दो का भी समुचित प्रयोग किया है। 'कुरु घनोरु पदानि शनैः शनैः २/२० में द्रुतविलम्बित, अद्यैवावां रणमुपगतौ इत्यादि ४/१५ मे मन्दाक्रान्ता तथा 'समहिवयसा ध्रुवेणाल्प' इत्यादि ६/२४ में हरिणी छन्द का प्रयोग परिस्थिति और भावों की प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति मे अत्यधिक सहायक हुआ है।

भट्टनारायण ने अनेकविध अलङ्कारो का भी समुचित प्रयोग किया है। साभिप्राय पदों और काकु के प्रयोग के लिये भट्टनारायण विशेष रूप से

---

१. काव्यालापसुभाषितव्यसनिनस्ते राजहंसा गता—
स्ता गोष्ठ्यः क्षयमागता गुणलवश्लाघ्यास्तु वाचः सताम्।
सालङ्काररसप्रसन्नमधुराकाराः कवीनां गिरः
प्राप्ता नाशमयं तु भूमिवलये जीयात्प्रबन्धो महान्॥

उल्लेखनीय है। भट्टनारायण ने अर्थान्तरन्यास अलङ्कार का भी अच्छा प्रयोग किया है। उसके कुछ अर्थान्तरन्यास तो कालिदास के अर्थान्तरन्यासों के समान सग्रहणीय हैं। उसने संस्कृत साहित्य को अनेक सूक्तियाँ भी दी है, जो अवसर पर उद्धृत किये जाने पर वक्ता के वचन को गौरव प्रदान कर सकती हैं। (देखिये, पृ० २९६)

भट्टनारायण नाटककार के रूप में—नाटककार के रूप में भट्टनारायण को सफल नही कहा जा सकता है। भट्टनारायण का सबसे बड़ा दोष यह है कि उसने अपने नाटक की कथावस्तु का आधार महाभारत की विस्तृत तथा प्रसिद्ध कथा को बनाया। महाभारत की कथा को नाटक के कलेवर में सीमित करने के लिये उसे वर्णनात्मक शैली का आश्रय लेना पड़ा। जिससे उसमें गतिहीनता तथा शिथिलता आ गई। दूसरे अपने युग के प्रभाव के कारण उसने दीर्घ-समासयुक्त शैली का आश्रय लिया विशेषकर गद्यमय संवादात्मक भाग में, जिसके कारण उसकी भाषा नाटक के उपयुक्त नही रही। भट्टनारायण का एक अन्य दोष वर्णनों तथा पात्रो के चित्रण मे अनुपात का अभाव है, जिससे नाटकीय प्रभाव नष्ट हो गया है।

इन दोषों के रहते हुए भी वेणीसंहार को एकदम असफल कृति नहीं कहा जा सकता। भट्टनारायण चरित्र-चित्रण करने मे, जो नाटक का एक आवश्यक गुण माना जाता है, पूर्ण सफल रहा है। उसके पात्र महाभारत की जनप्रिय कथा के लोक विख्यात व्यक्ति हैं। इसलिये भट्टनारायण की यह सीमायें थी कि वह अपने पात्रों को अपने नाटक की कथावस्तु के अनुरूप यथेच्छ चित्रित नही कर सकता था। फिर भी उसके चरित्र-चित्रण में विशदता, सजीवता है।

वेणीसंहार के तीसरे अङ्क मे भट्टनारायण को नाटकीय व्यापार की दृष्टि से सर्वाधिक सफलता मिली है। अश्वत्थामा और कर्ण का वाक्कलह नाटकीय व्यापार के लिये पर्याप्त अवसर प्रदान करता है। (आगे 'वेणीसंहार की समीक्षा देखिये)

भट्टनारायण पर पूर्ववर्ती कवियों का प्रभाव—भट्टनारायण अवश्य ही अपने पूर्ववर्ती कवियों के काव्य से परिचित रहा होगा और उनका भट्ट-

नारायण पर प्रभाव पड़ा होगा। लेकिन भट्टनारायण की रचना पर पूर्ववर्ती कवियों का कोई प्रभाव लक्षित नहीं होता।

भट्टनारायण की अन्य कवियों से तुलना—यह स्पष्ट है कि भट्टनारायण मे कालिदास जैसी स्वाभाविकता तथा सरसता, बाण जैसा परिष्कार और भवभूति जैसी उदात्तता नही है। भट्टनारायण को कला की दृष्टि से हर्षवर्धन का समकक्ष भी नहीं कहा जा सकता। भट्टनारायण को द्वितीय श्रेणी का ही कवि तथा नाटककार कहा जा सकता है। भट्टनारायण की तुलना मुद्राराक्षस के रचयिता विशाखदत्त से की जा सकती है। इन दोनों की भाषा में ओज तथा गति है। समय की दृष्टि से भट्टनारायण भवभूति के समीप है। शैली की कृत्रिमता के विचार से भी भट्टनारायण और भवभूति में समानता है, लेकिन काव्यकला की दृष्टि से भट्टनारायण की भवभूति से कोई तुलना नही हो सकती। प्रकृति की भव्यता और मानव-हृदय के चित्रण में भट्टनारायण में भवभूति जैसी सिद्धहस्तता नही पाई जाती है।

भाग २—वेणीसंहार

(१) वेणीसंहार की कथावस्तु

पूर्वकथा—कौरव और पाण्डव हस्तिनापुर के राजवंश से सम्बद्ध राजकुमार थे। पाण्डु की अकाल मृत्यु के पश्चात् उसका नेत्रहीन भाई धृतराष्ट्र हस्तिनापुर के राजसिंहासन पर आसीन हुआ था। इसलिये उत्तराधिकार के विवादास्पद होने के कारण उभयपक्षी राजकुमारों में शैशवकाल से ही स्पर्धा और ईर्ष्या प्रारम्भ हो गई थी। कौरवों में ज्येष्ठ दुर्योधन छल-बल से किसी भी प्रकार पाण्डव राजकुमारों को राजच्युत करना चाहता था। पाण्डवों ने इन्द्रप्रस्थ में अपना नया राज्य स्थापित कर लिया था। लेकिन दुर्योधन ने अपने मामा शकुनी की सहायता से पाण्डवों में ज्येष्ठ युधिष्ठिर को द्यूत-क्रीडा में पराजित करके अन्य पाण्डवो को और उसकी पत्नी द्रौपदी को अपना दास बना लिया था। भरी राजसभा मे द्रौपदी के वस्त्र तथा केश खींचकर उसे अपमानित किया गया और पाण्डवो को १३ वर्ष तक वन में अज्ञातवास में रहने के लिये विवश किया गया।

वनवास को जाते समय पाण्डवों ने कौरव राजकुमारो से प्रतिशोध लेने की प्रतिज्ञा की। पाण्डव राजकुमारों में बलिष्ठ पवन-पुत्र भीम ने प्रतिज्ञा की थी कि वह दु:शासन के वक्षस्थल से रुधिर का पान करेगा और दुर्योधन की जघाओं को तोड़कर उसके रुधिर से द्रौपदी की खुली वेणी को बाँधेगा। यह नाटक जैसाकि इसके शीर्षक 'वेणीसहार' से स्पष्ट है, द्रौपदी की खुली वेणी के संहार (बाँधने) की घटना से सम्बद्ध है।

वनवास की शर्तें पूरी कर लेने के बाद युधिष्ठिर कृष्ण को दूत बनाकर सन्धि के लिये दुर्योधन के पास भेजता है। इस समाचार को सुनकर भीम तथा द्रौपदी दोनों ही रुष्ट होते हैं, क्योंकि वे दोनों कौरवो को पराजित करके अपने अपमान का बदला लेना चाहते हैं। यही से नाटक आरम्भ होता है।

प्रथम अङ्क—मङ्गलाचरण के पश्चात् सूत्रधार श्लिष्ट पद्य द्वारा इस बात की सूचना देता है कि पाण्डव तथा कौरवो मे सन्धि कराने के लिये भगवान् कृष्ण स्वयं दूत बनकर गये हैं। सूत्रधार के इस वचन को लेकर ही क्रुद्ध भीमसेन का

इस घटना से असन्तुष्ट होकर युधिष्ठिर ने कौरवों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी है। रणदुन्दुभि का शब्द सुनकर भीम प्रसन्न होता है। भीम तथा सहदेव युद्धभूमि मे जाने के लिये द्रौपदी से विदा लेते है। द्रौपदी उनके मङ्गल की कामना करती है और प्रार्थना करती है कि वह युद्धभूमि से लौटकर उसे पुन सान्त्वना दे और क्रोधावेश के कारण युद्धभूमि में अपने शरीर की उपेक्षा न करे। इस पर भीमसेन पाण्डवों की युद्ध-निपुणता से द्रौपदी को आश्वस्त करता है।

द्वितीय अङ्क—युद्ध आरम्भ हो चुका है। भीष्म तथा अभिमन्यु आदि कुछ प्रमुख योद्धा मारे जा चुके हैं। भानुमती अपने पति की विजय-मङ्गल कामना से व्रत करना चाहती है। उसने रात्रि मे दुःस्वप्न देखा है, जिससे वह आशङ्कित है। सखी के आग्रह पर वह दुःस्वप्न को सुनाती है, जिससे देवता प्रशशन आदि उपायों द्वारा उसका शमन किया जा सके। स्वप्न में उसने देखा कि नकुल ने सौ सर्पों को मार डाला है। इसके द्वारा नाटककार ने भावी घटना की सूचना दी है। राजा छिपकर भानुमति के स्वप्न के विषय मे सुनता है। पहले तो वह भी शङ्कित होता है, पर बाद मे शका हट जाती है। सूर्य की पूजा करती हुई भानुमति की दासी ज्यो की किसी दूसरी परिचर्या मे व्यस्त है, वह अर्घ्यपात्र लेकर रानी के सम्मुख उपस्थित हो जाता है। सूर्य-पूजा के बाद ही झझावात आता है, और दुर्योधन तथा भानुमति राजमहल में चले जाते हैं। यहाँ उनमें प्रेमलाप होता है। इसी बीच जयद्रथ की माता आकर यह खबर देती है कि अभिमन्यु के वध से दुःखी अर्जुन ने जयद्रथ का वध करने की प्रतिज्ञा की है। राजा को जयद्रथ की रक्षा का उपाय करना चाहिये। दुर्योधन उसके भय को दूर करने तथा युद्ध के लिये प्रस्थान करता है।

तृतीय अङ्क—इस अङ्क के प्रवेशक मे राक्षस-राक्षसी के द्वारा युद्ध-भूमि की भीषणता और द्रोण के वध की सूचना दी जाती है। इसी अंक में पितृ-वध के शोक से संतप्त क्रुद्ध अश्वत्थामा का प्रवेश होता है। कृपाचार्य अश्वत्थामा को सान्त्वना देते हैं। इधर कर्ण दुर्योधन को यह समझा देता है कि द्रोण ने स्वय लड़ना छोड़ दिया था, और इसीलिये वे मारे गये। द्रोण अश्वत्थामा को समस्त पृथ्वी का राजा बनाना चाहते थे और अब अश्वत्थामा के मारे

जाने से वृद्ध ब्राह्मण द्रोण का शस्त्रग्रहण करना व्यर्थ है। यह सोचकर ही द्रोण ने दुखी होकर शस्त्र-त्याग किया था। इसी बीच कृप और अश्वत्थामा दुर्योधन के पास आते हैं और अश्वत्थामा दुर्योधन से उसे सेनापति बना देने को कहता है, जिससे वह पिता की मृत्यु का बदला ले सके। पर दुर्योधन ने कर्ण को सेनापति बनाने का वचन दिया है। अश्वत्थामा और अधिक क्रुद्ध होता है, कर्ण और अश्वत्थामा में वाग्युद्ध होता है। अश्वत्थामा तब तक के लिये शस्त्र न उठाने की प्रतिज्ञा करता है जब तक कर्ण जीवित रहेगा। इसी बीच नेपथ्य से भीम की गर्वोक्ति सुनाई देती है कि दुःशासन उनके भुजपञ्जर में आबद्ध हो गया है, और वह उसका खून पीने जा रहा है, यदि कोई कौरव रक्षा कर सके तो करे। दुःशासन की विपत्तिगत अवस्था को सुनकर अश्वत्थामा शस्त्र ग्रहण करना चाहता है, पर आकाशवाणी के द्वारा अश्वत्थामा को यह चेतावनी दी जाती है कि उसे अपनी प्रतिज्ञा को खण्डित नहीं करना चाहिये। अश्वत्थामा को इस बात का दुःख है कि वह दुःशासन की रक्षा नहीं कर पाता और देवता भी पाण्डवों के पक्षपाती है।

चतुर्थ अङ्क—दुर्योधन का सारथि युद्ध में आहत और मूच्छित दुर्योधन को युद्धस्थल से दूर ले जाकर उसके रथ को एक वट-वृक्ष की छाया में खड़ा कर देता है। चेतना प्राप्त होने पर दुर्योधन को दुःशासन के वध का पता चलता है। कर्ण का सेवक सुन्दरक दुर्योधन को खोजता हुआ वहाँ पहुँचता है और उसे कर्ण के पुत्र वृषसेन के वध की सूचना देता है और युद्धस्थल की गतिविधि से अवगत कराता है। सुन्दरक उसे पुत्र-वध से निराश और क्रुद्ध होकर प्राणों का मोह त्याग कर युद्धभूमि को जाते हुये कर्ण का सन्देश देता है। दुर्योधन भी अपने मित्र अङ्गराज कर्ण की सहायता के लिये पुनः युद्धभूमि के लिये प्रस्थान करना चाहता है किन्तु इसी बीच धृतराष्ट्र और गान्धारी वहाँ आ पहुँचते है।

पञ्चम अङ्क—पुत्रों के विनाश से व्याकुल हुए धृतराष्ट्र और गान्धारी दुर्योधन को पाण्डवों से सन्धि कर लेने के लिये समझाते है, परन्तु दुर्योधन इसके लिये तैयार नही होता। वह पाण्डवो से अपने भाई दुःशासन का शोध लेना चाहता है। इस पर धृतराष्ट्र गुप्त उपाय द्वारा पाण्डवो

करने का सुझाव देता है, परन्तु अभिमानी दुर्योधन इसे भी स्वीकार नहीं करता है।

इसी बीच कर्ण के निधन की सूचना मिलती है और दुर्योधन लड़ने को जाने की तैयारी करता है। तभी भीम और अर्जुन रणभूमि में दुर्योधन को न पाकर ढूंढते हुये यहां पहुंच जाते है। भीम धृतराष्ट्र और गान्धारी को प्रणाम करते समय कटूक्तियो का प्रयोग करता है। दुर्योधन भीम को फटकारता है और दोनों मे वाग्युद्ध होता है। दुर्योधन भीम को द्वन्द्व-युद्ध के लिये ललकारता है, किन्तु अर्जुन भीम को रोकता है। इसी बीच नेपथ्य से भीम और अर्जुन के लिये युधिष्ठिर की आज्ञा सुनाई पड़ती है कि अब युद्ध समाप्ति का समय हो गया है इसलिये सेनाये वापिस लौटा ली जाये। अतः युधिष्ठिर की आज्ञा का पालन करने के लिये वह वापिस लौट पड़ते है।

भीम और अर्जुन के वापिस लौटते-लौटते उस स्थान पर अश्वत्थामा भी पहुंच जाता है। धृतराष्ट्र दुर्योधन को अश्वत्थामा का उठकर स्वागत करने का सुझाव देता है। अश्वत्थामा आते ही दुर्योधन के मित्र कर्ण की निन्दा करने लगता है जिस पर दुर्योधन उससे रुष्ट होकर उपालम्भ करता है कि अश्वत्थामा ने कर्ण के वध की ही प्रतीक्षा क्यों की; उसके वध की भी प्रतीक्षा कर लेवे, क्योकि दुर्योधन और कर्ण में कोई अन्तर नही है। इस पर अश्वत्थामा अपमानित होकर चला जाता है, परन्तु धृतराष्ट्र उसके प्रति अपने और गान्धारी के वात्सल्य की तथा उसके पिता के अपमान की याद दिलाकर भ्रातृशोक से विक्षिप्त चित्त दुर्योधन की बात का बुरा न मानने का संजय द्वारा सन्देश भेजता है।

षष्ठ अङ्क—अङ्क के प्रारम्भ में युधिष्ठिर को चिन्तित अवस्था मे दिखलाया गया है। भीम ने प्रतिज्ञा की है कि वह आज दुर्योधन का वध करके अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करेगा अन्यथा स्वयं आत्मघात कर लेगा। यह समाचार जानकर दुर्योधन चुपचाप एक जलाशय मे जाकर छिप गया। बहुत खोज पर भी उसका पता न लगने से युधिष्ठिर अत्यधिक चिन्तित है। इसी समय एक पुरुष आकर सूचना देता है कि दुरात्मा दुर्योधन का पता लग गया है, दुर्योधन और भीम का गदा युद्ध हो रहा है। इस युद्ध मे भीम की विजय निश्चित है। इसलिये कृष्ण भगवान् ने सन्देश भेजा है कि युधिष्ठिर राज्याभिषेक की तैयारी करे और द्रौपदी अपने वेणी-संहार का उत्सव मनाये।

राज्याभिषेक की तैयारी के लिये पुरोहितों तथा अन्य कर्मचारियों को आज्ञा दे दी जाती है, परन्तु इसी समय घटनायें एक नया मोड़ ले लेती हैं। दुर्योधन का एक मित्र चार्वाक नाम का राक्षस मुनि का वेश धारण करके युधिष्ठिर के पास आता है। वह इस बात का ढोंग रचाता है कि वह भीम और दुर्योधन का गदायुद्ध देखकर समन्तपञ्चक से आ रहा है, उसे इस बात का दुःख है कि शरद् ऋतु की प्रचण्ड धूप के कारण वह अर्जुन और दुर्योधन के गदायुद्ध को पूरा नहीं देख सका है। युधिष्ठिर, अर्जुन और दुर्योधन के गदा-युद्ध की बात सुनकर चौंकता है। अधिक पूछने पर पता चलता है कि कृष्ण के भाई बलराम द्वारा दुर्योधन को गुप्त संकेत कर देने पर गदायुद्ध में भीम मारा गया है। युधिष्ठिर और द्रौपदी शोकाभिभूत हो जाते हैं और मरने को तैयार होते हैं। चार्वाक चुपके से चिता तैयार करके उसे प्रज्वलित करने के लिये वहाँ से चला जाता है।

इसी बीच नेपथ्य में कोलाहल सुनाई पड़ता है। युधिष्ठिर इसे दुर्योधन का आगमन समझता है। द्रौपदी छिपने की चेष्टा करती है। रुधिर से लथपथ शरीर वाला भीम मञ्च पर आता है और द्रौपदी के केशों को बाँधने के लिये उसे पकड़ लेता है। युधिष्ठिर उसे दुर्योधन समझकर लड़ना चाहता है। अन्त में वास्तविकता का पता चलता है। द्रौपदी प्रसन्नता से वेणी बाँधती है। वासुदेव और अर्जुन मञ्च पर आते हैं। चार्वाक नकुल द्वारा पकड़ लिया जाता है। युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन का आलिङ्गन करके हर्षित होते हैं और भगवान् कृष्ण के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हैं। अन्त में भरतवाक्य के साथ नाटक समाप्त हो जाता है।

(२) कथावस्तु का स्रोत—महाभारत

तथा

वस्तु भी महाभारत से ली गई है। भट्टनारायण ने अन्य कवियों की भाँति महा-भारत के किसी आख्यान को न लेकर महाभारत की मुख्य कथा को अपने

के लोकप्रिय होने की आशा की जा सकती थी', वहाँ दूसरी ओर यह हानि भी हुई है कि कवि को उपर्युक्त कारणों से परिवर्तन और परिवर्धन की पूरी छूट न होने से अनेक आवश्यक कथाओं को भी स्थान देना पड़ा है, जिससे नाटक वस्तु योजना मे शिथिलता के दोष से ग्रस्त हो गया है।

आख्यान में किये गये परिवर्तन—वेणीसंहार के कथानक की, महाभारत की कथा से तुलना करने पर भट्टनारायण द्वारा मूल कथा मे किये गये परिवर्तनो तथा परिवर्धनो का आसानी से पता लग सकता है। महाभारत की कथा में किये गये कुछ महत्त्वपूर्ण परिवर्तन निम्नलिखित है—

नाटक के प्रथम अङ्क में पाँच गाँवो की शर्त पर सन्धि का प्रस्ताव लेकर भगवान् कृष्ण गये हैं। दुर्योधन भगवान् कृष्ण को पकड़ने का प्रयत्न करता है, परन्तु वह अपना विश्वरूप प्रकट करके उसे अभिभूत कर देते हैं। महाभारत की कथा में पाँच गाँवों की शर्त पर सन्धि का प्रस्ताव प्रथम संजय के माध्यम से किया गया है। उसके असफल होने पर स्वयं भगवान् कृष्ण सन्धि कराने का प्रयत्न करते हैं। दुर्योधन श्रीकृष्ण को पकड़ने का षड्यन्त्र रचता है, परन्तु पता लगने पर धृतराष्ट्र उसे डपटते है। महाभारत मे भगवान् ने अपने विश्वरूप का प्रदर्शन दुर्योधन पर अपनी शक्ति का प्रभाव जमाने के लिये किया है, न कि उसके उन्हें पकड़ने के प्रयत्न को विफल करने के लिये। सम्भवतः भट्टनारायण को यह परिवर्तन करने की प्रेरणा भास के दूतवाक्य से मिली है।

महाभारत मे अश्वत्थामा ओर कर्ण का कलह, जो इस नाटक के तृतीय अङ्क मे दिखाया गया है। कर्ण और कृप के मध्य प्रारम्भ होता है, परन्तु अश्वत्थामा उसे अपने ऊपर ले लेता है। महाभारत में कर्ण और अश्वत्थामा का कलह द्रोणाचार्य के वध से पूर्व होता है नाटक मे अश्वत्थामा और कर्ण के कलह का कारण कर्ण द्वारा द्रोणाचार्य की निन्दा है तथा यह घटना द्रोणाचार्य की मृत्यु के पश्चात् दिखलाई गई है। नाटक में महाभारत के कथाक्रम मे एक अन्य परिवतन यह किया गया है कि महाभारत में चार्वाक राक्षस

१, तदत्र कविपरिश्रमानुरोधाद्वा उदात्तकथावस्तुगौरवाद्वा नवनाटकदर्शनकुतूहलाद्वा भवद्भिरवधानं दीयमानमभ्यर्थये। वेणीसंहार, पृ० ८।

की युधिष्ठिर की सभा में प्रवेश उसके हस्तिनापुर में प्रवेश करने के पश्चात् वर्णित किया गया है और वहाँ चार्वाक का उद्देश्य युधिष्ठिर की निन्दा करना है। परन्तु नाटक मे मुनिवेषधारी की चार्वाक के साथ युधिष्ठिर की भेंट पहले दिखलाई गई है। नाटक में चार्वाक की अवतारणा नाटक के घटना-क्रम को एक नया मोड़ देने के लिये की गई है।

महाभारत मे जलाशय में छिपे हुये दुर्योधन का पता लग जाने पर युधिष्ठिर आदि सब वहाँ पहुँच गये हैं और दुर्योधन को युद्ध के लिये युधिष्ठिर द्वारा ललकारा गया हे तथा युधिष्ठिर द्वारा दुर्योधन को यह छूट दी गई है कि वह द्वन्द्व मे कोई से भी पाण्डव से लड सकता है। नाटक मे दुर्योधन को युद्ध के लिये ललकारना तथा कोई से भी पाण्डव से द्वन्द्व युद्ध का प्रस्ताव भीम द्वारा किया गया है, जब कि युधिष्ठिर अन्य स्थल पर है।

कथावस्तु में नूतन उद्भावनायें—भट्टनारायण के नाटक की आवश्यकताओ के अनुसार केवल आख्यान के घटना-क्रमो मे ही हेर-फेर नही किया गया है, अपितु कई सर्वथा नूतन उद्भावनायें भी की हैं। सर्वप्रथम द्रौपदी के वेणी-संहार की घटना, जिस पर नाटक का नाम पडा है, कवि की सर्वथा मौलिक कल्पना है। महाभारत मे भीम द्वारा दुर्योधन के उरुभङ्ग की प्रतिज्ञा का तो कथन किया गया है, लेकिन उसके रुधिर से द्रौपदी के केश सवारने का नही। प्रथम अङ्क मे भानुमति द्वारा द्रौपदी से केश-सवरण सम्बन्धी प्रश्न की घटना भी कवि-कल्पित हे। दुर्योधन की पत्नी भानुमति, पाञ्चालक, सुन्दरक, रुधिर प्रिय राक्षस तथा उसकी पत्नी और कञ्चुकी, चेटी एव सखी आदि अन्य छोटे पात्र कवि की उद्भावनाये हैं।

नाटक का सम्पूर्ण द्वितीय अङ्क, तृतीय अङ्क का प्रवेशक, सम्पूर्ण पञ्चम अङ्क, षष्ठ अङ्क मे भीम की प्रतिज्ञा, चार्वाक द्वारा युधिष्ठिर की वञ्चना और युधिष्ठिर तथा द्रौपदी द्वारा चितारोहण की तत्परता तथा विलाप कवि की स्वयं की कल्पनायें है, जिनका महाभारत मे कोई उल्लेख नही मिलता है।

परिवर्तनों का नाटकीय प्रभाव—जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि वेणीसंहार की कथा महाभारत की प्रसिद्ध कथा है। नाटककार की मौलिकता और निपुणता इस बातमे है कि उसने महाभारत की विस्तृत

कथा को नाटक के केवलमात्र ६ अङ्कों के कलेवर में चतुरता से सीमित करके उसे प्रभावपूर्ण और रोचक बना दिया है। महाभारत की कथा को रोचक नाटक में प्रस्तुत करने मे भट्टनारायण ने जो प्रतिभा दिखाई है, वह सर्वथा *प्रशंसनीय है। उन्होंने महाभारत की कथा में घटनाओं के क्रम और संयोग में* जो परिवर्तन किये हैं तथा नाटक को प्रभावपूर्ण बनाने के लिये जो नई उद्भावनायें की है, उनसे नाटकीय व्यापार को गति तथा पात्रों के चरित्र की अभिव्यक्ति का अवसर मिला है।

संजय और कृष्ण के सन्धि-प्रयत्नों को एक में मिलाकर न केवल कवि ने मितव्ययिता की है, अपितु इससे व्युत्पत्ति' के लिये पृष्ठभूमि भी प्रदान की है तथा इससे युधिष्ठिर, भीम तथा दुर्योधन के चरित्रों की अभिव्यक्ति के लिये भी अवसर मिला है। भानुमति द्वारा द्रौपदी से उपालम्भपूर्वक प्रश्न किये जाने की घटना ने, जो कवि की अपनी कल्पना है, भीम के क्रोध को और भी भड़का दिया है, जो शत्रु-संहार द्वारा 'वेणी-संहार' रूप फल का बीज सिद्ध हुआ है।

द्वितीय अङ्क में भानुमती के स्वप्नदर्शन तथा वात्या द्वारा रथ ध्वज के भङ्ग से भावी घटनाओं की सूचना मिलती है। इस अङ्क में बालोद्यान का दृश्य पूर्ववर्ती और उत्तरवर्ती अङ्कों मे निबद्ध उत्तेजनापूर्ण परिस्थितियों से भिन्न प्रकार की कोमल परिस्थिति का सर्जन करके दर्शकों के सामने सुखद परिवर्तन उपस्थित करता है। इस अङ्क से दुर्योधन के चरित्र के दूसरे पक्ष पर भी प्रकाश पड़ता है। इस अङ्क में कञ्चुकी की 'भग्न भग्नम्' आदि उक्ति द्वारा *'पताकास्थानक' की योजना ने नाटकीय स्थिति उत्पन्न कर दी है।*

तृतीय अङ्क के प्रवेशक में रुधिरप्रिय और उसकी पत्नी की अवतारणा करके कवि ने द्रोणाचार्य, भूरिश्रवा और घटोत्कच आदि वीरों के वध की सूचना दे दी है और साथ ही दुःशासन के रुधिर-पान के जघन्य कृत्य को अन्तःप्रविष्ट राक्षस द्वारा किया गया सूचित करके भीम के चरित्र की रक्षा कर ली है।

द्रोणाचार्य के वध को जानकर पाठक को यह जिज्ञासा होती है कि अश्वत्थामा जैसे पराक्रमी वीर ने अपने पिता के अनुचित मरण का बदला क्यों

१. देखिये, वेणीसंहार पृ० २६।

ने लिया ? उसने भीम से दुःशासन की रक्षा क्यों नहीं की ? कवि ने अश्वत्थामा और कर्ण के कलह और दुर्योधन द्वारा कर्ण के पक्षपातपूर्ण व्यवहार के कारण कर्ण के जीवित रहते शस्त्र-त्याग का चित्रण करके तथा आकाशसंचारिणी वाक् की योजना करके अश्वत्थामा के ब्रह्मतेज तथा स्वामिभक्ति की रक्षा की है।

चतुर्थ अङ्क लम्बे वर्णनात्मक संवादों तथा भाषा की क्लिष्टता के कारण यद्यपि नीरस हो गया है; तथापि यह स्वीकार करना पड़ेगा कि सुन्दरक की अवतारणा करके कवि ने महाभारत की लम्बी कथा को एक छोटे अङ्क में चतुरता से समेट दिया है। युद्धभूमि में भेजा गया कर्ण का सन्देश और उस पर दुर्योधन की प्रतिक्रिया, दुर्योधन के चरित्र का उद्घाटन करती है। अङ्क के अन्त में धृतराष्ट्र और गान्धारी का मञ्च पर प्रवेश दुर्योधन को कर्ण की सहायता करने से रोक देना है, जिससे पाण्डवों के लिये कर्ण के वध का मार्ग प्रशस्त हो जाता है।

पाँचवाँ अङ्क जैसा कि पहले कहा जा चुका है, कवि की अपनी उद्भावना है। इस अङ्क से न तो कथा आगे बढ़ती है और न ही नाटकीय व्यापार को गति मिलती है, प्रत्युत इससे नाटकीय व्यापार में गतिरोध उत्पन्न हो गया है। परन्तु इसे धृतराष्ट्र और गान्धारी की वात्सल्य भावना, दुर्योधन के स्वाभिमान तथा अपने दिवंगत मित्र कर्ण के प्रति अनुपम प्रेम एवं अश्वत्थामा के आत्माभिमान की अभिव्यक्ति की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कहा जा सकता है।

कवि ने षष्ठ अङ्क में दुर्योधन का तर्जन और द्वन्द्वयुद्ध का प्रस्ताव भीम के मुख से कराकर सर्वथा उचित किया है, क्योंकि नाटक में व्यापार का केन्द्र मुख्य रूप से भीम ही है। भीम की अनन्यदिनगामिनी दुर्योधन-वध की प्रतिज्ञा और चार्वाक की अवतारणा ने युधिष्ठिर भ्रातृप्रेम की अभिव्यक्ति का अवसर प्रदान किया है। चार्वाक के दृश्य की योजना से नाटकीय व्यापार को एक नया मोड़ मिला है और कवि ने करुण रस की अभिव्यक्ति के लिये इसका अच्छा उपयोग किया है।

[४] वेणीसंहार की घटनाओं का स्थान समय तथा अवधि

वेणीसंहार की घटनाओं का स्थान—वेणीसहार नाटक की घटनाओं का स्थान प्रसिद्ध कुरुक्षेत्र है, जिसे नाटक में समन्तपञ्चक कहा गया है। लेकिन प्रत्येक अङ्क के व्यापार का स्थल अलग-अलग है। कभी-कभी एक अङ्क में निबद्ध व्यापार के भी स्थलों में परिवर्तन हुआ है। प्रथम अङ्क का व्यापार पाण्डवों के शिविर के किसी एक भाग में प्रारम्भ होता है, जो द्रौपदी की चतुःशाला से बहुत दूर नही है। बाद मे व्यापार का केन्द्र द्रौपदी की चतुःशाला हो जाती है। द्वितीय अङ्क के व्यापार का केन्द्र दुर्योधन के प्रासाद का अन्तःपुर उससे सलग्न बालोद्यान तथा दारुप्रासाद है। तृतीय अङ्क का व्यापार युद्धक्षेत्र के किसी भाग में प्रारम्भ हुआ है और बाद मे एक वटवृक्ष के अधोभाग में स्थानान्तरित हो गया है। चतुर्थ अङ्क मे वस्तुत. कोई नाट्य व्यापार नहीं है, लेकिन प्रारम्भ में अङ्क का दृश्य-स्थल युद्धक्षेत्र है और बाद में दृश्य-स्थल वहाँ से कुछ दूर स्थित कोई सघन छाया वाला वटवृक्ष हो गया है जो सम्भवतः तृतीय अङ्क में उल्लिखित वटवृक्ष ही है। पञ्चम अङ्क के व्यापार का स्थान भी यही वटवृक्ष है। छठे अङ्क के व्यापार का केन्द्रस्थान युद्ध-भूमि से कुछ दूरी पर स्थित युधिष्ठिर का शिविर है। इस प्रकार नाटक के व्यापार का दृश्य-स्थल युद्धभूमि, दुर्योधन का राजमहल और उनके ही समीपवर्ती अन्य स्थान हैं। नाटक के व्यापार के दृश्य-स्थलों में ऐसी दूरी अथवा विषमता नही है जिसके कारण नाटकीय व्यापार में या उसके प्रभाव में व्याघात हो।

वेणीसंहार नाटक की घटनाओं का समय और अवधि—जैसाकि पहले कहा जा चुका है, नाटक की कथावस्तु में १८ दिन चलने वाले महाभारत-युद्ध की घटनाओं का समावेश हुआ है। नाटक के प्रारम्भ मे कृष्ण द्वारा सन्धि कराने के प्रयत्न का उल्लेख हुआ है। सन्धि कराने के प्रयत्न की घटना वास्तविक युद्ध प्रारम्भ होने से एक या दो मास पूर्व हुई होगी। महाभारत के अनुसार युद्ध अट्ठारह दिन चला था। इस प्रकार नाटक में सकेतित अथवा वर्णित घटनाओं का समय लगभग डेढ़ या दो मास हैं, लेकिन नाटककार ने इन घटनाओं को चार दिन की अवधि में सीमित कर दिया है।

प्रथम अङ्क पाँच गाँवों की शर्त पर सन्धि कराने के लिये दूत बनकर गये हुए कृष्ण के समाचार तथा दुर्योधन द्वारा किये गये अनेक अपमानों के स्मरण से क्रोधाविष्ट भीमसेन के रङ्गमञ्च पर प्रवेश से प्रारम्भ होता है तथा युधिष्ठिर द्वारा की गई युद्ध-घोषणा पर समाप्त होता है। इस प्रकार प्रथम अङ्क में महाभारत युद्ध के प्रथम दिन की घटनाओ का सन्निवेश है।

द्वितीय अङ्क का व्यापार भीष्म तथा अभिमन्यु की मृत्यु के पश्चात् प्रारम्भ होता है। महाभारत के अनुसार भीष्म और अभिमन्यु का वध क्रमशः युद्ध के १० वे और १३ वें दिन हुआ था इस प्रकार द्वितीय अङ्क मे महाभारत युद्ध के १४ वें दिन की घटनाओ का समावेश हुआ है।

तृतीय अङ्क का व्यापार घटोत्कच की मृत्यु के पश्चात् उस दिन प्रारम्भ हुआ है जिस दिन द्रोण का वध हुआ था। महाभारत के अनुसार यह घटना युद्ध के १५ वें दिन हुई थी। इस प्रकार द्वितीय और तृतीय अङ्क की घटनाएँ लगातार दिनों की घटनायें है। चतुर्थ और पञ्चम अङ्क मे भी उसी दिन की घटनायें हैं।

षष्ठ अङ्क मे उल्लिखित शल्य, शकुनि और दुर्योधन के वध की घटना महाभारत युद्ध के १८ वें दिन हुई थी। इसलिये पाचवें और छठे अङ्क की घटनाओं में दो दिन का मध्यान्तर समझना चाहिये।

इस प्रकार नाटक मे महाभारत युद्ध की पहले, चौदहवें, पन्द्रवें और अठारहवे दिन की घटनाओ का समावेश किया गया है। प्रथम अङ्क की घटना का समय युद्ध के प्रथम दिन का पूर्वाह्न है और व्यापार की अवधि लगभग प्रातः ८ बजे से ११ बजे तक रही होगी। द्वितीय अङ्क की घटना का समय युद्ध के १४ वे दिन का पूर्वाह्न है और अवधि लगभग प्रातः ८ बजे से ११ बजे तक, तृतीय अङ्क की घटना का समय युद्ध के १५ वे दिन का मध्याह्न है चतुर्थ अङ्क की घटना का समय उसी दिन का अपराह्न भाग है और पञ्चम अङ्क का समय उसी दिन की सन्ध्या है। षष्ठ अङ्क की घटना का समय युद्ध के १८ वें दिन का उत्तरार्ध है।

कवि ने एक अङ्क में एक दिन से अधिक की घटनाओं का समावेश न करके 'कालगत अन्विति' (Unit of time) का पूरा-पूरा पालन किया है।

[५] वेणीसंहार का नाट्यशास्त्र की दृष्टि से विश्लेषण

संस्कृत नाट्यों के प्रकार—सस्कृत काव्यो का प्रयोग की दृष्टि से दृश्य और श्रव्य दो श्रेणियो मे विभाजन किया गया है।[१] दृश्य-काव्यो को नाट्य, रूप या रूपक भी कहा गया है।[२] दृश्य-काव्यो के लिये आजकल हिन्दी-भाषा में नाटक शब्द प्रचलित है, परन्तु सस्कृत के नाट्यशास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थो मे नाटक शब्द दृश्य-काव्य के एक विशेष प्रकार के लिये प्रयुक्त हुआ है। दृश्य-काव्यों के फिर रूपक और उपरूपक दो भेद किये गये है। सस्कृत के नाट्यो का आश्रय-रस माना गया है और उनके वस्तु (कथानक), नेता (नायक) और रस के आधार पर आगे उप-भेद किये गये हैं। रूपक के १० और उपरूपक के १८ प्रकार होते हैं।[३]

संस्कृत नाटकों का रचना-विधान (Structure of Sanskrit dramas) संस्कृत नाटको की बाह्य रचना लगभग एक ही प्रकार की है।

संस्कृत नाटको का प्रारम्भ नन्दी (मङ्गलाचरण) से होता है नाटक को रङ्गमञ्च पर प्रस्तुत करते समय नटों को रङ्ग मे आने वाले विघ्नों की शान्ति के लिये पूजा का विधान किया गया है। इसे पूर्वरङ्ग कहा जाता है।[४] नान्दी

---

१ दृश्यश्रव्यत्वभेदेन पुन. काव्य द्विधा मतम्। साहित्यदर्पण, ६/१

२ अवस्थानुकृतिर्नाट्यं रूप दृश्यतोच्यते।
रूपक तत्समारोपाद् दशधैव रसाश्रयम्॥ दशरूपक १/७

३ नाटकमथ प्रकरणं भाणव्यायोगसमवकारडिमाः।
ईहामृगाङ्कवीथ्य. प्रहसनमिति रूपकाणि दश॥
नाटिका त्रोटकं गोष्ठी सट्टकं नाट्यरासकम्।
प्रस्थानोल्लाप्यकाव्यानि प्रेङ्खणं रासकं तथा॥
संलापकं श्रीगदितं शिल्पकं च विलासिका।
दुर्मल्लिका प्रकरणी हल्लीशो भाणिकेति च॥
अष्टादश प्राहुरुपरूपकाणि:।
विना विशेष सर्वेषां लक्ष्म नाटकवन्मतम्॥ साहित्यदर्पण ६/३-६

४ साहित्यदर्पण ६/२२; दशरूपक ३/२

के पश्चात सूत्रधार अथवा तत्सम स्थापक कवि तथा कृति का परिचय देता है और प्राय. नाटक के प्रयोग के समय की सूचना देता है।[1] वह नटी अथवा पारिपार्श्विक या मार्ष या विदूषक के साथ वार्तालाप मे चित्रोक्ति द्वारा अभिनय वस्तु अथवा किसी प्रमुख पात्र की सूचना दे देता है।[2] सूत्रधार के इस वार्तालाप को नाट्यशास्त्र के शब्दो में आमुख या प्रस्तावना कहते है।

'वस्तुतः नाट्य-व्यापार प्रस्तावना के पश्चात् प्रारम्भ होता है। मुख्य व्यापार से सम्बद्ध घटनाओं को दो प्रकार से प्रस्तुत किया जाता है जो घटना सरस और मुख्य पात्र (नायक) से सम्बद्ध होती है और जिसका वस्तुत: रङ्गमञ्च पर अभिनय किया जाता है, उसका समावेश अङ्क मे किया जाता है। एक अङ्क मे प्राय: नायक सम्बद्ध एक दिन की घटना रक्खी जाती है।[3] परन्तु जो घटना नीरस, अङ्क मे आदर्शनीय तथा अधिक समय तक घटने वाली होती है अथवा जब दो अङ्कों में निबद्ध की गई घटनाओं के मध्य अधिक लम्बी अवधि का अन्तर होता है तो उनकी केवलमात्र सूचना दे दी जाती है।[4] इस प्रकार घटनाओं की सूचना नाटक के जिस भाग में दी जाती है, उसे 'अर्थोपक्षेपक' कहते हैं।[5] यदि मूल से ही सरस कथा प्रारम्भ हो जाती है तो प्रस्तावना के तुरन्त बाद अङ्क रक्खा जाता है। लेकिन यदि अभिनय घटना की परिस्थितियो को सुबोध बनाने के लिये कुछ पूर्ववर्ती घटनाओं की सूचना देना अपेक्षित होता है तो प्रस्तावना और प्रथम अङ्क के मध्य मे विष्कम्भक

---

१ केवल भास के नाटक और दक्षिणी भारत मे प्र.प्त कुछ अन्य नाटकों की पाण्डुलिपियाँ इसके अपवाद हैं।

२ दशरूपक ३/३-५, साहित्यदर्पण ६/२, ७/२, ८, ३१, ३२।

३ दशरूपक ३/३६, ३७।

४ साहित्यदर्पण ६/५१, ५२।

५ अर्थोपक्षेपक ५ प्रकार के होते हैं—विष्कम्भक; प्रवेशक, चूलिका, अङ्कावतार और अङ्कमुख (अङ्कास्य)। अर्थोपक्षेपक के ये भेद पात्रों की कोटि, नाट्मशास्त्र मे स्थिति और अङ्क से सम्बन्ध के आधार पर किये गये हैं। देखिये, साहित्यदर्पण ६/५४-६०।

की योजना की जाती है। प्रथम अङ्क के आदि मे आवश्यकतानुसार केवल विष्कम्भक का ही प्रयोग किया जाता है। दो अङ्को के मध्य में विष्कम्भक तथा अन्य अर्थोपक्षेपकों—अधिकतर प्रवेशक—का प्रयोग किया जाता है।

वेणीसंहार मे प्रस्तावना के तुरन्त बाद प्रथम अङ्क आरम्भ हो जाता है। यहाँ विष्कम्भक के प्रयोग की आवश्यकता नहीं पडती है। प्रथम और द्वितीय अङ्क के मध्य मे विष्कम्भक का प्रयोग किया गया है और द्वितीय तथा तृतीय अङ्क के बीच में प्रवेशक का। शेष अङ्कों के मध्य कोई अर्थोपक्षेपक नही रक्खा गया है।

संस्कृत के कुछ नाटको मे अङ्क के मध्य में पात्र के चरित्र से सम्बन्धित पूर्वघटनाओं को नाटक के रूप में प्रस्तुत किया जाता है (उदा०, उत्तररामचरित सप्तम अङ्क, प्रियदर्शिका तृतीय अङ्क। (अङ्क मे आये नाटक को "गर्भाङ्क" कहते है।

संस्कृत के प्रत्येक नाटक का अन्त भी, प्रारम्भ के समान, पद्यमय आशीर्वचन से होता है, जिसमें लोक अथवा आश्रयदाता राजा या स्वयं कवि के कल्याण की कामना प्रकट की जाती है। पारिभाषिक शब्दो में इस पद्य को 'भरत-वाक्य' कहते है।

संस्कृत नाटकों में भाषाओं की विविधता—संस्कृत नाटकों की एक अन्य विशेषता यह भी है कि उनमें संस्कृत के अतिरिक्त कई प्रकार की प्राकृतो का प्रयोग किया जाता है। नाट्यशास्त्र के नियमों के अनुसार राजा, देव, मन्त्री, ब्राह्मण आदि उत्तम पात्रों की भाषा संस्कृत होती है और अन्य पात्रो की भाषा प्राकृत। उत्तम स्त्री-पात्रों की भाषा प्राय. शौरसेनी होती है और नीच पात्रों की मागधी। पद्य में शौरसेनी-प्राकृत-भाषी पात्रों की महाराष्ट्री प्राकृत के प्रयोग का विधान है। जो नीच पात्र जिस देश का हो, उसे उस देश की भाषा बोलने का विधान किया गया है।[1]

श्रव्यता की दृष्टि से सवाद का विभाजन—रङ्गमञ्च की आवश्यकता के विचार से पात्रों के संवाद को श्रव्यता के आधार पर तीन प्रकार मे विभक्त किया जाता है। जो वचन मञ्च पर उपस्थित सब पात्रो तथा रङ्गस्थ

१. अधिक जानकारी के लिये साहित्यदर्पण, ६।१५८-१६६ देखिये।

सामाजिकों को सुनाने का होता है, उसे सर्वश्राव्य या 'प्रकाश' कहते हैं।[1] संस्कृत नाटकों में ऐसे सवाद से पहले 'प्रकाशम्' यह रङ्गमञ्च-निर्देश दिया होता है। (उदाहरणार्थ वेणीसंहार पृ० ५४)। जो वचन किसी को भी सुनाने का नहीं होता, उसे अश्राव्य या 'स्वगत या आत्मगतम्' कहते हैं।[2] ऐसी उक्ति से पहले 'स्वगतम्'[3] या 'आत्मगतम्'[4] यह रङ्गमञ्च-निर्देश दिया रहता है। कुछ संवाद नियतश्राव्य होता है। नियतश्राव्य दो प्रकार का होता है—

(१) जनान्तिक और (२) अपवारित

जब 'त्रिपताक' कर से अन्य पात्रों को हटाकर दो पात्र दर्शकों के समीप परस्पर मन्त्रणा करते हैं, उसे 'जनान्तिक' कहा जाता है[5]। ऐसे संवाद से पहले 'जनान्ते' या 'जनान्तिकम्'[6] निर्देश दिया होता है। जब कोई पात्र एक ओर को मुड़कर या दूसरे स्थान पर जाकर किसी दूसरे पात्र का रहस्य प्रकट करता है, उसे 'अपवारित' कहते हैं[7] और ऐसे वचन से पहले सापवारितम्' या 'अपवार्य' निर्देश दिया जाता है।[8]

कुछ संस्कृत नाटकों में ऐसा भी पाया जाता है कि कोई पात्र रङ्गमञ्च पर दूसरे पात्र के बिना ही आकाश की ओर मुख उठाकर प्रश्नोत्तर करता है। इस

---

१ सर्वश्राव्यं प्रकाशं स्यात्। साहित्यदर्पण ६।१३८

२ अश्राव्यं खलु यद्वस्तु तदिह स्वगत मतम्। साहित्यदर्पण ६।१३७

३ उदाहरणार्थ; वेणीसंहार पृ० २१६ पर अश्वत्थामा की उक्ति।

४ उदाहरणार्थ, वेणीसंहार पृ०२२ पर सहदेव की उक्ति।

५ त्रिपताककरेणान्यानपवार्यान्तरा कथाम्।
अन्योन्यामन्त्रणं यत्स्याज्जनान्ते जनान्तिकम्॥ साहित्यदर्पण ६।१३९

६ उदाहरणार्थ, वेणीसंहर पृ० २४ पर द्रौपदी की उक्ति।

७ ··· ··· ··· तद्भवेदपवारितम्।
रहस्यं तु यदन्यस्य परावृत्य प्रकाश्यते॥ साहित्यदर्पण ६।१३८

८ उदाहरणार्थ; वेणीसंहार पृ० ५२ पर।

प्रकार के प्रश्नोत्तरात्मक संवाद को 'आकाशभाषित' कहते हैं[1] और संवाद से पहले आकाशभाषित' या 'आकाशे' निर्देश लिखा रहता है।[2]

वेणीसंहार : नाटक रूपक का एक भेद—वेणीसंहार रूपकों के एक भेद नाटक की कोटि में आता है। कवि ने स्वयं वेणीसंहार को नाटक कहा है।[3] *नाट्यशास्त्रियों के अनुसार नाटक का वृत्त ख्यात होता है। नायक धीरोदात्त* होता है और कोई एक रस अङ्गी होता है। यद्यपि कुछ नाट्यशास्त्रियों ने नाटक का लक्षण करते हुए यह कहा है कि नाटक में शृङ्गार अथवा वीर रस में से अन्यतर मुख्य होना चाहिये, लेकिन सब नाट्यशास्त्री इस मत से सहमत नहीं हैं, क्योंकि यदि इस सिद्धान्त को अक्षरशः सत्य मान लिया जाय तो "उत्तररामचरित" आदि नाटकों की श्रेणी में नहीं आ सकेंगे। आनन्दवर्धन ने यही स्वीकार किया है कि नाटक में किसी एक रस की प्रधानता होनी चाहिये[5] नाटक पाँचों सन्धियों से युक्त होता है। नाटक में कम से कम पाँच और अधिक से अधिक दस अङ्क होते हैं। विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में नाटक का लक्षण इस प्रकार दिया है—

नाटकं ख्यातवृत्तं स्यात्पञ्चसन्धिसमन्वितम् ।
विलासर्द्ध्यादिगुणवद् युक्तं नानाविभूतिभिः ॥
सुखदुःखसमुद्भूति नानारसनिरन्तरम् ।
पञ्चादिका दशपरास्तत्राङ्काः परिकीर्तिताः ॥

---

१ किं ब्रवीषीति यन्नाट्ये विना पात्रं प्रयुज्यते ।
श्रुत्वेवानुक्तमप्यर्थं तत्स्यादाकाशभाषितम् ॥ साहित्यदर्पण ६।१४०

२ उदाहरणार्थ, वेणीसंहार पृ० ४६ और २३६ पर कञ्चुकी की उक्ति में।

३ तदिदं कवेर्मृगराजलक्ष्मणो भट्टनारायणस्य कृतिं वेणीसंहारं नाम नाटकं प्रयोक्तुमुद्यता वयम्। वेणीसंहारे पृ० ८

४ एक एव भवेदङ्गी शृंगारो वीर एव वा। साहित्यदर्पण ६।१०

५ प्रसिद्धेऽपि प्रबन्धानां नानारसनिबन्धने ।
एको रसोऽङ्गीकर्त्तव्यस्तेषामुत्कर्षमिच्छता ॥ ध्वन्यालोक ३।२१

प्रख्यातवंशो राजर्षिर्धीरोदात्तः प्रतापवान् ।
दिव्योऽथ दिव्यादिव्यो वा गुणवान्नायको मतः ॥
एक एव भवेदङ्गी शृङ्गारो वीर एव वा ।
अङ्गमन्ये रसाः सर्वे कार्यो निर्वहणेऽद्भुतः ॥
चत्वारः पञ्च वा मुख्याः कार्यव्यापृतपूरुषाः ।
गोपुच्छाग्रसमाग्रं तु बन्धनं तस्य कीर्तितम् ॥ ३।७-११

वेणीसंहार की कथावस्तु महाभारत से ली गई है। चन्द्रवंशी राजा युधिष्ठिर धीरोदात्त नायक है[1], वीर प्रधान रस है।[2] यह रूपक पाँचों सन्धियों से युक्त है और ६ अङ्कों में समाप्त हुआ है। वेणीसंहार में वीर रस के अतिरिक्त करुण, शृङ्गार और बीभत्स रसों की भी अभिव्यक्ति हुई है। इस प्रकार वेणीसंहार में नाटक के प्रायः सभी लक्षण घटते हैं।

वेणीसंहार में अर्थप्रकृति, अवस्था और सन्धि का विचार—पहले कहा जा चुका है कि संस्कृत रूपकों का आश्रय रस होता है। रस की अभिव्यक्ति के लिये किसी सरस कथा का सहारा लिया जाता है। रूपक की कथा और व्यापार में गति तथा सहृदय की उत्सुकता बनाये रखने के लिये नाटककार को कथावस्तु के क्रमिक विकास और सुश्लिष्टता की ओर भी ध्यान रखना होता है। रस और कथा वृत्त दोनों के सम्यक् विकास के प्रयोजन से नाटककारों के मार्गप्रदर्शन के लिये अर्थप्रकृति, कार्यावस्था और सन्धि तथा सन्ध्यङ्गों का विचार किया गया है, जिससे कवि उन्हें जानकर रसाभिव्यक्ति के लिये उनका यथायथ संनिवेश कर सकें।[3]

किसी नाटक की कथावस्तु की घटनाये दो प्रकार की होती हैं—

(१) आधिकारिक, (२) प्रासङ्गिक। मुख्य घटनाओं को, जो अधिकार

---

१ आगे 'वेणीसंहार का नायक' शीर्षक देखिये।
२ 'वेणीसंहार का मुख्य रस' शीर्षक देखिये।
३ रसव्यक्तिमपेक्ष्यैषामङ्गानां संनिवेशनम्।
न तु केवलया शास्त्रस्थितिसंपादनेच्छया ॥ साहित्यदर्पण ६।१२०

(फलप्राप्ति) अथवा अधिकारी से सम्बद्ध होती है, आधिकारिक कहते है।[1] आधिकारिक वृत्त के पुनः मुख्य भाग होते हैं[2]—(१) बीज, (२) बिन्दु और (३) कार्य। प्रासङ्गिक वृत्त भी दो प्रकार का होता है—(१) पताका, जो वृत्त नाटक में पर्याप्त दूर तक चलता है, (२) प्रकरी, जो वृत्त में केवल एक भाग तक चलता है। कार्य (प्रयोजन) की अपेक्षा में बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य इन पाँचों को अर्थ-प्रकृति' कहा जाता है।[3] पताका और प्रकरी का प्रत्येक रूपक मे होना अनिवार्य नही है।

कार्य का हेतुभूत जो वृत्त थोड़ा-सा कह दिया जाता है, वह बीज के समान अनेक प्रकार से विस्तार वाला होता है, इसीलिये 'बीज' कहलाता है।[4] वेणीसंहार नाटक में द्रौपदी के केशसयमन रूप कार्य का हेतु प्रथम अङ्क मे उपनिबद्ध भीमसेन के क्रोध से उपचित युधिष्ठिर का उत्साह जो अङ्क १ श्लोक २४ मे अभिव्यक्त हुआ है, 'बीज'।[5] अवान्तर प्रयोजन की समाप्ति पर छिन्न होती हुई कथा को जोड़ने वाले भाग को 'बिन्दु' कहते है।[6] वेणीसहार के द्वितीय अङ्क में दुर्योधन की शृङ्गार चेष्टाओं से विच्छिन्न होता हुआ मुख्य व्यापार दुःशला और जयद्रथ की माता के प्रवेश से पुन. जुड जाता है, क्योंकि बालोद्यान

---

१ अधिकारः फलस्वाम्यमधिकारी च तत्प्रभु.।
तन्निर्वृत्तमभिव्या.प वृत्तं स्यादाधिका.रिकम् ॥ दशरूपक १।१२

२ बीज, बिन्दु और कार्य को यद्यपि किसी नाट्यशास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थ में स्पष्ट रूप से आधिकारिक वृत्त नही कहा गया है, परन्तु ये वृत्त के भाग ही प्रतीत होते हैं।

३ बीजबिन्दुपताकायकरीकार्यलक्षणाः।
अर्थप्रकृतयः पञ्च ता एताः परिकीर्तिताः ॥ दशरूपक १।१८

४ अल्पमात्रं समुद्दिष्टं बहुधा यद्विसर्पति।
फलस्य प्रथमो हेतुर्बीजं तदभिधीयते ॥ साहित्यदर्पण ६।६५–६६

५ यथा च वेणीसंहारे द्रौपदीकेशसंयमनहेतुर्भीमक्रोधोपचितयुधिष्ठिरोत्साहो बीजम्। दशरूपक १।१७ पर धनिक की टीका।

६ अवान्तरार्थविच्छेदे बिन्दुरच्छेदकारणम्। दशरूपक, १।१७

की घटना के कारण पाठक का ध्यान युद्ध की प्रगति से हट जाता है परन्तु जयद्रथ की माता द्वारा अर्जुन की जयद्रथ-वध की प्रतिज्ञा का कथन करने से पाठक का ध्यान पुनः युद्ध की घटनाओं की ओर खिंच जाता है। इसीलिये द्वितीय अङ्क में दुःशला और जयद्रथ की माता के दृश्य को बिन्दु समझना चाहिये।[1] साहित्यदर्पण के अनुसार वेणीसंहार में भीमसेन का चरित पताका है।[2] तृतीय अङ्क में अश्वत्थामा का शोक तथा विलाप और उसका कर्ण के साथ कलह भी 'पताका' कहा जा सकता है क्योंकि मुख्य व्यापार की प्रगति में वह प्रासङ्गिक वृत्त ही है। चतुर्थ अङ्क में सुन्दरक के युद्ध-वर्णन को भी 'पताका' में सम्मिलित किया जा सकता है। पञ्चम अङ्क में धृतराष्ट्र द्वारा दुर्योधन को सन्धि के लिये समझाना और षष्ठ अङ्क में चार्वाक का दृश्य 'प्रकरी' कहा जा सकता है। वेणीसंहार में दुर्योधन का वध 'कार्य' है, जिसकी सूचना षष्ठ अङ्क में श्लोक ३७ में दी गई है।

फलार्थी द्वारा प्रारब्ध कार्य की पाँच अवस्थायें होती हैं—(१) आरम्भ (२) यत्न, (३) प्राप्त्याशा, (४) नियताप्ति और (५) फलागम।[3] कार्य की पहली अवस्था 'आरम्भ' होती है, जिसमें फलप्राप्ति की इच्छा प्रकट की जाती है।[4] वेणीसंहार में कार्य की 'आरम्भ' अवस्था भीमसेन की 'चञ्चद्भुज भ्रमित-चण्ड'''इत्यादि उक्तियों में परिलक्षित होती है। कार्य की दूसरी अवस्था 'यत्न' है। फलप्राप्ति न होने पर उसे प्राप्त करने के लिये जो उपाय किया जाता है,

---

१ मिलाइये ए० बी० गजेन्द्रगडकर दी वेणीसंहारः ए क्रिटिकल् स्टडी, पृष्ठ ११९।

२ व्यापि प्रासङ्गिकं वृत्तं पताकेत्यभिधीयते।
यथा—रामचरिते सुग्रीवादेः वेण्यां भीमादेः, शाकुन्तले विदूषकस्य चरितम्।
साहित्यदर्पण ६।५७ ab और वृत्ति।

३ अवस्थाः पञ्च कार्यस्य प्रारब्धस्य फलार्थिभिः।
आरम्भयत्नप्राप्त्याशानियताप्तिफलागमः॥ दशरूपक, १।१९

४ भवेदारम्भ औत्सुक्यं यन्मुख्यफलसिद्धये। साहित्यदर्पण, ६।७१

उसे यत्न' या 'प्रयत्न' कहते है।[1] वेणीसहार मे द्वितीय अङ्क मे जयद्रथ की माता द्वारा वर्णित पाण्डवों, विशेषतः अर्जुन का पराक्रम कार्य की 'यत्न' अवस्था है। 'प्राप्त्याशा' या 'प्राप्तिसभव' कार्य की तृतीय अवस्था है, जिसमे फल-प्राप्ति के उपाय और उसमे आने वाले विघ्नों का विचार करने पर फल की प्राप्ति सम्भव प्रतीत होने लगे।[2] वेणीसंहार मे पृ० १३४ पर भीमसेन की 'सोऽय मदभुजपञ्जरे निपतित. सरक्षयत्ता कौरव.' यह शक्ति, पृ० १३६ अश्वत्थामा की 'सर्वथा पीत दु:शासनशोणित भीमेन' यह उक्ति और चतुर्थ अङ्क मे श्लोक २, ३, ४ और ६ में दुर्योधन की मृत्यु की सम्भावना कार्य की 'प्रत्याशा' अवस्था है। जब अपाय के दूर हो जाने पर फल-प्राप्ति निश्चित हो जाती है, तो वह कार्य की 'नियताप्ति' अवस्था है।[3] वेणीसहार मे जलाशय में छिपे हुए दुर्योधन का पता लग जाने पर पाञ्चालक द्वारा भेजा गया कृष्ण का सन्देश युधिष्ठिर द्वारा समारम्भ की तैयारी का आदेश (पृ० २३४, २३६) कार्य की 'नियताप्ति' अवस्था को सूचित करता है। जब समग्र फल-प्राप्ति हो जाये, कार्य की उस अवस्था को 'फलागम' या फलयोग कहते है।[4] वेणीसहार में द्रौपदी का केश सयमन कार्य की 'फलागम' अवस्था है, जिसका पृ० २८२–८३ पर श्लोक संख्या ४२ मे उल्लेख हुआ है।

पाँच अर्थ-प्रकृति और पाँच कार्यावस्थाओं को मिलाकर उनके आधार पर नाट्य-शरीर का एक तीसरे प्रकार से विभागीकरण किया गया है, जिसे सन्धि कहते है।[5] एक सन्धि मे प्रयोजन से अन्वित कथाशों का एक अवान्तर

---

१ प्रयत्नस्तु फलावाप्तौ व्यापारोऽतित्वरान्वितः। साहित्यदर्पण, ६।७२

२ उपायापायशङ्काभ्या प्राप्त्यांशा प्राप्तिसभवः। दशरूपक, १।२१

३ अपायाभावतः प्राप्तिर्नियताप्तिः सुनिश्चिता। दशरूपक १।२१

४ सावस्था फलयोगः स्याद् यः समग्रफलोदयः। साहित्यदर्पण ६।७३

५ अर्थप्रकृतयः पञ्च पञ्चावस्थासमन्विताः।
यथासंख्येन जायन्ते मुखाद्याः पञ्च सन्धयः॥
अन्तरैकार्थसम्बन्धः सन्धिरेकान्वये सति। दशरूपक १।२२–२३

प्रयोजन से सम्बन्ध होता है।[1] ये सन्धियाँ पाँच होती हैं मुख, प्रतिमुख गर्भ, विमर्श और निर्वहण। मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श और निर्वहण सन्धि में क्रमशः कार्य की आरम्भ यत्न, प्राप्त्याशा नियताप्ति और फलयोग अवस्था होती है।

वेणीसंहार के प्रथम अङ्क में मुख सन्धि तथा द्वितीय अङ्क में प्रतिमुख सन्धि है। तृतीय अङ्क और चतुर्थ अङ्क मे गर्भ सन्धि है। पञ्चम अङ्क में तथा षष्ठ अङ्क में दुर्योधन के रुधिर से रँगे हुए हाथ वाले भीम के प्रवेश तक विमर्श सन्धि है। इसके पश्चात् नाटक की समाप्तिपर्यन्त निर्वहण सन्धि है।

नाट्य-शास्त्रियो ने पाँचो सन्धियो के भी सूक्ष्म विभाग किये हैं, जिन्हें सन्ध्यङ्ग कहते हैं और जिनकी संख्या ६४ (१२+१३+१२+१३+१४) है। वेणीसंहार में इन सन्ध्यङ्गो को यहाँ दिखलाना सम्भव नहीं है। जिज्ञासु पाठकों को इसके लिये दशरूपक या साहित्यदर्पण देखना चाहिये, जहाँ सन्ध्यङ्गों के उदाहरण अधिकतर रत्नावली और वेणीसंहार से लिये गये हैं।

(६) वेणीसंहार की समीक्षा

वेणीसंहार की विशेषतायें—ऊपर (पृ० १४—१७) 'संस्कृत साहित्य में भट्टनारायण का स्थान' शीर्षक के अन्तर्गत भट्टनारायण के कवि और नाटककार रूप का विवेचन करते हुए वेणीसंहार के काव्य-पक्ष तथा नाट्य-पक्ष की ओर संकेत किया गया था। वेणीसंहार नाटक से नाट्यशास्त्र तथा अलङ्कार-शास्त्र के विद्वान् अत्यधिक प्रभावित रहे हैं। उन्होंने अपने ग्रन्थों में अनेक उदाहरण वेणीसहार से लिये हैं। इसी से सस्कृत साहित्य में वेणीसंहार की सैद्धान्तिक महत्ता प्रगट है।

यद्यपि वेणीसंहार नाटक अपने समग्र रूप में सफल नाट्य कृति नहीं कही जा सकती है, क्योकि उसमें वस्तु-ग्रथन की शिथिलता का बड़ा दोष है, तथापि उसके अङ्कों का यदि पृथक्-पृथक् मूल्यांकन किया जाय तो केवल चतुर्थ अङ्क को छोड़कर उसका प्रत्येक अङ्क अपने आप में एक सुन्दर प्रभावपूर्ण

---

१ एकेन प्रयोजनेनान्वितानां कथांशानामवान्तरैकप्रयोजनसम्बन्धः सन्धिः। दशरूपक १।२३ पर धनिक की टीका।

नाट्य-कृति प्रतीत होगा । प्रथम अङ्क में भीम की आवेश एवं उत्साह से पूर्ण उक्तियाँ और तदनुरूप पद-योजना पाठक को बलात् चमत्कृत कर देने वाली हैं । भट्टनारायण ने विरोधी परिस्थितियों के संघर्ष की योजना से नाटक में अपूर्व स्पृहणीयता ला दी है । प्रथम अङ्क मे भीम की क्रोधपूर्ण कटूक्तियों और अपमान-जन्य बौखलाहट के विरोध में युधिष्ठिर की स्थिरता और शान्ति-प्रियता पाठक को उत्तेजनापूर्ण परिस्थिति में शान्तिदायक सिद्ध होती है । विरोधी परिस्थितियों का यह संघर्ष ही नाटक का प्राण है, जिससे पाठक आत्म-विभोर हो जाता है । द्वितीय अङ्क भी प्रथम अङ्क के विरोध मे ही रक्खा गया है । तृतीय अङ्क मे वीभत्स, करुण और वीररस को एक-दूसरे के विरोध में रक्खा गया है । इसी प्रकार पञ्चम अङ्क में करुण और वीर का मिश्रण हुआ है ।

भट्टनारायण ने प्रथम और द्वितीय दोनों ही अङ्कों मे बड़ी चतुरता से रङ्गमञ्च पर दोहरे दृश्य की योजना की है । प्रथम अङ्क में द्रौपदी रङ्गमञ्च पर प्रविष्ट भीम और सहदेव के वार्तालाप को सुनती है और भीम के कोपाविष्ट होने पर प्रसन्न होती है । द्वितीय अङ्क में दुर्योधन भानुमती और उसकी सखी के वार्तालाप को सुनकर नकुल के प्रसङ्ग को माद्री-पुत्र पाण्डव से सम्बद्ध समझकर क्रोधावेश में आकर भानुमती को दण्ड देने का निश्चय करता है, परन्तु सौभाग्य से उसे वस्तुस्थिति का पता चल जाता है और एक भारी दुर्घटना होने से बाल-बाल बच जाती है । पाठक कदाचित् दुर्योधन के साथ स्वयं भी—

> दिष्ट्यार्धश्रुतविप्रलम्भजनितक्रोधादहं नो गतो
> दिष्ट्या नो परुषं रुषार्धकथने किञ्चिन्मया व्याहृतम् ।
> मां प्रत्याययितुं विमूढहृदयं दिष्ट्या कथान्तं गता
> मिथ्यादूषितयानया विरहितं दिष्ट्या न जातं जगत् ॥

वेणीसंहार २।१२

इन शब्दों में सन्तोष का अनुभव करेगा ।

द्वितीय अङ्क में यद्यपि महान् नाटकीय संभावनाओं से भरपूर है, परन्तु मुख्य नाटकीय व्यापार को गति और प्रभाव देने की दृष्टि से इसका

कुछ भी महत्त्व नहीं है, प्रत्युत-व्यापार की पृष्ठ-भूमि में, जोकि नाटक के समग्र शरीर मे ओत-प्रोत है, दुर्योधन की काम चेष्टायें सर्वथा अनुचित हैं। प्राचीन नाट्य-शास्त्रियों ने भी वेणीसंहार के इस स्थल को 'अकाण्ड-प्रथन' नामक रस-दोष के उदाहरण के रूप में उद्घृत किया है।

रस की अभिव्यक्ति, सवादों की चुस्ती और चरित्र-चित्रण मे उभार की दृष्टि से यही बात वेणीसहार के तृतीय तथा पञ्चम अङ्को के विषय मे कही जा सकती है। तृतीय और पञ्चम अङ्क स्वयं सुन्दर नाट्य-कृति हैं, परन्तु मुख्य व्यापार की प्रगति के विचार से ये दोनों ही अङ्क निरर्थक है।

चतुर्थ अङ्क को किसी भी प्रकार श्लाघनीय नही कहा जा सकता है, क्योंकि यह अङ्क सुन्दरक के लम्बे-लम्बे नीरस सवादों के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। यह अङ्क नाटकीयता की सम्भावनाओं से सर्वथा शून्य है।

षष्ठ अङ्क युधिष्ठिर के भ्रातृ प्रेम और करुण रस की अभिव्यक्ति की दृष्टि से प्रशंसनीय है। यह अङ्क नाटकीय व्यापार से भी भरपूर है। फिर भी चार्वाक के दृश्य की अवतारणा से मुख्य व्यापार की परिणति मे अनावश्यक बाधा उपस्थित की गई है।

वेणीसंहार में नाट्यशास्त्र के नियमों का पालन—जैसाकि पहले लिखा जा चुका है कि वेणीसंहार नाटक नाट्य-शास्त्र तथा अलङ्कार-शास्त्र के लेखको का अतिप्रिय ग्रन्थ रहा है। इससे यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि वेणीसंहार में नाट्य-शास्त्र के नियमो का कठोरता से पालन किया गया होगा। पण्डितों का विचार है कि वेणीसहार नाटकीय सिद्धान्तों को ध्यान मे रखकर लिखा गया है। पर नाटकीय सिद्धान्तो को विशेष ध्यान मे रखने के कारण ही यह नाटक नाटकीय गतिशीलता से रहित हो गया है।

वेणीसंहार का संवाद—वेणीसहार के सवादों के विषयो मे कोई एक बात नही कही जा सकती है। कुछ स्थलो मे वेणीसंहार के संवाद बहुत ही सरल उपयुक्त एवं चुस्त है, उनकी भाषा भी प्रसादगुणयुक्त बोलचाल की भाषा है। ऐसे संवादों के लिये द्वितीय अङ्क के उत्तर भाग में दुर्योधन और कञ्चुकी, तृतीय अङ्क मे अश्वत्थामा और कर्ण, पञ्चम अङ्क में धृतराष्ट्र, गान्धारी और दुर्योधन तथा षष्ठ अङ्क मे चार्वाक और युधिष्ठिर आदि के कथोपकथनों की

ओर संकेत किया जा सकता है। भट्टनारायण ने 'अपवार्य' जनान्तिकम्, स्वागतम् आदि उपयुक्त रङ्गमञ्च-निर्देश देकर उन्हें और भी अधिक स्वाभाविक तथा प्राणवान् बना दिया है। परन्तु दूसरी ओर वेणीसंहार में दीर्घसमासयुक्त कृत्रिम शैली में उपनिबद्ध लम्बे-लम्बे नीरस वर्णनात्मक संवाद भी हैं, जो नाटक के लिये सर्वथा अनुपयुक्त हैं। वेणीसंहार के संवादों में एक बड़ा दोष यह है कि भट्टनारायण ने प्राकृत-भाषा-भाषी पात्रों के मुख से भी दीर्घसमासयुक्त भाषा का प्रयोग कराया है। चतुर्थ अङ्क में प्राकृत-भाषा-भाषी सुन्दरक के संवाद इसी कोटि के हैं। षष्ठ अङ्क में पाञ्चालक के संवाद भी नाटक के अनुपयुक्त हैं।

वेणीसंहार की भाषा और शैली—वेणीसंहार संस्कृत में कृत्रिम शैली के युग का नाटक है। इसलिये यह स्वाभाविक था कि भट्टनारायण अपने युग की प्रवृत्तियों के अनुरूप कृत्रिम शैली का अनुसरण करता। भट्टनारायण की शैली उसके समकालीन भवभूति के समान है। भट्टनारायण ने ओजगुणयुक्त समास बहुल गौड़ी, प्रसादगुणयुक्त समास-रहित वैदर्भी और अल्पसमासयुक्त पाञ्चाली तीनों रीतियों का प्रयोग किया है। (ऊपर पृ० १५ भी देखिये)।

वेणीसंहार में चरित्र-चित्रण—भट्टनारायण ने वेणीसंहार में चरित्र-चित्रण की कला सिद्धहस्तता का परिचय दिया है। यद्यपि उसके पात्र महाभारत के लोक प्रसिद्ध पात्र हैं और कवि उनके चरित्र को महाभारत से भिन्न प्रकार का चित्रित करने में स्वतन्त्र नहीं था, फिर भी उसके चरित्र-चित्रण में विशदता, विविधता तथा सजीवता है। लेकिन साथ ही यह भी कहना पड़ेगा कि भट्टनारायण में चरित्र-चित्रण की कला में निपुणता होते हुए भी वह अपने प्रमुख पात्रों के चरित्र का पूर्ण विकास नहीं कर सका है। चरित्र-चित्रण के विषय में भी वेणीसंहार अनुपात-हीनता के दोष से ग्रस्त है।

नाटक के प्रमुख पुरुष पात्र भीम, युधिष्ठिर, कृष्ण, दुर्योधन, अश्वत्थामा, कर्ण, धृतराष्ट्र और प्रमुख स्त्री-पात्र द्रौपदी और गान्धारी हैं।

वेणीसंहार नाटक का मुख्य प्रयोजन जैसाकि नाटक के नाम से प्रकट होता है, द्रौपदी का केश-संयमन है। द्रौपदी के केश-संयमन के प्रयोजन की सिद्धि में मुख्य भूमिका भीमसेन की रही है। इसलिये नाटक की घटनाओं का केन्द्र

भीमसेन ही रहा है। भीम रोष, स्फूर्ति और उत्साह का मूर्त रूप है। नाटक के प्रारम्भ में उसका प्रवेश ही कोपाविष्ट मुद्रा में कराया गया है। वह हर कीमत पर, यहाँ तक बड़े भाई की आज्ञा के उल्लङ्घन के पाप को भी शिरोधार्य करके शत्रु से अपने और अपनी प्रिया द्रौपदी के अपमान का प्रतिशोध लेना चाहता है। युधिष्ठिर के शब्दों में भीम 'प्रियसाहस' है।[1] भट्टनारायण ने भीम को सङ्घर्षशील एवं दर्पोन्मत्त नायक के रूप में चित्रित किया है। सारे नाटक में—प्रथम अङ्क से लेकर षष्ठ अङ्क तक, केवल द्वितीय अङ्क को छोड़कर—उसकी दर्पोक्तियाँ मञ्च पर या नेपथ्य से सुनाई देती हैं। पञ्चम अङ्क में धृतराष्ट्र और गान्धारी को प्रणाम करते समय तो उसका गर्वित एवं उद्धत स्वभाव खटकने लगता है।

भीम के मुकाबले में दुर्योधन भी कोई कम गर्वित और रोषपूर्ण नहीं है। भट्टनारायण ने दुर्योधन का चरित्र-चित्रण करने में और उसके अनेक रूपों का प्रदर्शन करने में अधिक प्रयत्न किया है। द्वितीय अङ्क में जहाँ हमें दुर्योधन के शृङ्गारी रूप का दर्शन होता है, वहीं उसके विपत्ति में भी अपरास्त और अपने बल के गर्वित वीर रूप का भी दर्शन होता है। स्वप्न-दर्शन एवं ध्वजभङ्ग के अपशकुन से आशङ्कित भानुमति को आश्वस्त करते हुये वह कहता है—'त्वं दुर्योधनकेसरीन्द्रगृहिणी शङ्कास्पदं किं तव'।[2] दुर्योधन सचमुच ही वीर-सिंह है। वह अपने शत्रु का का प्रत्यक्ष में ही अहित करना चाहता है।[3] भीम द्वारा यह प्रस्ताव करने पर कि वह शस्त्र धारण करके कोई-से भी पाण्डव से द्वन्द्व युद्ध कर सकता है, वह प्रियसाहस भीमसेन से ही युद्ध की माँग करता है—'कर्ण दुःशासन वधात्तुल्यावेव युवां मम। अप्रियोऽपि प्रियोयोद्धुं त्वमेव प्रियसाहसः॥' (वेणीसंहार ६।११) दुर्योधन केवलमात्र गर्वित एवं अभिमानी नायक ही

---

१. भीमेन प्रियसाहसेन रभसात्स्वल्पावशेषे जये।
सर्वे जीवितसंशयं वयममी वाचा समारोपिताः॥ वेणीसंहार ६।१

२. वेणीसंहार, २।१६

३. प्रत्यक्षं हतबान्धवा मम परे हन्तुं न योग्या रहः।
किं वा तेन कृतेन तैरिव कृतं यत्र प्रकाशं रणे॥ वेणीसंहार ५।६

नहीं है, उसके जीवन का एक अन्य कोमल रूप भी वेणीसंहार में प्रस्फुटित हुआ। वह एक सच्चा और भावुक मित्र भी है। वह अङ्गराज कर्ण का अभिन्न मित्र है और मित्र की विपत्ति उसे अपनी विपत्ति अनुभव होती है। वह कर्ण की मृत्यु होने पर अपने प्रिय अनुज दुःशासन के वध को भी भूलकर अपने मित्र के घातक के कुल को नष्ट करने का निश्चय करता है।[1]

युधिष्ठिर का वेणीसंहार के प्रथम अङ्क में उल्लेख हुआ है और रङ्गमञ्च पर केवल षष्ठ अङ्क मे ही प्रवेश होता है। इस प्रकार भट्टनारायण ने युधिष्ठिर के चरित्र-चित्रण के लिये, जो नाटक का मुख्य नायक है बहुत ही कम स्थान दिया है। युधिष्ठिर शान्त स्वभाव और ज्ञाति-क्षय-भीरु है। वह अपने एक भाई के बिना भी जीवित रहना नही चाहता। षष्ठ अङ्क मे भीम द्वारा अनन्यदिन-गामिनी प्रतिज्ञा कर लेने पर उसकी आशङ्का तथा चार्वाक दृश्य मे भ्रातृप्रेम के कारण उसकी आतुरता से उसके चरित्र पर अच्छा प्रकाश पड़ा है।

कृष्ण को भट्टनारायण ने विष्णु के अवतार के रूप मे चित्रित किया है। कृष्ण का उल्लेख प्रथम और षष्ठ अङ्क में हुआ है और मञ्च पर प्रवेश केवल षष्ठ अङ्क के अन्तिम भाग मे हुआ है। परन्तु कवि ने जैसाकि कृष्ण के मुख से कहलाई गई—'तत्कथय महाराज, किमस्मात्परं समीहितं सम्पादयामि' उक्ति से प्रतीत होता है, कृष्ण को नाटक की घटनाओं के सञ्चालक के रूप में रखता है।

अश्वत्थामा नाटक के तृतीय और पञ्चम अङ्क में कुछ समय के लिये आता है। भट्टनारायण ने अश्वत्थामा को पितृवत्सल और स्वाभिमानी वीर पुरुष के रूप में चित्रित किया है। वह स्वामी का हित करने के लिये अनृत स्वीकार करने के लिये भी तैयार हो जाता है, परन्तु दैव उसे वैसा करने से रोक देता है। उसे इस बात का पश्चात्ताप है कि वह कर्ण के प्रति क्रोध मे की गई प्रतिज्ञा के कारण अपने स्वामी का हित नही कर सका।

---

१ शोचामि शोच्यमपि शत्रुहतं न वत्सं,
दुःशासनं तमधुना न च बन्धुवर्गम्।
येनातिदुःश्रवमसाधु कृतं तु कर्णे,
कर्तास्मि तस्य निधनं समरे कुलस्य ॥ वेणीसंहार ५।१६

कर्ण भी केवल तृतीय अङ्क मे रङ्गमञ्च पर आता है और द्वितीय, पञ्चम और षष्ठ अङ्क मे उसका उल्लेख हुआ है। चतुर्थ अङ्क में सुन्दरक ने उसके पराक्रम का वर्णन किया है और दुर्योधन को उसका संदेश दिया है। वेणीसंहार में कर्ण केवल वीर पुरुष ही नही है, प्रत्युत तिकडमी राजनीतिज्ञ भी है। वह द्रोणाचार्य की मृत्यु के पश्चात् दुर्योधन के मन को द्रोण और अश्वत्थामा के प्रति विषाक्त कर देता है।

धृतराष्ट्र एक पुत्र-वत्सल पिता है। वह युद्ध में पराजय और पुत्र-विनाश को देखकर अपने एकमात्र अवशिष्ट पुत्र दुर्योधन को बचा लेने के लिये उसे युधिष्ठिर से सन्धि कर लेने की सलाह देता है जब दुर्योधन सन्धि के प्रस्ताव से सहमत नही होता है तो धृतराष्ट्र उसे शत्रु के प्रति कपट का अवलम्बन करने का सुझाव देने में भी सकोच नही करता।

द्रौपदी रोष और प्रतिशोध की भावना से भरी हुई क्षत्राणी है, जिसे युधिष्ठिर के सन्धि प्रस्ताव और भी उत्तेजित कर देते हैं। उसे अपमान के सागर को पार करने में एकमात्र भीम का सहारा प्रतीत होता है। वेणीसहार मे द्रौपदी का दूसरा रूप—पति की सुरक्षा के विषय में स्त्री सुलभ सहज आशङ्का और पति प्रेम भी प्रकट हुआ है।

भानुमती एक आदर्श हिन्दू स्त्री के रूप में चित्रित की गई है। वह केवल सुन्दरी ही नही है, अपितु सद्गृहिणी भी है। पति की विजय-मङ्गल की कामना के लिये वह व्रत और उपवास रखकर देवो की आराधना करना चाहती है। एक धर्मभीरु हिन्दू स्त्री के समान वह शकुनो और निमित्तो मे विश्वास रखती है।

गान्धारी पुत्र-वत्सल माता है। उसे इसी में सन्तोष है कि उसका एक पुत्र तो बच जाय। पुत्र की रक्षा के सामने उसे *राज्य या जय हेय है—'त्वमपि तावदेकोऽस्यान्धयुगलस्य मार्गोपदेशकः। तच्चिरं जीव। किं मे राज्येन जयेन वा।'* (वेणीसंहार पृ० १८२)।

वेणीसहार का नायक—वेणीसंहार में महाभारत के कई प्रमुख पात्र नायक हैं और भट्टनारायण उनमे से किसी एक के चरित्र का इतनी प्रमुखता से विकास नही कर सका है कि उसे असंदिग्ध रूप से नाटक का मुख्य नायक माना जा सके। इसलिये यह प्रश्न विवादास्पद एवं जटिल हो गया है कि

वेणीसंहार में मुख्य नायक कौन है। ऊपरी तौर पर वेणीसहार में मुख्य नायक पद के दावेदार तीन व्यक्ति हो सकते हैं—दुर्योधन, भीम और युधिष्ठिर।

कवि दुर्योधन के चरित्र के चित्रण में विशेष सचेष्ट प्रतीत होता है। दुर्योधन का नाटक के प्रथम अङ्क मे उल्लेख हुआ है। द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ और पञ्चम अङ्क में वह रङ्गमञ्च पर उपस्थित रहता है और षष्ठ अङ्क में भी उसका बार-बार उल्लेख किया गया है। वह कौरवों का मूर्धाभिषिक्त राजा भी है। इस प्रकार नाटक में दुर्योधन को दिये स्थान को देखते हुए दुर्योधन को मुख्य नाटक का पद दिया जा सकता है। कुछ विद्वानों ने, जो वेणीसहार को करुण-रस प्रधान दुःखान्त नाटक (tragedy) मानते हैं, दुर्योधन को ही वेणीसंहार का मुख्य नायक मानते है।[१] परन्तु दुर्योधन को मुख्य नायक मानने में भारतीय नाट्यशास्त्र के इस प्राचीन सिद्धान्त से विरोध पड़ता है कि कभी भी अधिकारी का वध नही दिखलाना चाहिये[२], क्योंकि छठे अङ्क में दुर्योधन के वध की सूचना दी गई है।

भीमसेन भी नाटक के प्रथम, पञ्चम तथा षष्ठ अङ्क मे रङ्गमञ्च पर उपस्थित रहता है। तृतीय और चतुर्थ अङ्क में भी नेपथ्य से कही गई उसकी गर्वोक्तियों तथा सुन्दरक द्वारा वर्णन किये गये उसके पराक्रम से निरन्तर उसकी सत्ता का भान बना रहता है। द्वितीय अङ्क मे कञ्चुकी के भग्नं भग्नं भीमसेन। इस वचन में पाठक का ध्यान भीम की ओर आकृष्ट होता है। नाटक का मुख्य प्रयोजन द्रौपदी का केश-संयमन, भीम द्वारा ही सम्पन्न किया गया है। इस प्रकार भीम, दुर्योधन के अनन्तर दूसरा पात्र है, जो सारे नाटक में छाया रहता है। इस प्रकार प्रो० ए० बी० गजेन्द्रगडकर ने भीम को वेणीसंहार का

---

१ रामचन्द्र राव : ट्रेजेडीज् इन सस्कृत प्रोसीडिंग्ज् आफ एट्थ ओरियण्टल कान्फ्रेंस, १६३५ पृ० २६६ और आगे, पाण्डेय तथा व्यास : संस्कृत साहित्य की रूपरेखा, द्वितीय संस्करण १९४८, पृ० २१३-१४।

२ नाधिकारिवधं क्वापि। दशरूपक, ३।३६; अधिकृतनायकवध प्रवेशकादिनाऽपि न सूचयेत्। वही, धनिक की टीका।

मुख्य नायक माना है।[1] लेकिन भीम को नाटक का मुख्य नायक स्वीकार करने मे भी प्राचीन नाट्यशास्त्रीय परम्परा आड़े आती है। नाट्यशास्त्र के सिद्धान्तो के अनुसार नाटक के नायक को धीरोदात्त—महासत्त्व, अतिगम्भीर क्षमावान् अविकत्थन' स्थिर, निगूढाहङ्कार और दृढव्रत होना चाहिये।[2] लेकिन भीम धीरोद्धत प्रकार का नायक है। सारा नाटक उसकी र्ओक्तियों से गूज रहा है। वृद्ध धृतराष्ट्र और गान्धारी के सम्मुख भी वह वाणी पर संयम रखने का प्रयत्न नही करता है। अहङ्कार, रोष एव उच्छृङ्खलता उसका स्वभाव है। इसलिये प्राचीन परम्परा के अनुसार भीमसेन को नाटक का मुख्य नायक स्वीकार नही

किया जा सकता।

अब मुख्य नायक पद का अधिकारी केवल युधिष्ठिर रह जाता है। प्राचीन नाट्यशास्त्र के सिद्धान्तों तथा प्राचीन अलङ्कारिकों के मत के अनुसार युधिष्ठिर ही वेणीसंहार का मुख्य नायक है। युधिष्ठिर धीर, प्रशान्त तथा अविकत्थन नायक है। कवि को भी कदाचित् युधिष्ठिर को ही मुख्य नायक मानना अभीष्ट था। संस्कृत नाटकों की यह परम्परा है कि नाटक के उपसंहार मे अभिमत फल की कामना जो प्रायः भरतवाक्य के रूप मे होती है मुख्य नायक के मुख से कराई जाती है। वेणीसंहार में यह कामना युधिष्ठिर से कराई गई है। पुनश्च युद्ध की समाप्ति पर शत्रु बध रूप कार्य का मुख्य फल 'राज्य की प्राप्ति' युधिष्ठिर को होती है। युधिष्ठिर के आदेश के बिना युद्ध ही प्रारम्भ नही हो सकता था। इसलिये नाटक का मुख्य व्यापार वस्तुतः युधिष्ठिर की इच्छा के अधीन है। भीम और अर्जुन आदि पाण्डव युधिष्ठिर के आदेश में ही चल रहे हैं। युधिष्ठिर को मुख्य नायक मानने मे केवल एक बाधा है, और वह यह है कि कवि ने युधिष्ठिर को नाटक मे बहुत ही अल्प स्थान दिया है और युधिष्ठिर के चरित्र के विकास की ओर कवि का ध्यान नही गया है। युधिष्ठिर का उल्लेख केवल प्रथम और पञ्चम अङ्क मे हुआ है और रङ्गमञ्च पर प्रवेश तो केवल

---

१ दी वेणीसंहार . ए क्रिटिकल स्टडी, पृ० ६२, ३।

२ महासत्त्वोऽतिगम्भीरः क्षमावानविकत्थनः।
स्थिरो निगूढाहङ्कारो धीरोदात्तो दृढव्रत. ॥ दशरूपक २।४।५

छठे अङ्क में ही हुआ है। युधिष्ठिर के प्रति किये गये इस अन्याय के लिये कवि में अनुपातहीनता की भावना ही उत्तरदायी है।

वेणीसंहार का रस—जैसाकि पहले (पृष्ठ १५) में कहा गया है, वेणीसंहार में वीर, बीभत्स, करुण और शृङ्गार रस की अच्छी अभिव्यक्ति हुई है। लेकिन वेणीसंहार के मुख्य नायक के समान, उसके मुख्य रस का प्रश्न भी विवादास्पद बन गया है। प्रथम अङ्क में वीर रस की प्रधानता है तो द्वितीय अङ्क में शृङ्गार रस की। तृतीय अङ्क में वीर और करुण रस समान रूप से पाया जाता है। तृतीय अङ्क के प्रवेशक में बीभत्स रस की व्यञ्जना हुई है। चतुर्थ अङ्क मे सुन्दरक के युद्ध-वर्णन में यद्यपि वीरों के पराक्रम का कथन हुआ है, लेकिन वृष-सेन की मृत्यु और उस पर कर्ण और दुर्योधन की प्रतिक्रिया के वर्णन में करुण रस की प्रधानता है। पञ्चम अङ्क में धृतराष्ट्र और गान्धारी के पुत्र-विलाप तथा दुर्योधन के कर्ण की मृत्यु पर किये शोक प्रकाशन में करुण रस है, लेकिन अङ्क के अन्त में दुर्योधन और भीम की उक्ति-प्रत्युक्तियों मे वीर रस पाया जाता है। षष्ठ अङ्क में करुण रस की प्रधानता है। भीम को दुर्योधन समझकर युद्ध करने के लिये उद्यत युधिष्ठिर की उक्तियाँ वीरतापूर्ण है। इस प्रकार वेणी-संहार नाटक में वीर और करुण रस निरन्तर चलते हैं। प्रो० गजेन्द्रगडकर ने वेणीसंहार को करुण रस प्रधान नाटक माना है। परम्परा मे वेणीसंहार को वीर रस का नाटक माना जाता है। कुछ आधुनिक आलोचक भी वेणीसंहार का अङ्गी रस वीर मानते है।

वेणीसंहार में प्रकृति-वर्णन—वेणीसंहार में प्रकृति-वर्णन की ओर कोई विशेष ध्यान नही दिया है। परन्तु फिर भी द्वितीय अङ्क में प्रभात का परम्प-रागत सुन्दर चित्र उपस्थित किया गया है। द्वितीय अङ्क मे वात्या का वर्णन प्रकृति के कठोर रूप का सफल चित्र है। उपयुक्त पदों की योजना चित्र के रंग को उभार देने में पूर्ण रूप से सफल रही है।

वेणीसंहार में सामाजिक अवस्था—वेणीसंहार की कथावस्तु महाभारत के प्राचीन आख्यान पर आधारित है और वेणीसंहार मुख्य रूप से घटना-प्रधान नाटक है, इसलिये वेणीसंहार मे यह आशा नही की जा सकती कि उससे कवि के समय के समाज की अवस्थाओं पर अधिक प्रकाश पड़ेगा। परन्तु फिर भी

कवि कल्पित भावों (द्वितीय और षष्ठ अङ्क) से कवि के समय की सामाजिक अवस्था पर कुछ प्रकाश अवश्य पड़ता है। भानुमती के स्वप्न-दर्शन की घटना से प्रतीत होता है कि उस समय भी समाज में, विशेषत: स्त्रियों में शकुन और निमित्तों का विचार किया जाता था, और लोगों का यह विश्वास था कि देवाराधन तथा पूजा-पाठ आदि द्वारा उनके बुरे प्रभाव को दूर किया जा सकता था। अङ्गों के स्पन्दन से भी लोग भावी घटनाओं का अनुभव करते थे। ध्वज-भङ्ग को बुरा शकुन समझा जाता था। मृतकों को जल-तर्पण किया जाता था। उस समय मृताशौच की भी प्रथा प्रचलित थी। ब्राह्मण को अवध्य समझा जाता था। कभी-कभी स्त्रियाँ पति की मृत्यु के पश्चात् सती भी हो जाती थी।

वेणीसंहार में प्रयुक्त छन्द—भट्टनारायण ने वेणीसंहार में १८ प्रकार के छन्दों का उपयोग किया है जिनमें प्रमुख श्लोक, वसन्त-तिलका, शार्दूलविक्रीडित शिखरिणी और स्रग्धरा है। (वेणीसंहार में प्रयुक्त छन्दों के लक्षण पृ० २९८—३०० पर देखिये)।

वेणीसंहार का उत्तरवर्ती नाटकों पर प्रभाव—भट्टनारायण के वेणीसंहार ने केवल नाट्यशास्त्र तथा अलंकार-शास्त्र के विद्वानों को ही आकृष्ट नहीं किया है, प्रत्युत उसके परवर्ती कवि एवं अन्य व्याख्याकार भी उससे प्रभावित हुए हैं। अमरकोष के प्रसिद्ध टीकाकार क्षीरस्वामी ने वेणीसंहार से अनेक उद्धरण दिये है। ९वीं शताब्दी के प्रसिद्ध कवि राजशेखर के नाटक बालरामायण में वेणीसंहार का अनुकरण स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। राजशेखर की रावण के मुख से कहलाई गई, अराममलक्ष्मण भुवनमद्य निर्वानरम्' इत्यादि (अङ्क ८, ५७) दर्पोक्ति में 'अकेशवमपाण्डवं भुवनमद्य नि सोमकम्' इत्यादि (वेणीसंहार ३, ३४) का स्पष्ट अनुकरण प्रतीत होता है। इसी प्रकार 'य कर्ता हरचापदण्डदलने यश्चानुमन्ता ननु। द्रष्टा यश्च परीक्षिता च य इह श्रोता च वक्ता च य' इत्यादि परशुराम की उक्ति में वेणीसंहार मे अश्वत्थामा की 'कृतमनुमतं दृष्ट वा यैरिदं गुरुपातकम्' (अङ्क ३, २४) इस उक्ति की प्रतिध्वनि प्रतीत होती है।

—डॉ० शिवराज शास्त्री

* श्री *

श्रीभट्टनारायणप्रणीतम्

वेणीसंहारम्

जगद्धरकृतटिप्पण्या भाषान्तरेण च समेतम्

वेणीसंहारम्

जगद्धरकृतया टिप्पण्या समेतम्

प्रथमोऽङ्कः

निषिद्धैरप्येभिर्लुलितमकरन्दो मधुकरैः
करैरिन्दोरन्तश्छुरित इव संभिन्नमुकुलः ।
विधत्तां सिद्धिं नो नयनसुभगामस्य सदसः
प्रकीर्णः पुष्पाणां हरिचरणयोरञ्जलिरयम् ॥१॥

कण्ठस्थाहिमणीविभूषिततनू राजजटापल्लवो
हृष्यन्मौलिसुधाकरैककुसुमस्तत्पञ्चशाखाश्रयः ।
स्थाणुर्मे फलदोऽस्तु नित्यमधिकं गौरीमुखेन्दुद्रव-
त्पीयूषद्रवपानदोहदवशात्कल्पद्रुमत्वं वहन् ॥

गुरूपदेशमासाद्य विभाव्य निपुणं हृदा ।
श्रीजगद्धरधीरेण टिप्पणी क्रियते शुभा ॥

इह तावन्निर्विघ्न प्रारिप्सितसिद्धिमनुरुध्य कविः स्वेष्टदेवताकीर्तनरूपं मङ्गलं नान्दीमुखेनाह—निषिद्धैरिति । अयं पुष्पाणामञ्जलिः नः अस्माकं सिद्धिं विधत्तां करोतु । कीदृशीम् । अस्य सदसः सभायाः नयनसुभगां नेत्रप्रीतिजननीम् । तथा च सदस्यानामपि नेत्रानुरागं विदधात्विति भावः । कीदृशोऽञ्जलिः । हरिचरणयोः कृष्णपदद्वये प्रकीर्णः विस्तीर्णः । इष्टदेवतापूजोपकरणीभूत इति भाव । अत एव तद्द्वारा देवता प्रीता स्यात्तथा च निर्विघ्नस्वेष्टलाभ इति मङ्गलाचरणफलम् । अत्राञ्जलिपदेन लक्षणयाऽञ्जलिस्थपुष्पाणि लक्ष्यन्ते । पुनः कीदृशः । एभि-र्मधुकरैर्लुलितमकरन्दः पुरोवर्तिभ्रमरैः पीतरसः । कीदृशैः निषिद्धैरपि निवारितै-रपि । करादिचालनेन निवारिता अपि प्रसभरसलोभात्पतन्तस्त इति भावः । यद्वा । निषिद्धैः धर्मशास्त्रनिषिद्धैः । छिद्राणि कीटजुष्टानि कुसुमानि विवर्जयेत् ।

वेणीसंहार

हिन्दी अनुवाद

—: ० :—

प्रथम अङ्क

(बार-बार) हटाये गये भी इन भौरों द्वारा पिये गये मधु वाली, चन्द्रमा की किरणों द्वारा मध्य भाग में, मानो, व्याप्त, (अत:) खिली हुई कलियों वाली, विष्णु के चरणों में बिखेरी गई, यह सुमनों की अञ्जलि हमें इस सभा के नेत्रों को अच्छी लगने वाली सफलता प्रदान करे ॥१॥

इति मनुवचनात् । पुन: कीदृश: । संभिन्नमुकुल: प्रफुल्लकलिकाक: । अत्रोत्प्रेक्षितं कारणमाह—अन्त: अभ्यन्तरे इन्दो: करै: चन्द्रकिरणै: छुरित इव, तथा च सुधाकरकरसंपर्कादिव प्रफुल्लतेति भाव: । मकरन्द: पुष्परस: इत्यमर: । अत्र हिमकरकरस्पर्शान्मुकुलसभेदेन निशाचरप्रकाश्यानि कुसुमानि योग्यतया विवक्षितानीति केचित् । सामान्यत: पुष्पाणीह विवक्षितानि । प्रफुल्लताहेतुश्चोत्प्रेक्षितोऽप्यन्नस्य इव । अन्यथा चोत्प्रेक्षाया अप्रसङ्ग: । उत्प्रेक्षा च—अन्यथैव स्थिता वृत्तिश्चेतनस्येतरस्य वा । अन्यथोत्प्रेक्ष्यते या तु तामुत्प्रेक्षां विदुर्बुधा: ॥ इति लक्षिता । इवशब्दश्चोत्प्रेक्षाभिव्यञ्जक: । तथा च दण्डी । मन्ये शङ्के ध्रुवं प्रायो नूनमित्येवमादिभि: । उत्प्रेक्षा व्यज्यते शब्दैरिव शब्दोऽपि तादृश: । इत्यपरे मधुव्रतो मधुकरो मधुलिड् इत्यमर: भानु: करो मरीचि: इति च । भिन्नो दारितसंगतो इति च । सद: समिति सयंति इति शाश्वत: । [पाणिनिकुब्ज: प्रमृति:] तौ युतावञ्जलि: पुमान् । इत्यमर: । यह नान्दी त्रिभि: श्लोकैर्द्वादशपदा । तदुक्तं संगीतसर्वस्वे—प्रशस्तपदविन्यासा चन्द्रसंकीर्तनान्विता । आशीर्वादपरा नान्दी योज्येयं मङ्गलान्विता ॥ काचिद्द्वादशपदा नान्दी काचिदष्टपदा तथा । सूत्रधार: पठदेना मध्यमं स्वरमाश्रित: ॥ चन्द्रसंकीर्तनं यत्र तदघीनो रसो मत: । प्रीते चन्द्रमसि स्फीता रसश्रीरिति भावुकि: ॥ इति । तत्रापि पदं केचन विभक्तयन्तमूचिरे । केचित्तु पदं पद्यस्य चतुर्थभागमाहु: । तदिह द्वितीय

अपि च—

कालिन्द्याः पुलिनेषु केलिकुपितामुत्सृज्य रासे रसं
गच्छन्तीमनुगच्छतोऽश्रुकलुषां कंसद्विषो राधिकाम् ।
तत्पादप्रतिमानिवेशितपदस्योद्भूतरोमोद्गते-
रक्षुण्णोऽनुनयः प्रसन्नदयितादृष्टस्य पुष्णातु वः ॥२॥

अपि च—

दृष्टः सप्रेम देव्या किमिदमिति भयात्संभ्रमाच्चासुरीभिः
शान्तान्तस्तत्त्वसारैः सकरुणमृषिभिर्विष्णुना सस्मितेन ।
आकृष्यास्त्रं सगर्वैरुपशमितवधूसंभ्रमैर्दैत्यवीरैः
सानन्दं देवताभिर्मयपुरदहने धूर्जटिः पातु युष्मान् ॥३॥

पक्षाश्रयणेन त्रिभिः श्लोकैर्द्वादशपदा नान्दी । इह निषिद्धपदेन मित्रादिना निषिद्धा अपि सुयोधनादयो निजदर्पादगणिततन्निषेधा युद्धार्थं लग्ना इति ध्वनितम् । सभिन्नमुकुलपदेन च युधिष्ठिरादीनां वनवासादिदुःखानन्तरं सुखप्रकाशोदर्शन इति केचित् । नान्द्या वस्तुनिर्देशस्यानङ्गतया तत्सूचनमत्राकिंचित्करम् । सूचनं तु तत्पक्षा—इत्यादिनाग्रे कर्तव्यमेव । तत्प्रतीकस्य तदर्थत्वादित्यन्ये ॥१॥

बहुविघ्नशङ्कया तत्राशार्थं पुनर्मङ्गलमाचरन्नान्दीनिर्वाहार्थमाह—कालिन्द्या इति । कंसद्विषः कृष्णस्य अनुनयो यो युष्मान् पुष्णातु पुष्टान्करोतु । कीदृशः । अक्षुण्णः अखण्डितः । अत्र हेतुमाह—प्रसन्नदयितादृष्टस्य । सप्रसादराधावलोकितस्येत्यर्थः । कीदृशस्य । केलिकुपितां कौतुक एव क्रोधवती राधिकां कालिन्द्याः यमुनायाः पुलिनेषु तोयोत्थितदेशेषु अनुगच्छतः अनुप्रयातस्य । कीदृशीम् । रासे गोपक्रीडायां रसम् अनुरागम् उत्सृज्य त्यक्त्वा गच्छन्तीम् अत एव अश्रुकलुषां रुदतीम् । तथा च रासानुरागिणी प्रणयकुपिता रुदती चेति राधाया अवस्थात्रयं सूचितम् । इदमालोक्य भगवतापि तदनुगमः कृत इत्याशयः । अत एव तत्पादप्रतिमासु तच्चरणपद्धतिषु निवेशितपदस्य दत्तपादस्य ।

चात्यन्तानुरागवशाद् उद्भूतरोमोद्गतेः जातरोमाञ्चस्य । अत एव प्रसादो

और भी—

यमुना के वालु-तट पर (किसी कारणवश) क्रीड़ा में कुपित हुई, रास-लीला के आनन्द को छोड़कर जाती हुई और अश्रुओं से मलिन राधिका के पीछे-पीछे जाते हुये, उसके (राधा के) पद-चिह्नों पर पैर रखते हुये, (इसलिये) रोमाञ्च उत्पन्न हुये और प्रसन्न हुई प्रिया (राधा) द्वारा देखे गये कृष्ण (कंस के शत्रु) का सफल अनुनय आप लोगों (सामाजिकों) की पुष्टि करे ॥२॥

और भी—

मयपुर के दाह के समय, देवी (पार्वती) द्वारा प्रेमपूर्वक देखा गया, असुर स्त्रियों द्वारा 'यह क्या है' इस प्रकार भय और उद्वेग से (देखा गया), विष्णु द्वारा मन्दहास के साथ (देखा गया), वधुओं की घबराहट को शान्त कर देने वाले गर्वित दैत्यवीरों द्वारा अस्त्र खींचकर (देखा गया) और देवताओं द्वारा आनन्दपूर्वक (देखा गया) शिव तुम्हारी रक्षा करें ॥३॥

राधयापि कृतः । मत्पदसवन्धादेवाय भावाविर्भाववान्तितरां मत्सगमादिति मयि परममयमनुरक्त इति सप्रसादं कुपितयापि कान्तया दृष्ट इति भावः । तोयोत्थितं तु पुलिनम् इत्यमरः । अत्र प्रथमार्धेन द्रौपद्याः कोपरोदने सूचिते । उत्तरार्धेन च दुर्योधनवधानन्तरं भीमकृततदीमानुनस्याक्षुण्णता तस्याश्च प्रसादवत्त्वं सूचितम् ॥२॥

यत्र विवक्षितार्थस्यापर्यवसानादवशिष्टस्य कथनं तत्र अपि च इति शब्दः प्रयुज्यत इति व्युत्पत्तिः । एवमन्यत्रापि ।

कवेर्हरिहरनिमग्नमानसत्वेन हरौ स्तुतिमुक्त्वा हरे तामाह—दृष्ट इति । धूर्जटिः शिवः युष्मान् पातु रक्षतु । कीदृशः । मयपुरदहने त्रिपुरदाहे सप्रेम प्रीतिसहितं यथा स्यादेवं देव्या भवान्या दृष्टः । धन्याहं यद्वल्लभेनायमतिबलो महासुरो निपूदित इति प्रीतिमत्या भगवत्या दृष्ट इति भावः । तदैव असुरीभिः असुरवधूभिः किमिदम् आपतितम् इति कृत्वा भयात् त्रासात् संभ्रमाद् उद्वेगाच्च दृष्टः । आ कष्टं कथमीदृशस्याप्यसुरराजस्यायं दशापरिपाक इति मत्स्वामिनामप्येवं कदाचित्स्यादिति भीतिरुद्वेगश्च ताभिः कृत इति भावः । ऋषिभिः वसिष्ठादिभिः सकरुणं दयान्वितं यथा स्यादेव दृष्टः । अहह कथमयं वराको जगदीशेन हरेण समूलमुन्मूलित इति तेषां दया । अत्रोपपत्तिमाह—शान्ते-

(नान्द्यन्ते)

सूत्रधारः—अलमतिप्रसङ्गेन ।

श्रवणाञ्जलिपुटपेयं विरचितवान्भारताख्यममृतं यः ।
तमहममरागकृष्णं कृष्णद्वैपायनं वन्दे ॥४॥

शान्तमुपशमवद्यदभ्यन्तरं तेन तत्वमनारोपितरूपं सारो बलं येषां तैः । शान्तमानसैः रिपुनाशेऽपि करुणा युज्यत एव । सस्मितेन हास्यवता विष्णुना नारायणेन दृष्टः । यदयमधिकबलोऽसुरराजो हरेण ध्वस्तस्तन्मम दैत्यारेर्भारलाघवमेव जातमित्युत्साह एव हासहेतुः सगर्वं अहङ्कारान्वितैः दैत्यवीरैर्दृष्टः । गर्वे हेतुमाह—अस्त्रमाकृष्य कोदण्डादिकमुत्क्षिप्य उपशमितवधूसंभ्रमैः शान्तनिजकान्तोद्वेगैः । आः क इह मत्स्वप्रभावाद्विपरीतमरं इति मा भैषीरिति निजवधूमनुद्विग्नमानसां कुर्वाणैरिति भावः । देवताभिः इन्द्रादिभिः सानन्दं सहर्षं दृष्टः । अत्र प्रथमारातिवध एवानन्दहेतुः । सर्वत्र मयपुरदहनं इत्यन्वीयते । असुरीत्यत्र पुंयोगदाख्यायाम् इति ङीष् । मयो नाम दैत्यशिल्पी । तेन रचितं पुरं मयपुरम् । भारतसंग्रामेऽपि देव्या द्रौपद्या पूर्ववैरस्मरणेन दृष्टः । असुरीभिरिवासुरीभिर्दुर्योधनादिवधूभिर्भयोद्भ्रान्ताभ्यां दृष्टः । कार्णिकनारदादिभिः सदयं दृष्टः । कृष्णेन हसता दृष्टः । दैत्यवीरैर्घटोत्कचादिभिः सगर्वं दृष्टः । सानन्दमिन्द्रादिभिश्च दृष्ट इत्यपि कश्चित्पदार्थमिति वदन्ति । अत एव पत्रावलीरूपा नान्दीयम् । तदुक्तं तत्रैव—काव्यार्थबीजरचिता चन्द्रादिपदाङ्किता नियुक्ता । चन्द्रनाम्ना सा पत्रावल्यभिधीयते इति ॥३॥

नान्द्यन्ते इति । नान्दीसमाप्तौ । नहि नान्दीपाठानन्तरं सूत्रधारो रङ्गभूमिं प्रविशति । किन्तु प्रविश्य पठति । न चान्येनैव नान्दी पठनीया । सूत्रधारपठनीयत्वेन तस्या उक्तत्वात् । सूत्रधारः पठेत्तत्र मध्यमं स्वरमाश्रितः । इति वचनात् । उक्तं च—नान्दी नाट्यप्रवेशकालानन्तरं सूत्रधारेणैव पठनीया । नान्द्यन्ते सूत्रधार इति सूत्रधारनाम्नाऽन्यस्य प्रयोगः । तदुक्तं तत्रैव—नान्दीं प्रयुज्य निष्क्रान्तः सूत्रधारः महामुनेः । स्थापकः प्रविशेत्तत्र सूत्रधारगुणाकृतिः । पूर्वरङ्गं विधायादौ सूत्रधारे विनिर्गते । प्रविश्य तद्वदपरः काव्यमास्थापयेन्नटः । इति । अत एव पुस्तकेषु नान्द्यन्ते स्थापकः इत्येव पाठः । केचित्तु—नाटकस्य नान्दी

.(नान्दी के पश्चात्)

सूत्रधार—बस, अधिक करने से (क्या प्रयोजन)

जिसने स्रोतरूपी अञ्जलि-पुट से पीने योग्य भारत (महाभारत) नाम के अमृत को बनाया है, मैं उन रागरहित और पाप-शून्य कृष्णद्वैपायन (भगवान् व्यास) को नमस्कार करता हूँ ॥४॥

सूत्रधारेण पठनीया। किंतु मङ्गलार्था येन केनचित्पठ्यते। सूत्रधारश्च रङ्गपूजार्थं प्रविष्ट इति स एव पठति। तदुक्तम्—नाट्यस्य यदनुष्ठानं तत्सूत्रं स्यात्सबीजकम्। रङ्गदैवतपूजाकृत्सूत्रधार उदीरितः। इत्याहु. ॥ तत्र। सूत्रधारः पठेदेनां मध्यमं स्वरमाश्रितः। इति भरतविरोधात् ॥ तत्र सूत्रधारस्योपलक्षणत्वे प्रमाणाभावात्। अन्ये तु—नान्द्यवसाने सूत्रधारः प्रविशति वदति वा। तदन्ते सूत्रधारस्यैव श्रुतत्वात्सापि तेनैव पठनीया। प्रथमं च सूत्रधार इति नोक्तम्। मङ्गलार्थं देवतानमस्कारादेरेव विधानादित्यूचुः। ननु प्रस्तावनायाः पूर्वं बहूनि नाट्याङ्गानि सन्ति तानि किमिति नोक्तानि।.तदुक्तं तत्रैव—रङ्गं प्रसाद्य मधुरैः श्लोकैः काव्यार्थसूचकैः। ऋतुं कंचिदुपादाय भारती वृत्तिमाश्रयेत्। भेदैः प्ररोचनायुक्तैर्वीथीप्रहसनामुखैः। सूत्रधारो नटी ब्रूते मार्षं वाथ विदूषकम्। स्वकार्यं प्रस्तुताक्षेपि चित्रोक्त्या यत्तदामुखम्। अत—आह अलमिति। अयमाशयः—पूर्वोक्तान्यङ्गानि न भवन्ति। किंतु परिषदोऽभिमुखीकरणानि। सा चेत्स्वयमेव कृतावधाना नवनाटकदर्शनोत्सुका च तत्रान्यत्प्रयुज्यमानं रसभङ्गाय भवेदिति कृतं तत्प्रणयनेन। अन्यथा तस्या रसविच्छेदः स्यादिति।

इदानीं व्यासप्रशंसामाह—श्रवणेति.। तं कृष्णद्वैपायनं व्यासम् अहं .वन्दे नमस्करोमि। यस्तदोनित्याभिसंबन्धादाह—यः.भारतनामकम् अमृतं विरचितवान् अकरोत्। आप्यायनादिकर्तृत्वेनामृतत्वं भारतस्य। कीदृशम्। श्रवणं कर्णः तदेव अञ्जलिपुटं तेन पेयं श्रव्यमथ च पानीयम्। अन्यदप्यमृतमञ्जलिपुटेन पीयते। कीदृशम्। अरागं रागशून्यम्। विषयासक्तिहीनमित्यर्थः। अत एव अकृष्णं निष्कलुषम्। तदिह प्रतिपाद्यभारतकथाया आदिकर्ता व्यासस्तत्त्वविच्चेति तत्कीर्तनं शुभकृदेव भवतीति तदेव कृतमिति भावः ॥४॥

[तत्रभवन्तो मान्याः। परिषदग्रेसरः सभापुरोगण्याः] विज्ञाप्यं संबोध्यम्।

(समन्तादवलोक्य) तत्र भवन्तः परिषदग्रेसराः, विज्ञाप्यं नः किञ्चिदस्ति ।

कुसुमाञ्जलिरपर इव प्रकीर्यते काव्यबन्ध एषोऽत्र ।
मधुलिह इव मधुबिन्दून्विरलानपि भजत गुणलेशान् ॥५॥

तदिदं कवेर्मृगराजलक्ष्मणो भट्टनारायणस्य कृतिं वेणीसंहारं नाम नाटकं प्रयोक्तुमुद्यता वयम् । तदत्र कविपरिश्रमानुरोधाद्वा उदात्तकथावस्तुगौरवाद्वा नवनाटकदर्शनकुतूहलाद्वा भवद्भिरवधानं दीयमानमभ्यर्थये ।

कुसुमाञ्जलिरिति । एष काव्यबन्धः अपरः कुसुमाञ्जलिरिव प्रकीर्यते विस्तार्यते । अत्र काव्यबन्धे । विरलानपि स्वल्पानपि गुणलेशान् गुणकणान् भजत गृह्णीत । हे सभ्याः इति शेषः । [मधुलिह इव] यथा मधुकराः कुसुमाञ्जलौ मधुबिन्दून् विरलानपि गृह्णन्ति तथेत्यर्थः । अनेन मदीयनाटके स्वल्पा अपि गुणा गुणिभिर्ग्राह्या इत्यौद्धत्यपरिहारोऽपि कृत इति ध्वनितम् ॥५॥

मृगराजलक्ष्मणः सिंहचिह्नस्य । नारायणभट्टस्य । कृतिनाटकशब्दयोरजहल्लिङ्गतया सामानाधिकरण्यम् । वेणीसंहारमिति वेण्याः द्रौपदीकेशरचनाविशेषस्य हेतुना संहारो विनाशो दुःशासनादीनां यत्र तत्तथा । यद्वा । वेण्याः संहारो मोक्षणं यत्र तत्तथा भारतान्तरमिह वेणीमोक्षणकथनात् । नाटकमिति तदुक्तं तत्रैव— प्रकृतित्वादथान्येषां भूयो रसपरिग्रहात् । संपूर्णलक्षणत्वाच्च पूर्वं नाटकमुच्यते । नाटके सूच्यमर्थं तु पञ्चभिः प्रतिपादयेत् । विष्कम्भचूलिकाङ्कास्याङ्कावतारप्रवेशकैः ॥ वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः । संक्षेपार्थस्तु विष्कम्भो मध्यपात्रप्रयोजितः ॥ तद्वदेवानुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः । प्रवेशोऽङ्कद्वयस्यान्तः शेषार्थस्योपसूचकः । अङ्कद्वयस्यान्तरिति प्रथमेऽङ्के न कर्तव्य इत्यर्थः । अन्तर्जवनिकासंस्थैश्चूलिकार्थस्य सूचना । अङ्कान्तपात्रैरङ्कास्यं छिन्नाङ्कार्थस्य सूचना ॥ अङ्कावतारस्त्वङ्कान्ते पातोऽङ्कस्याविभागतः । एभिः संसूचयेत्सूच्यं दृश्यमङ्कैः प्रदर्शयेत् । दूराह्वानं वधं युद्धं राज्यदेशादिविप्लवम् । संरोधं भोजनं स्नानं सुरतं चानुलेपनम् । अम्बरग्रहणादीनि प्रत्यक्षाणि न निर्दिशेत् । अङ्के नैव निबध्नीयान्नैवाङ्केन कदाचन नाधिकारिवधः क्वापि त्याज्यमावश्यकं न च । एकाहाचरितैकार्थमित्थमासन्न-

(चारों ओर देखकर) मान्य सभा-मुख्यो, हमें कुछ निवेदन करना है—

यह काव्य-रचना यहाँ दूसरी पुष्पाञ्जलि के समान बिखेरी जा रही है। आप, भ्रमर मधु-बिन्दुओं का जैसे, न्यून भी गुण-कणों का सेवन करें ॥५॥

अब हम 'नागराज' उपाधिधारी कवि भट्टनारायण की रचना इस वेणीसंहार नामक नाटक का प्रयोग (अभिनय) करने के लिये उद्यत हैं। इसलिये कवि के परिश्रम के विचार से अथवा उदात्त कथावस्तु के प्रति आदर भाव से अथवा नवीन नाटक देखने की उत्सुकता से आप लोगों द्वारा इस पर ध्यान दिये जाने की याचना करता हूँ।

नायकम्। पार्श्वैस्त्रिचतुरैरङ्कस्तेषामन्ते च निर्गमः। एवमङ्काः प्रकर्तव्याः प्रवेशादिपुरस्कृताः। पञ्चाङ्कमेतदवरं दशाङ्कं नाटकं वरम् ॥ इति नाटकलक्षणं भरतोक्तम्। तत्रैव प्रसङ्गान्नायकनायिकयोर्लक्षणम्—नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्षः प्रियंवदः। रक्तलोकः शुचिर्वाग्मी रूढवंशः स्थिरो युवा। धृत्युत्साहस्मृतिप्रज्ञाकलामानसमन्वितः। शूरो दृढश्च तेजस्वी शास्त्रचक्षुश्च धार्मिकः। विनयः शीलसंपत्तिर्मधुरः प्रियदर्शनः। त्यागः, सर्वस्वदानं स्याद्दक्षः क्षिप्र (प्रिय) करो मतः। प्रियंवदोऽनुत्कटवाक्यसस्नेहो लोकरञ्जनः। मितप्रशस्तवाग्वाग्मी नित्यकर्मरतः शुचिः। ख्यातवंशो रूढवंशः षोडशात्त्रिंशको युवा। वाङ्मनःकर्मभिर्यश्च न चलः स स्थिरो मतः। धृतिः सर्वेषु या प्रीतिरुत्साहोऽम्लानिरेव च। स्मृतिः कालान्तरे ज्ञानं प्रज्ञा तीक्ष्णमतिर्मता। कलाश्चात्र चतुःषष्टिर्मानश्चित्तसमुन्नतिः। शूरः सङ्ग्रामनिपुणो रूपवान्दृश्य उच्यते। अतिप्रतापस्तेजस्वी शास्त्रचक्षुस्त्रयीपरः। आत्मवत्परभूतानि यः पश्यति स धार्मिकः। प्रख्यातवंशो राजर्षिर्दिव्यो वा यत्र नायकः तत्प्रख्यातं विधातव्यं वृत्तमत्राधिकारिकम् ॥ अयमर्थः—नाटके भारतादिप्रसिद्धो राजर्षिर्दिव्यो वा नायकः कर्तव्यः, न तु कविना स्वमुत्पाद्य कथाकल्पितो नायकः कर्तव्य इति। स्वान्या साधारणास्त्रीति तद्गुणा नायिका त्रिधा। स्वकीया तत्र वक्तव्या मुग्धा मध्या प्रगल्भिता। शीलार्जवादिसंयुक्ता—कुटिला च पतिव्रता। लज्जावती चापरुषा निपुणा च प्रियंवदा। साधारणस्त्री गणिका कलाप्रागल्भ्यधौर्त्ययुक्। रूपकेषु कलाप्रागल्भ्यधौर्त्ययुक्। रूपकेषु च स्वतैव कर्तव्या प्रहसं विना। अन्यस्त्री द्विविधा प्रोक्ता कन्यकोढा तथापरा। रसे प्रधाने कर्तव्या नान्योढा नाट्यवेदिभिः।

(नेपथ्ये)

भाव! त्वर्यतां, त्वर्यताम्। एते खल्वार्यविदुराज्ञया पुरुषाः सकलमेव शैलूषजनं व्याहरन्ति—प्रवर्त्यन्तामपरिहीयमानमातोद्यविन्यासादिका विधयः। प्रवेशकाल किल तत्रभवतः पराशर्यनारदतुम्बरुजामदग्न्यप्रभृतिभिर्मुनिवृन्दारकैरनुगम्यमानस्य भरतकुलहितकाम्यया स्वयं प्रतिपन्नदौत्यस्य देवकीसूनोश्चक्रपाणेर्महाराजदुर्योधन-शिबिरं प्रति प्रस्थातुकामस्य इति।

सूत्रधारः—(आकर्ण्य सानन्दम्) अहो न खलु भो भगवता जगत्प्रभव-स्थितिनिरोधप्रभविष्णुना विष्णुनाद्यानुगृहीतमिदं भरतकुलं मङ्गलं च राजयक्ष्म-नयोः कुरुपाण्डवराजपुत्रयोराहवस्त्वशान्तानलप्रशमहेतुना स्वयं सन्धिकारिणा कंसारिणा दूतेन। तत्किमिति पारिपार्श्विकं नारम्भयति कुशीलवैः सह संगीतकम्।

कन्यानुरागमिच्छातः कुर्यादङ्गाङ्गिमथयम् ॥ इति ॥ नाटके वृत्तय. प्रोक्ताश्चतस्रो नाट्यवेदिभि. भारती कैशिकी चैव सात्त्वत्यारभटी तथा। तत्र शृङ्गारी कामफलावच्छिन्नो व्यापारः कैशिकी। विशोका सात्वती सत्त्वशौर्यत्यागार्जवै. पुनः। मायेन्द्रजालसंग्रामक्रोधोद्भ्रान्तादिचेष्टितैः। भवेदारभटी नाम नाट्ये ति-स्रस्तु वृत्तयः। भारती शब्दवृत्तिः स्याद्रसे रौद्रे च युज्यते। शृंगारे कैशिकी वीरे सात्वत्यारभटी पुन ॥ एवमङ्गानि कार्याणि प्रधानस्याविरोधतः। आदौ विष्कम्भकं कुर्यादङ्कं वा कार्ययुक्तित. ॥ अपेक्षितं परित्यज्य नीरसं वस्तुविस्तरम् यदा संदर्शयेच्छेषं कुर्याद्विष्कम्भकं तदा ॥ यदा तु सरसं वस्तु मूलादेव प्रवर्तते। आदावेव तदावेव तदाङ्कः स्यादामुखाक्षेपसंश्रयः ॥ प्रत्यक्षनेतृचरितो बिन्दुव्याप्तिपुर. सर। अङ्को नानाप्रकारार्थं संविधानरसाश्रयः ॥ अनुभाव विभावाभ्यां स्थायिना व्यभिचारिभि। गृहीतमुक्तै कर्तव्यमङ्गिन· परिपोषणम् न चातिरसतो वस्तु दूरं विच्छिन्नतां नयेत्। रसं वा नातिरोदध्याद्वस्त्वलंकार-लक्षणैः। एको रसोऽङ्गी कर्तव्यो वीरः शृङ्गार एव वा। अङ्गमन्ये रसाः सर्वे कुर्यान्निर्वहणेऽद्भुतम् ॥ शृङ्गारहास्यकरुणरौद्रवीरभयानकाः। बीभत्सोऽद्भुत इत्येवमष्टौ नाट्ये रसाः स्मृता. ॥ यद्यपि अविकारस्थितिः शान्त. 'शान्तस्तु

(नेपथ्य मे)

भाव, जल्दी करो, जल्दी करो। आर्य विदुर की आज्ञा से ये लोग सब ही नटो से कह रहे है—वाद्य-विन्यास आदि की विधि बिना किसी त्रुटि के प्रारम्भ कर दी जाये। अब पराशर-पुत्र (व्यास), नारद, तुम्बरु, परशुराम आदि श्रेष्ठ मुनियो द्वारा अनुसरण किये जाते हुए, भरत-कुल के हित की कामना से स्वयं दूत कर्म स्वीकार करने वाले, महाराज दुर्योधन के स्कन्धावार (डेरे) को प्रस्थान करने वाले, देवकी के पुत्र, आदरणीय भगवान् विष्णु (कर मे चक्र धारण करने वाले) के प्रवेश का समय हो गया है।

सूत्रधार—(सुनकर आनन्द से) आ·· हा! अरे, जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और सहार में समर्थ कस शत्रु भगवान् विष्णु ने आज स्वय इन कुरु और पाण्डव राजपुत्रो के युद्ध रूपी प्रलयाग्नि के शमन का निमित्तभूत, सन्धि कराने वाला, दूत बनकर आज इस भरत-कुल पर सम्पूर्ण राजसमूह पर अनुग्रह किया है। इसीलिये, पारिपार्श्विक, नटों के साथ मिलकर सगीत आरम्भ क्यो नही करते ?

नवमो रस.' इत्यस्ति तथापि न सर्वसमतो न स नाट्यविषयश्चेति स पृथगुक्तः। स्थायिभावाभावादस्य नाट्यविषयता न सभवतीति।

[तत्प्रेति] उदात्त हृद्यम्। कथावस्तु कथाप्रधानं नायकः। तस्य गौरवादाह्लादात्। नेपथ्यं रङ्गभूमिः। नेपथ्य रङ्गभूमौ स्यान्नेपथ्य तु प्रसाधने। इति विश्वः॥ भावो मान्यः। मान्यो भावेति वक्तव्य इत्यमरः खलु शब्दो वाक्यभूषायाम्। आर्यश्चासौ विदुरश्चेति विशेषणसमासः। विदुरोऽत्र नायकः तस्याशयादेशेन। शैलूषो नट.। अपरिहीयमानमत्तरित्यज्यमानं यथा स्यादेवम् ——— प्रकारा. प्रवर्त्यन्ताम्। कीदृशाः। आतोद्यविन्यासो वीणादिवादनमादौ येषा ते तथा। चतुर्विधमिद वाद्यं वादित्रातोद्यनामकम् इत्यमरः॥ किल निश्चये। तुम्बुरुर्मुनिविशेष. वृन्दारको रूपमुख्यौ इत्यमरः॥ भरतकुलं युधिष्ठिरादिवंशः। काम्या इच्छा। प्रतिपन्नगौरवस्याङ्गीकृतदूतकर्मणः। सूनोः पुत्रस्य। सूनुः पुत्रक-

(प्रविश्य)

पारिपार्श्विकः—भवतु । आरम्भयामि । कं समयमाश्रित्य गीयताम् ।

सूत्रधारः—नन्वमुमेव तावच्चन्द्रातपनक्षत्रक्रौञ्चहंसकुलसप्तच्छदकुमुदपुण्डरीककाशकुसुमपरागधवलितगगनदिङ्मण्डलं स्वादुप्रसन्नजलाशयं शरत्समयमाश्रित्य प्रवर्त्यतां संगीतकम् । तथा ह्यस्यां शरदि—

सत्पक्षा मधुरगिरः प्रसाधिताशा मदोद्धतारम्भाः ।
निपतन्ति धार्तराष्ट्राः कालवशान्मेदिनीपृष्ठे ॥६॥

पारिपार्श्विकः—(ससंभ्रमम्) भाव ! शान्तं पापम् । प्रतिहतममङ्गलम् ।

सूत्रधारः—(सवैलक्ष्यस्मितम्) मारिष । शरत्समयवर्णनाशंसया हंसा धार्तराष्ट्रा इति व्यपदिश्यन्ते । तत्किं शान्तं पापं प्रतिहतममङ्गलम् ।

पारिपार्श्विकः—न खलु न जाने । किंत्वमङ्गलाशंसयास्य वो वचनस्य यत्सत्यं कम्पितमिव मे हृदयम् ।

सूत्रधारः—मारिष, ननु सर्वमेवेदानीं प्रतिहतममङ्गलं स्वयं प्रतिपन्नदौत्येन सन्धिकारिणा कंसारिणा । तथाहि—

निष्ठयोः इति विश्वः ॥ शिबिरसंनिवेशः सैन्यविन्यासः । तं प्रति प्रवेशकालश्चक्रपाणेरित्यन्वयः । अहो नु खलो भो इत्यव्ययसमुदायोऽत्याश्चर्याविष्कारे । निरोधो विनाशः । प्रभविष्णुना प्रभुणा । राजचक्रं क्षत्रियसंघः । आहवो युद्धम् । कल्पान्तानलः प्रलयाग्निः । स्वयं प्रतिपन्नदौत्येनेत्यन्वयः कंसारिः कृष्णः । पारिपार्श्विक इति । सूत्रधारस्य पार्श्वे यः प्रकरोत्यमुना सह । काव्यार्थसूचनालापं स भवेत्पारिपार्श्विकः इति भरतः ॥ कुशीलवो नटः ॥ भरतास्तु कुशीलवाः इत्यमरः । संगीतकमेलकम् । ऐक्यमिति यावत् । नक्षत्रमश्विन्यादि । ग्रहाः सूर्यादयः । क्रौञ्चः हंकूह इति प्रसिद्धः पक्षी । सप्तच्छदः तिमन इति प्रसिद्धो वृक्षः । रक्तोत्पलं कोकनदम् । इत्यमरः । तथा हि इत्ययं शब्द उक्तविभावनार्थः । श्लेषच्छायोपक्षेपैश्च समुद्दिष्टं विसर्पति यत्फलोदयपर्यन्तं तद्बीजमिति कीर्तितम् । इति भरतात् ।

श्लेषेण बीजमाह—सत्पक्षा इति । धार्तराष्ट्रा हंसविशेषाः कालवशात् शरन्माहात्म्यात् मेदिनीपृष्ठे निपतन्ति । मानसं सरः परिहृत्यायान्तीत्यर्थः । अथ धार्तराष्ट्राः धृतराष्ट्रपुत्रा दुर्योधनादयो भूमौ पतन्तीत्यर्थः । कीदृशाः ।

(प्रवेश करके)

पारिपार्श्विक—अच्छा, आरम्भ करता हूँ। किस ऋतु के विषय में गाया जाय ?

सूत्रधार—इसी शरद् ऋतु के विषय में संगीत आरम्भ कर दिया जाय, जिसमें चन्द्रिका, नक्षत्र, क्रौञ्च पक्षी, हंस-समूह, सप्तपर्ण, कुमुद, पुण्डरीक और काश-पुष्प के पराग से आकाश तथा दिशा-मण्डल धवल हो रहा है और जिसमें जलाशय स्वादिष्ट जल वाले है। क्योंकि इस शरद् ऋतु में—

सुन्दर पङ्खों वाले, मधुर वाणी वाले, दिशाओं को अलङ्कृत करने वाले, हर्ष के कारण उद्दाम क्रीडा करने वाले हंस (धार्तराष्ट्र) समय (शरद् ऋतु) के प्रभाव से पृथ्वी-तल पर आ रहे हैं। (दूसरा संकेतित अर्थ)—उत्तम साधन वाले, मधुरभाषी, दिशाओं को वश में करने वाले, अहङ्कार के धृष्टतापूर्ण कार्य करने वाले, धृष्टराष्ट्र के पुत्र (दुर्योधन आदि) मृत्यु के वश में होने के कारण पृथ्वी पर गिर रहे हैं ॥६॥

पारिपार्श्विक—(घबराकर) भाव, पाप शान्त हो, अमङ्गल का नाश हो।

सूत्रधार—(लज्जा और मुस्कराहट के साथ) मारिष, शरद् ऋतु के वर्णन की इच्छा से हंसों को धार्तराष्ट्र कहा जा रहा है। तब 'पाप शान्त हो; अमङ्गल का नाश हो' यह क्या ?

पारिपार्श्विक—मैं नहीं जानता हूँ, ऐसी बात नहीं है। फिर भी, आपके इस वचन से अमङ्गल की आशङ्का से मेरा हृदय सचमुच काँप-सा गया है।

सूत्रधार—मारिष, अब तो स्वयं दूत-कार्य स्वीकार करके सन्धि कराने वाले कंसारि ने सारे अमङ्गल का नाश कर दिया है। इस प्रकार—

[सन्तः पक्षा येषां ते] सत्पक्षाः श्रेष्ठपक्षयुक्ताः श्रेष्ठसैन्यवन्तश्च। मधुरगिरः मधुरवाणीकाः। प्रसाधिता आशा दिशो यैस्ते तथा। मदोद्धता आरम्भा येषां ते। 'मदो हर्षोऽहङ्कारश्च' 'धार्तराष्ट्राः सितेतरैः' इत्यमरः। इह श्लोके प्रवर्तकरूपता प्रस्तावना। यदुक्तं तत्रैव–प्रवृत्तकालमाश्रित्य वर्णना यत्र विधीयते। तदाश्रयस्य पात्रस्य प्रवेशेन प्रवर्तकम् ॥ इति ॥ आर्याच्छन्दः ॥६॥

ततः पटाक्षेपेण पात्रप्रवेशस्तत्र प्रविश्येति प्रयुज्यते। शान्तं पापमनाकाङ्क्षे

निर्वाणवैरदहनाः प्रशमादरीणां
नन्दन्तु पाण्डुतनयाः सह माधवेन ।
रक्तप्रसाधितभुवः क्षतविग्रहाश्च
स्वस्था भवन्तु कुरुराजसुताः सभृत्याः ॥७॥
(नेपथ्ये साधिक्षेपम्)

भीमः दुरात्मन्वृथा मङ्गलपाठक शैलूषापसद,

लाक्षागृहानलविषान्नसभाप्रवेशैः
प्राणेषु वित्तनिचयेषु च नः प्रहृत्य ।
आकृष्टपाण्डववधूपरिधानकेशाः
स्वस्था भवन्ति मयि जीवति धार्तराष्ट्राः ॥८॥
(सूत्रधारपारिपार्श्विकावाकर्णयतः)

पारिपार्श्विकः—भाव, कुत एतत् ।

सूत्रधारः—(पृष्ठतो विलोक्य) अये एष खलु वासुदेवगमनात्कुरुसंधानम मृष्यमाणः पृथुललाटघटितविकटकीनाशतोरणत्रिशूलायमानभीषणभ्रुकुटिरा-

---

इति भरतः । तथा च न वक्तव्यमित्यर्थः । स्वैरस्यं साज्जम् । किंचिन्न्यूनस्तु मारिषः इत्यमरः । मारिष एव मर्षणान्मार्ष इति । मार्षो मारिष इत्यपि इति शब्दभेदः । न खलु न जाने किंतु जानाम्येव । खलु शब्दो निषेधे । अलखल्वोः प्रतिषेधे इति सूत्रम् । वो युष्माकम् । यत्सत्यमसंभाव्येऽर्थे इति भरतः । तथा च यत्सत्यम् असंभावनीयमिदमित्यर्थः ।

निर्वाणेति । निर्वाणः निस्तेजीकृतः (शान्तः) वैरमेव दहनः यैः (येषां) ते तथा । अरीणां प्रशमात् उपशमात् । विनाशादिति यावत् । रक्तेभ्यः सानुरागेभ्यः प्रसाधिता दत्ता भूः यैः ते तथा । अथ च रक्तेन रुधिरेण प्रसाधितालंकृता भूर्यैस्ते । [क्षतः अन्तं गतः विग्रहः युद्धं येषां ते । पक्षे क्षता जातव्रणा विग्रहा देहा येषां ते] विग्रहो युद्धं शरीरं वा । स्वस्था सुस्थिताः [पक्षे स्वर्गस्था] मृताश्च । विग्रहः समाराङ्गयोः इति धरणिः । सुस्थिते च मृते

शत्रुओं के शान्त हो जाने के कारण पाण्डु के पुत्र, जिनकी वैर रूपी अग्नि शान्त हो गई है, कृष्ण के साथ आनन्द करें; और भृत्यों महित कुरु-राज के पुत्र; जिन्होंने अनुरक्त (पाण्डवों) को भूमि दे दी है तथा जिनका युद्ध समाप्त हो गया है, स्वस्थ रहें ॥ (दूसरा संकेतित अर्थ)—शत्रुओं का नाश हो जाने के कारण माधव समेत पाण्डव लोग जिनकी वैर रूपी अग्नि बुझ गई है, आनन्द करें और भृत्यों समेत कुरु-राज के पुत्र, जिन्होंने रुधिर से पृथ्वी को अलङ्कृत किया है और जिनके शरीर क्षत-विक्षत हैं, स्वर्गस्थ होवें ॥७॥

(नेपथ्य में तर्जनासहित)

ओ दुष्ट, व्यर्थ ही स्तुति करने वाले, नीच नट,

लाक्षागृह में आग, विषाक्त अन्न और सभा में प्रवेश द्वारा हमारे प्राण तथा धन पर प्रहार करके और पाण्डवों की वधू के वस्त्र तथा केशों को खींचकर भी धृतराष्ट्र के पुत्र मेरे जीवित रहते स्वस्थ रहें ॥८॥

(सूत्रधार और पारिपार्श्विक दोनों सुनते है)

पारिपार्श्विक—श्रीमान्, यह ध्वनि कहाँ से (आ रही है) ?

सूत्रधार—(पीछे की ओर देखकर) अरे ! भगवान् कृष्ण के जाने से (होने वाली) कुरुओं के साथ सन्धि को सहन न करता हुआ यह क्रुद्ध भीम, जिसके विशाल मस्तक-तट पर, यमराज के विशाल तोरण पर त्रिशूल के समान प्रतीत होने वाली, भयङ्कर भ्रूकुटि तनी हुई है और जिसके पीछे सहदेव आ

स्वस्थः इति श्लिष्ट । लेशगण्डोऽयम् । यदुक्तं तत्रैव—द्वयर्थता यत्र वाक्यानां लेशेनापि प्रतीयते । यः शब्दभङ्गिगतो लेशगण्डः स उच्यते ॥७॥

आः शब्द आक्षेपे । शैलूषो नटः [चासौ] अपसदः अधमः [च] ।

लाक्षागृहेति । [लाक्षागृहे यः अनलः अग्निसमर्पणं स च विषमिश्रित-मन्नं विषान्नं च सभाप्रवेशश्च तं.] जतुगृहाग्निविषलड्डुककपटद्यूतादिभिः नः अस्मान् [प्राणेषु वित्तनिचयेषु च] प्रहृत्य इत्यन्वयः । पाण्डववधूर्द्रौपदी । परिधानम् परिधानीयवस्त्रम् [आकृष्टाः पाण्डववध्वा परिधानं च केशाश्च यैः । ते धार्तराष्ट्रा मयि जीवति स्वस्थाः सुखिनो भवन्ति किम् । नैवेतदित्यर्थः] ।

पिबन्निव नः सर्वान्दृष्टिपातेन सहदेवेनानुगम्यमानः क्रुद्धो भीमसेन इत एवाभिवर्तते । तन्न युक्तमस्य पुरतः स्थातुम् । तदित आवामन्यत्र गच्छावः ।

(इति निष्क्रान्तौ)

॥ इति प्रस्तावना ॥

(ततः प्रविशति सहदेवानुगम्यमानः क्रुद्धो भीमसेनः)

भीमसेनः—आः दुरात्मन् वृथामङ्गलपाठक शैलूषापसद । (लाक्षागृहानलइत्यादि पुनः पठति) ।

सहदेवः—(सानुनयम्) आर्य ! मर्षय मर्षय । अनुमतमेव नो भरतपुत्रस्यास्य वचनम् । निर्वाणवैरदहना इति यथार्थमेव । सभृत्याः कुरवः क्षतजालंकृतवसुन्धराः क्षतशरीराश्च स्वर्गस्था भवन्त्विति ब्रवीति ।

भीमसेनः—(सोपालम्भम्) न खलु न खल्वमङ्गलानि चिन्तयितुमर्हन्ति भवन्तः कौरवाणाम् । सन्धेयास्ते भ्रातरो युष्माकम् ।

सहदेवः—(सरोषम्) आर्य,

धृतराष्ट्रस्य तनयान्कृतवैरान्पदे पदे ।
राजा न चेन्निषेद्धा स्यात्कः क्षमेत तवानुजः ॥८॥

इहावसाने विद्धकम् । यदुक्तं तत्रैव—नाटकीयफले हेतुभूतस्याध्यक्षकीर्तनम् आफलोदयमुत्साहावसानाभ्यां हि विद्धकम् ॥८॥

अये इति निपातोऽप्यासङ्गादिनाऽनाकलितस्याकलने संभ्रमाभिधायी । अये चित्रेऽवधारणे इति भरतः । [पृथुललाटेति । पृथु विशालं यत् ललाटतटं तत्र घटिता विकटं यत्कीनाशस्य कालस्य तोरणं तत्र त्रिशूलवदाचरती भीषणा भ्रुकुटिर्यस्य] कुटिलभ्रू भागो भ्रुकुटिः । दृष्टिपातेनालोकितेन । पृथुललाटेत्याद्यस्यैव विशेषणम् । इत एवाभिवर्तते इहैव तिष्ठति । निष्क्रान्तौ सूत्रधारपारिपार्श्विकौ । प्रस्तावनेति । प्रस्तावना आमुखसंधिपर्यायः । तदुक्तं तत्रैव—सूत्रधारेण सहिताः सलापं यत्र कुर्वते । नटी विदूषको वापि पारिपार्श्विक एव वा । [चित्रैर्वाक्यैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः] । आमुखं नाम तत्स्यैव

रहा है, दृष्टिपात से, मानो, हम सबको पीता हुआ इधर की ओर ही आ रहा है। इसलिये इसके सामने खड़ा होना उचित नही है। इसलिये हम दोनो यहाँ से कही अन्यत्र चलें। (दोनों बाहर चले गये)।

प्रस्तावना समाप्त

(तत्पश्चात् सहदेव द्वारा अनुसरण किया जाता हुआ क्रुद्ध भीम प्रवेश करता है)

भीमसेन—अरे दुष्ट; व्यर्थ स्तुति करने वाले, नीच नट। (लाक्षागृहानल इत्यादि श्लोक १/८ का फिर पाठ करता है)।

सहदेव—(अनुनय सहित) आर्य, क्षमा कीजिए, क्षमा कीजिए। इस नट का वचन हमारे अनुकूल ही है। 'शान्त हो गई है वैर रूपी अग्नि जिनकी' इत्यादि वचन सच ही है। (क्योंकि) यह कह रहा है—'सेवकों सहित कुरु लोग, जिन्होंने रुधिर से भूमि को अलङ्कृत कर दिया है और जिनके शरीर व्रणयुक्त हो गये है, स्वर्गस्थ होवें।'

भीमसेन—(उलाहना देते हुए) नहीं, नही। आप कौरवों का अमङ्गल नही सोच सकते। उनसे तो सन्धि करनी चाहिये। तुम्हारे भाई है।

सहदेव—(क्रोधपूर्वक) आर्य,

यदि राजा रोकने वाला न हो तो तुम्हारा कौन-सा छोटा भाई पग-पग पर शत्रुता करने वाले धृतराष्ट्र के पुत्रो को सहन करे ॥९॥

सैव प्रस्तावना मता ॥ इति। इयं प्रस्तावना वाक्यार्थकथोद्घातरूपा। सूत्रधारस्य वाक्यं वा यत्र वाक्यार्थमेव वा। गृहीत्वा प्रविशेत्पात्रं कथोद्घातः स उच्यते ॥ इति भरतः। प्रविशतीति। सर्वत्र प्रवेशे पूर्वसूचितस्यान्वयः। नासूचितस्य पात्रस्य प्रवेश. इति भरतवचनात्। मर्षय क्षमस्व। भरतपुत्रस्य नटस्य अन्यथा मरणार्थतया। सोपालम्भं विसवादसहितम्। वीप्सितो न खलुशब्दोऽत्यन्तनिषेधवचनः।

धृतराष्ट्रस्येति। [राजा निषेद्धा न स्यात् चेत् पदे पदे कृतवैरान् धृतराष्ट्रस्य तनयान् कः तवानुजः सहेत। इत्यन्वयः] पदे पदे प्रतिस्थानमित्यर्थः

भीमसेनः—(सरोषम्) एवमिदम् । अत एवाहमद्यप्रभृति भिन्नो भवद्भ्यः । पश्य

प्रवृद्धं यद्वैरं मम खलु शिशोरेव कुरुभि-
र्न तत्रार्यो हेतुर्न भवति किरीटी न च युवाम् ।
जरासंधस्योरः स्थलमिव विरूढं पुनरपि
क्रुधा सन्धिं भीमो विघटयति यूयं घटयत ॥ १०॥

सहदेवः—(सानुनयम्) आर्य एवमतिसंभृतक्रोधेषु युष्मासु कदाचिल्लिद्यते गुरुः ।

भीमसेनः—किं नाम खिद्यते गुरुः । गुरुः खेदमपि जानाति । पश्य ।

तथाभूतां दृष्ट्वा नृपसदसि पाञ्चालतनयां
वने व्याधैः सार्धं सुचिरमुषितं वल्कलधरैः ।
विराटस्यावसे स्थितमनुचितारम्भनिभृतं
गुरुः खेदं खिन्ने मयि भजति नाद्यापि कुरुषु ॥ ११ ॥

तत्सहदेव निवर्तस्व । एवं चातिचिरप्रवृद्धामर्षोद्दीपितस्य भीमस्य वचनाद्विज्ञापय राजानम् ।

सहदेवः—आर्य किमिति ।

भीमसेनः—एवं विज्ञापय ।

चेच्छन्दो यद्यर्थे । निषेद्धा निषेधकः । इह श्लोके यद्यपि वाक्ये गर्भितनामालंकारदोषस्तथापि रसान्तरद्योतनाय तद्वाक्यमिति न दोषकक्षामवगाहत इत्यवधेयम् ।

इह अहं भिन्नो भवद्भ्यः इत्यनेन भेदसंधिः । यदाह—भेदस्तु भिन्नता इति । प्रभृतिशब्द आरम्भपर्यायः ।

प्रवृद्धमिति । [शिशोरेव मम कुरुभिः यद्वैरं प्रवृद्धं खलु तत्र आर्यः हेतुः न भवति, न किरीटी, न युवा । जरासन्धस्य उरः स्थलमिव पुनः विरूढमपि सन्धिं भीमः क्रुधा विघटयति यूयं घटयत । इत्यन्वयः] विरूढं जातं स्मृतं च । संधिर्ना संघटनके संधानेऽपि च कथ्यते । इति विश्वः ॥१०॥

तथाभूतामिति । नृपसदसि तथाभूताम् ऋतुमतीमपि आकृष्टकेशामाकृष्टाम्बरा

भीमसेन—(क्रोध से) यह ऐसा ही है। इसलिये आज से हम आप लोगों से अलग हुये। देखो—

मुझ बालक का ही कौरवों के साथ जो बैर बढा था, उसमें न आर्य (युधिष्ठिर) कारण है, न अर्जुन और न ही तुम दोनों। जरासन्ध के वक्षःस्थल के समान दृढ सन्धि को भीम क्रोध से फिर तोड़ रहा है, तुम लोग जोड लो ॥१०॥

सहदेव—(मनाते हुये) इस प्रकार आपके अत्यधिक क्रोध करने पर बड़े भाई कहीं दुःखी न होवें।

भीमसेन—क्या बड़े भाई दुःखी होते हैं? क्या बड़े भाई दुःख को जानते हैं? देखो—

राज-सभा में उस प्रकार की हुई (दुर्दशा मे पड़ी हुई) पाञ्चाल की पुत्री (द्रौपदी) को, वन मे व्याधों के साथ वल्कलधारियों के चिरकाल वास को और विराट के भवन में अनुचित कार्यों द्वारा छिपाये गए वास को देखकर (भी) बड़े भाई को कौरवों पर आज तक खेद नहीं हुआ। मेरे खिन्न होने पर खेद होगा ॥११॥

इसलिये, सहदेव, तुम लौट जाओ। चिरकाल से बढ़े हुए क्रोध से उद्दीप्त भीम की ओर से राजा से इस प्रकार कहो।

सहदेव—आर्य, क्या (कहूँ)?

भीमसेन—इस प्रकार कहो—

च पाञ्चालतनयां द्रौपदीम्। वने उषितमस्माभिर्वासः कृतः। तद्दृष्ट्वेत्यन्वयः। स्थितमवस्थानं कृतम्। तद्दृष्ट्वेत्यन्वयः। अनुचितारम्भाः कन्यालंकरणादिकाः, तैर्निभृतं गुप्तं यथा स्यादेवम्। मयि खिन्ने सति गुरुः [खेदं भजति], अद्यापि कुरुषु खेदं न वहतीत्यन्वयः ॥११॥

[अतिचिरेति। अतिचिरादतिचिरं वा प्रवृद्धो यः अमर्षः तेनोद्दीपितस्य]।

युष्मदिति। [मया युष्मच्छासनलङ्घनांहसि मग्नेन स्थितं नाम, स्थितिमतामनुजानां मध्ये विगर्हणा अपि प्राप्ता नाम, क्रोधोल्लासितशोणितारुणगदस्य कौरवानुच्छिन्दतः मम अद्य एकं दिवसं गुरुः न असि, अहं तव विधेयः न। इत्यन्वयः]

युष्मच्छासनलङ्घनांहसि मया मग्नेन नाम स्थितं
　　प्राप्ता नाम विगर्हणा स्थितिमतां मध्येऽनुजानामपि ।
क्रोधोल्लासितशोणितारुणगदस्योच्छिन्दतः कौरवा-
　　नद्यैकं दिवसं ममासि न गुरुर्नाहं विधेयस्तव ॥१२॥

(इत्युद्धतं परिक्रामति)

सहदेवः—(तमेवानुगच्छन्नात्मगतम्) अये कथमार्यः पाञ्चाल्याश्चतुःशालं प्रविष्टः । भवतु तावदहमत्रैव तिष्ठामि । (इति स्थितः) ।

भीमसेनः—(प्रतिनिवृत्यावलोक्य च) सहदेव गच्छ त्वं गुरुमनुवर्तस्व । अहमप्यायुधागारं प्रविश्यायुधसहायो भवामि ।

सहदेवः—आर्य, नेदमायुधागारं पाञ्चाल्याश्चतुःशालमिदम् ।

भीमसेनः—(सवितर्कम्) किं नाम नेदमायुधागारं पाञ्चाल्याश्चतुःशालमिदम् । (किंचिद्विहस्य सहर्षम्) आमन्त्रयितव्या मया पाञ्चाली । (सप्रणयं सहदेवं हस्ते गृहीत्वा) वत्स, आगम्यताम् । यदार्यः कुरुभिः सन्धानमिच्छन्नस्मान्पीडयति तद्भवानपि पश्यतु ।

(उभौ प्रवेशं नाटयतः)

सहदेवः—आर्य इदमासनमास्तीर्णम् । अत्रोपविश्य प्रतिपालयत्वार्यः कृष्णागमनम् ।

भीमसेनः—(उपविश्य) वत्स, कृष्णागमनमित्यनेनोपोद्घातेन स्मृतम् । अथ भगवान्कृष्णः केन पणेन सन्धिं कर्तुं सुयोधनं प्रति प्रहितः ।

अंहसि पापे । नाम प्राकाश्ये । नाम प्राकाश्यसंभाव्योपगमे कुत्सने तथा । इति विश्वः । विगर्हणा निन्दा । स्थितिमतां धैर्यवताम् । क्रोधेनोल्लासिता समुत्तोलिता शोणितेनारुणा रक्ता च गदा यस्य । उच्छिन्दतो नाशयतः । दिवसं व्याप्य । कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे इति द्वितीया । अद्येदानीम् । इदानीमद्य इति कलाप-सूत्रम् । अस्मिन्नहनीत्यर्थेऽनन्वयः स्यादित्यवधेयम् ॥१२॥

इह परिकररूपः सन्धिः । यदुक्तं तत्रैव—कार्याकार्यस्य हेतूनामुक्तिः परिकरो मतः । इति । चतुःशालकं चउसार इति प्रसिद्धं गृहम् । [चतसृणां शालानां

मैं तुम्हारी आज्ञा के उल्लङ्घन के पाप में डूब गया हूँ, मैंने मर्यादा का पालन करने वाले छोटे भाइयों के भी मध्य मे निन्दा प्राप्त कर ली है। आज एक दिन के लिये आप मेरे क्रोध से उठाई और रुधिर से लाल गदा वाले तथा कौरवों का नाश करने वाले के बड़े (भाई) नही है और मै अपका आज्ञाकारी नही हूँ ॥१२॥

(यह कहकर अकड़ के साथ घूमता है)

सहदेव—(उसी के पीछे-पीछे चलते हुये, स्वगत) अरे कैसे ? आर्य पाञ्चाल की राजकुमारी (द्रौपदी) की चौसाल में चले गये। अच्छा तब तक मैं यही रहूँ। (खड़ा हो जाता है)

भीमसेन—(लौटकर और देखकर) सहदेव, तुम जाओ और बड़े भाई के अनुकूल आचरण करो। मैं भी आयुधागार में जाकर शस्त्रों से सज्जित होता हूँ।

सहदेव—आर्य, यह आयुधागार नही है। यह तो पाञ्चाली की चौसाल है।

भीमसेन—(सोचते हुये) क्या कहा ? यह शस्त्रगार नहीं है, द्रौपदी की चौसाल है। (कुछ हंसकर हर्षपूर्वक) मुझे पाञ्चाली से विदा ले लेनी चाहिये। (प्रेम से सहदेव का हाथ पकड़कर) प्रिय, आओ। कौरवो के साथ सन्धि करने की इच्छा करने वाले आर्य हमें जो पीडा दे रहे हैं, उसे आप भी देख ले।

(दोनों अन्दर जाते है)

सहदेव—आर्य, यह आसन बिछा है। आर्य यहाँ बैठकर कृष्णा (द्रौपदी) के आने की प्रतीक्षा करें।

भीमसेन—(बैठकर) वत्स, 'कृष्णागमन' इस प्रसङ्ग से याद आ गया है। भगवान् कृष्ण किस शर्त पर सन्धि करने के लिये सुयोधन के पास भेजे है ?

समाहारः चतुःशालम्। आवन्तो वा इति क्लीबत्वम्। प्रशालकमिति पाठे स्वार्थे कः।] आगारो गृहम्। आयुधसहायोऽस्त्रद्वितीयः। आ. स्वीकारे। आमन्त्रयितव्या सवदनीया। कृष्णागमनं द्रौपद्यागमनमथ च हरेरागमनम्। उपोद्घात उक्तिः। तदुक्तममरे—उपोद्घात उदाहारः इति। यद्वा प्रकृतानुकूलिनी चिन्ता उपोद्घात.। भगवानैश्वर्यादिमान्। इह श्रीकृष्णो निगूढार्थो दूतः। यदुक्तः तत्रैव—उद्देश्यकार्यात्रोधेन विपक्षे नायके स्वयम्। वाग्युद्धनिरतो यस्तु स

सहदेवः—आर्य पञ्चभिर्ग्रामैः ।

भीमसेनः—(कर्णौ पिधाय) अहह हन्त देवस्याजातशत्रोरप्ययमीदृशस्तेजोऽपकर्ष इति यत्सत्यं कम्पितमिव मे हृदयम् । (परिवर्त्य स्थित्वा) तद्वत्स न त्वया कथितं न मया श्रुतम् ।

यत्तदूर्जितमत्युग्रं क्षात्रं तेजोऽस्य भूपतेः ।
दीव्यताक्षैस्तदानेन नूनं तदपि हारितम् ॥१३॥

(नेपथ्ये)

समाश्वसितु समाश्वसितु भट्टिनी । [समस्ससदु समस्ससदु भट्टिणी ।]

सहदेवः—(नेपथ्याभिमुखमवलोक्यात्मगतम्) अये कथं याज्ञसेनी मुहुरुपचीयमानबाष्पपटलस्थगितनयना आर्यसमीपमुपसर्पति । तत्कष्टतरमापतितम्

यद्वै घृतमिव ज्योतिरार्ये क्रुद्धेऽद्य संभृतम् ।
तत्प्रावृडिव कृष्णेयं नूनं संवर्धयिष्यति ॥१४॥

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टा द्रौपदी चेटी च)

(द्रौपदी सास्रं निश्वसिति)

चेटी—समाश्वसितु समाश्वसितु भट्टिनी । अपनेष्यति ते मन्युं नित्यानुबद्धकुरुवैरः कुमारो भीमसेनः । [समस्ससदु समस्ससदु भट्टिणी । अवणइस्सदि दे मण्णुं णिच्चाणुबद्धकुरुवेरो कुमालो भीमसेणो ।]

निगूढार्थं उच्यते ॥ इति । पञ्चग्रामप्रदानादानेन तयोस्तेन वैरप्रकाशनात् । अहहेत्यद्भुते खेदे इत्यमरः । यत्सत्यं निश्चये । तदुक्तं तत्रैव—यत्सत्यमिति भावार्थम् ।

यत्तदिति । यत् अस्य भूपतेः तत् ऊर्जितम् अत्युग्रं क्षात्रं तेजः तदपि अनेन *तदा द्यूतसमये अक्षैः दीव्यता नूनं हारितम् इत्यन्वयः ।* ऊर्जितं बलवत् । क्षात्रं क्षत्रियसम्बन्धि । दीव्यताक्षैस्तेन क्रीडमानेन । दिवः कर्म च इति चकारात्तृतीया । नूनं निश्चये । तदपि तेजः हारितम् । अन्यथा कथमयं तेजोभङ्ग इति भावः ॥१३॥

नेपथ्ये । आत्मगतम् । यत्तु । श्राव्यं न सर्वस्य स्वगतं तदिहोच्यते । इति

सहदेव—आर्य, पाँच ग्रामो के लिये ।

भीमसेन—(कानों पर हाथ रखकर) ओह ! देव अजातशत्रु का भी यह ऐसा तेज का क्षय (हो गया), इससे सचमुच मेरा हृदय काँप-सा रहा है। (घूमकर खड़े होकर) वत्स, (समझ लो कि) वह तुमने कहा और न मैंने सुना ।

इस राजा का जो वह जगत्प्रसिद्ध प्रचण्ड क्षात्र तेज वृद्धि को प्राप्त था, निश्चय ही इसने तब पाशों से खेलते हुये उसे भी गवा दिया ॥१३॥

(नेपथ्य में)

स्वामिनी, धैर्य रखो, धैर्य रखो ।

सहदेव—(नेपथ्य की ओर देखकर) अरे ! (यह) क्या बार-बार बढ़ रहे आँसुओं के समूह से आच्छादित नेत्रों वाली द्रौपदी आर्य के समीप ही आ रही है । तब तो बड़े कष्ट की बात हुई ।

क्रुद्ध आर्य में आज जो विद्युत के जैसा तेज संचित हुआ है, उसे वर्षा के समान यह कृष्णा अवश्य ही और अधिक बढ़ा देगी ॥१४॥

(तब यथावर्णित द्रौपदी और चेटी प्रवेश करती है)

(द्रौपदी आँसू बहाते हुये गहरा श्वास लेती है)

चेटी—स्वामिनी धैर्य रखें, धैर्य रखें । सर्वदा कौरवों से बंधे वैर वाला कुमार भीमसेन आपके शोक को दूर करेगा ।

भरतः । याज्ञसेनी द्रौपदी । [उपचीयमानः वृद्धिं गच्छन् यः बाष्पस्तस्य पटलं तेन स्थगिते नयने यस्याः सा ।] अश्रुणः पूर्वावस्था बाष्पः । स्थगितं पिहितम् ।

तद्वैद्युतमिति [क्रुद्धे आर्ये अद्य यत् वैद्युतमिव ज्योतिः संभृतम् तदियं कृष्णा प्रावृडिव नूनं संवर्धयिष्यति इत्यन्वयः] । वैद्युतं विद्युत्प्रभवम् । आर्ये भीमे । संभृतं जातम् । प्रावृड् वर्षाकालः । नूनं निश्चये ॥१४॥

अत्र मन्युर्दैन्ये क्रतौ क्रुधि ः इत्यमरः । द्रौपदी । सास्रं सनयनजलम् । अत्र हण्डे हञ्जे हलाह्वाने नीचा चेटी सखी प्रति । इत्यमरः । जयतु कुमारः । अत्र जयत्वित्यत्र यद्यपि जयतेरनभिधानादुत्वं न भवतीति रूपावतारे [illegible] तथापि तस्य प्रायिकत्वम् । प्राकृते जयदु जयत्वित्यस्याभिधानात् । प्राकृतस्य [illegible] तत्समो देशीत्यनेकः प्राकृत. क्रमः । इति नियमात् । संस्कृत [illegible]

द्रौपदी—हञ्जे बुद्धिमतिके भवत्येतद्यदि महाराजस्य प्रतिकूलो भविष्यति।
[हञ्जे बुद्धिमदिए होदि एवं जई महाराअस्स पडिउलो हुविस्सदि।]

चेटी—(विलोक्य) एष कुमारस्तिष्ठति। तदेनमुपसर्पतु भट्टिनी।
[ऐसो कुमारो चिट्ठदि। ता णं उवसप्पदु भट्टिणी।]

द्रौपदी—हञ्जे एवं कुर्व इति। [हञ्जे एवं करेम्ह।] (इति परिक्रामतः)

चेटी—(उपसृत्य) जयतु जयतु कुमार। जअदु जअदु कुमालो।]

भीमसेनः—(अशृण्वन् यत्तदूर्जितम् इति पुन. पठति)

चेटी—(परिवृत्य) भट्टिनि परिकुपित इव कुमार' लक्ष्यते।
[भट्टिणी परिकुविदो विअ कुमालो लक्खीआदि।]

द्रौपदी—हञ्जे यद्येव सवधीरणाप्येषा मामाश्वासयति। तदुपविष्टा भूत्वा शृणोमि तावन्नाथस्य व्यवसितम्। [हञ्जे जइ एव्व ता अवहीरणादि एसा म आसासअदि ता एत्थ उवविट्ठा भविअ सुणोमि दाव णाहस्स ववसिदं।]

(उभे तथा कुरुतः)

भीमसेनः—(सक्रोधम्, सहदेवमधिकृत्य) किं नाम पञ्चभिर्ग्रामैः सन्धि।

मथ्नामि कौरवशतं समरे न कोपाद्
दुःशासनस्य रुधिरं न पिबाम्युरस्त।
संचूर्णयामि गदया न सुयोधनोरू
सन्धिं करोतु भवतां नृपतिः पणेन ॥१५॥

द्रौपदी—(सहर्षम्, जनान्तिकम्) नाथ अश्रुतपूर्वं खलु ते ईदृशं वचनम्। तत्पुनरपि तावद्भण। [णाह अस्सुदपुव्वं क्खु दे एदिसं वअण। ता पुणो वि दाव भणाहि।]

भीमसेनः—(अशृण्वन्नेव, मथ्नामि कौरवशतं इति पुनः पठति)

सहदेवः—आर्य किं, महाराजस्य सन्देशोऽव्युत्पन्न इव गृहीत।

अन्यथा क्रमहान्यापत्तेः। किं च। जयतात् भवानीपतिः इत्यादिदर्शनाज्जयत्विति साधु। अन्यथा तुह्योस्तातङ् आशिष्यन्यतरस्याम्। इति तातङोऽप्राप्तिः। जयतीत्यत्रौकारस्याकरणादित्यवधेयम। अत्र व्यवसितमध्यवसायः'

द्रौपदी—सखी बुद्धिमतिका, यह हो सकता है, यदि वह (भीमसेन) महाराज के विरुद्ध हो जायेंगे।

चेटी—(देखकर) यह कुमार स्थित है। इसलिये स्वामिनी इनके समीप जायें।

द्रौपदी—सखी, ऐसा ही करते हैं। (दोनों घूमती हैं)

चेटी—(समीप जाकर) जय हो, कुमार की जय हो।

भीमसेन—(न सुनते हुये, 'जो वह वृद्धि को प्राप्त था' इत्यादि श्लोक १/१३ का पुनः पाठ करता है)।

चेटी—(घूमकर) स्वामिनी, कुमार क्रुद्ध से दीख रहे हैं।

द्रौपदी—सखी यदि ऐसा है तो यह अपमान भी मुझे सान्त्वना देने वाला है। तब बैठकर नाथ के निश्चय को सुनूंगी।

(दोनों बैठा करती हैं)

भीमसेन—(क्रोध से, सहदेव को लक्ष्य करके) क्या पाँच ग्रामों से सन्धि ?

क्या युद्ध में क्रोध से सौ कौरवों को नहीं मारूँगा ? क्या दुःशासन के वक्षःस्थल से रुधिर नहीं पीऊँगा ? क्या गदा से सुयोधन की जाघें नहीं तोड़ूँगा ? आप का राजा भले ही शर्त पर सन्धि करलें ॥१५॥

द्रौपदी - (हर्षपूर्वक एक ओर को होकर चुपके से) स्वामी, तुम्हारा ऐसा वचन पहले कभी न सुना था। इसलिए फिर से कहिये।

भीमसेन—(न सुनते हुये ही 'मथ्नामि कौरवशतम्' इत्यादि श्लोक १/१५ का फिर से पाठ करता है)।

सहदेव—आर्य, क्या आपने महाराज के सन्देश को सराहनीय-सा समझ लिया है ?

मथ्नामीति। वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा इति भविष्यति लट्। नकारः सर्वत्र शिरश्चालने। मथ्नामि विमर्दयिष्यामि। [अत्र काक्वा न मथ्नामि इति न अपि तु मथ्नाम्येवेत्यर्थो लभ्यते। एवमन्यत्रापि]। उरस्तो वक्षःस्थलात् [उरो विदार्येत्यर्थः। ल्यब्लोपे पञ्चम्यर्थस्तसिः]। पिबामि, संचूर्णयामीत्यत्रापि भविष्यति लट्। [पणेन पञ्चग्राममूल्येन] ॥१५॥

भीमसेन—का पुनरत्र व्युत्पत्तिः ।

सहदेव—आर्य एवं गुरुणा सन्दिष्टम् ।

भीमसेन—कस्य ।

सहदेव—सुयोधनस्य ।

भीमसेन—किमिति ।

सहदेव—

इन्द्रप्रस्थं वृकप्रस्थं जयन्तं वारणावतम् ।
प्रयच्छ चतुरो ग्रामान्कञ्चिदेकं तु पञ्चमम् ॥१३॥

भीमसेन—ततः किम् ।

सहदेव—तदेवमनया प्रतिनामग्रामप्रार्थनया पञ्चमस्य चाकीर्तनाद्विषभोजन-जतुगृहदाहद्यूतसभाद्यपकारस्यानोद्घाटनमेवेदं मन्ये ।

भीमसेन—(साटोपम्) वत्स, एवं कृते किं कृतं भवति ।

सहदेव—आर्य, एवं कृते लोके तावत्स्वगोत्रक्षयाशङ्कि हृदयमाविष्कृतं भवति कुरुराजस्यासन्धेयता च प्रशिता भवति ।

भीमसेन—सर्वमप्येतदनर्थकम् । कुरुराजस्य तावदसन्धेयता तदैव निवेदिता यदैवास्माभिरितो वनं गच्छद्भिः सर्वैरेव कुरुकुलस्य निधनं प्रतिज्ञातम् । लोकेऽपि च धार्तराष्ट्रकुलक्षयः किं लज्जाकरो भवताम् । अपि च रे मूर्ख—

युष्मान्ह्रेपयति क्रोधाल्लोके शत्रुकुलक्षयः ।
न लज्जयति दाराणां सभायां केशकर्षणम् ॥१७॥

इह प्रतिमुखरूपः सन्धिः । यदुक्तं तत्रैव-आनुषङ्गिककार्येण क्रियते यत्प्रकाशनम् । नष्टस्येवेह बीजस्य तद्धि प्रतिमुखं मतम् ॥ व्यवसायनामा वचनसन्धिरयम् । यदाह—प्रतिज्ञाहेतुसंयुक्तं व्यवसायो वचो मतः । इति ।

जनान्तिकम्—अन्योऽन्यामन्त्रणं यत्स्याज्जनान्ते तज्जनान्तिकम् । इति भरतः । अश्रुतपूर्वः खलु ईदृश आलापो नाथस्य । तन्नाथ पुन पुनस्तावद्··· । अत्र खलु निश्चये व वयभूपाया वा । अव्युत्पन्नः [तात्त्विकार्यान्तिरा सह इव । तात्त्विकमर्थमविमृश्येत्यर्थः] । पञ्चग्राममात्रम् । इह भाषणरूपो निर्वहणसन्धिः । यदुक्तं तत्रैव—सामवादादिसपन्नं भाषणं मतम् ।

द्रौपदी—(जनान्तिकम्) नाथ न लज्जन्त एते । त्वमपि तावन्मा विस्मार्षीः ।
[णाह ण लज्जन्ति एते । तुमं वि दाव मा विसुमरेहि]

भीमसेन—(सस्मरणम्) वत्स, कथं चिरयति पाञ्चाली ।

सहदेव—आर्य, का खलु वेला तत्रभवत्याः प्राप्तायाः । किं तु रोषावेशवशाद् आगताप्यार्येण नोपलक्षिता ।

भीमसेन—(दृष्ट्वा सादरम्) देवि, समुद्धतामर्षैरस्माभिरागतापि भवती नोपलक्षिता । अतो न मन्युं कर्तुमर्हसि ।

द्रौपदी—नाथ, उदासीनेषु युष्मासु मन्युर्न पुनः कुपितेषु ;
[णाह उदासीणेसु तुह्मेसु मण्णू ण उण कुविदेसु ।]

भीमसेन—यद्येवमपगतपरीभवमात्मानं समर्थयस्व । (हस्ते गृहीत्वा पार्श्वे समुपवेश्य मुखमवलोक्य) किं पुनरत्रभवतीमुद्विग्नामिवोपलक्षयामि ।

द्रौपदी—नाथ, किमुद्वेगकारणं युष्मासु सन्निहितेषु ।
[णाह किं उव्वेअकालण तुह्मेसु सण्णिहिदेसु ।]

भीमसेन—किमिति नावेदयसि । (केशानवलोक्य) अथवा किमावेदितेन

जीवत्सु पाण्डुपुत्रेषु दूरमप्रोषितेषु च ।
पाञ्चालराजतनया वहते यदिमां दशाम् ।।१८।।

द्रौपदी हञ्जे बुद्धिमतिके, निवेदय तावन्नाथस्य । कोऽन्यो मम परिभवेन खिद्यते । [हञ्जे बुद्धिमदिए, णिवेदेहि दाव णाहस्स । को अण्णो मह परिहवेण खिज्जइ ।]

चेटी—यद्देव्याज्ञापयति (भीममुपसृत्य, अञ्जलिं बद्ध्वा) कुमार, इतोऽप्यधिकमद्य मन्युकारणमासीद्देव्याः [ज देवी आणवेदी । कुमाल, इदोवि अहिअ अज्ज मण्णुकालण आसी देवीए ।]

लज्जायुक्तान्करोति । दाराः पुंभूम्नि इत्यमरः । इह यद्यप्येकैव द्रौपदी बहुर्थवाचिदारशब्देनायोग्यतया प्रतिपादयितुं न शक्यते तथापि लक्षणया तदपि शक्यत इत्यदोषः । केशकर्षणं कर्तृ ।।१७।।

चिरयति विलम्बते । का खलु कियती । प्राप्तायाः आगतायाः । उदासीनेषु

द्रौपदी—(जनान्तिक) नाथ, इन्हें लज्जा नहीं आती। तुम तो न भूलो!

भीमसेन—(याद करते हुये) वत्स, द्रौपदी कैसे देर कर रही है?

सहदेव—आर्य, आदरणीय को आये कितना समय हो गया। किन्तु क्रोध के आवेश के कारण आर्य ने आई हुई भी नहीं देखी।

भीमसेन—(देखकर आदर से) देवी, बढ़े हुए क्रोध वाले हमने आप आई हुई भी नहीं देखी। इससे कुपित न होवें।

द्रौपदी—नाथ, आपके उदासीन होने पर (हमें) दु:ख होता है, कुपित होने पर नहीं।

भीमसेन—यदि ऐसा है तो अपने अपमान को समाप्त ही समझो। (हाथ पकड़ कर पास में बैठाकर, मुख देखकर) लेकिन मैं आपको परेशान-सी क्यों देख रहा हूँ।

द्रौपदी—नाथ, आपके होते उद्वेग का कारण कैसे हो सकता है?

भीमसेन—बतलाती क्यों नहीं? (केशों को देखकर) या बतलाने से क्या?

जब पाण्डु-पुत्रों के जीवित रहते हुये और दूर परदेश न जाने पर भी पाञ्चाल की राजकुमारी इस अवस्था को धारण कर रही है ॥१८॥

द्रौपदी—सखी बुद्धिमतिका, नाथ को बतला दो। अन्य कौन मेरे अपमान पर दु:खी होगा।

चेटी—जैसी देवी की आज्ञा हो। (भीम के समीप जाकर और हाथ जोड़कर) कुमार, आज देवी के कोप का कारण इससे भी अधिक था।

[ममापकारमुपेक्षमाणेषु। अपमतः वैरनिर्यातनेनेति शेषः, परिभवोऽवमानता केशकर्षणादिरूपा यस्य।] समर्थयस्व जानीहि।

जीवत्स्विति। [यत् यस्मात्कारणात् इमां दशा वहते तस्मात् किमावेदितेन इति सम्बन्धः।] यस्य च भावेन भावलक्षणम् इति सप्तमी। दूरमिति क्रिया-विशेषणमतिशयार्थम्। अप्रोषितेष्वपरदेशवासिषु सन्निहितेष्वित्यर्थः।] ॥१८॥

कथय नाथस्य सर्वं व्यवसितम्। इतोप्यधिकतरमद्योद्वेगकारणं समासादितं देव्या।

भीमसेन—किं नामास्मादप्यधिकतरम् । तत्कथय कथय ।

कोऽप्यवशदावेऽस्मिन्क एष शलभायते ।
मुक्तवेणीं स्पृशन्नेनां कृष्णां धूमशिखामिव ॥१८॥

चेटी—शृणोतु कुमारः । अद्य खलु देवी अम्बासहिता सुभद्राप्रमुखेन सपत्नीवर्गेण परिवृताऽऽर्याया गान्धार्याः पादवन्दनं कर्तुं गतासीत् । [सुणादु कुमालो । अज्ज क्खु देवी अम्बासहिदा सुभद्दाप्पमुहेण सवत्तिवग्गेण परिवुदा अज्जाए गन्धालीए पादवन्दणं करिदुं गदा आसी ।

भीमसेन—युक्तमेतत् । वन्द्याः खलु गुरवः । ततस्ततः ।

चेटी—ततः प्रतिनिवर्तमाना भानुमत्या दृष्टा ।
[तदो पडिणिवुत्तमाणा भाणुमदीए दिट्ठा ।]

भीमसेन—(सक्रोधम्) आः शत्रोर्भार्यया दृष्टा । हन्त स्थानं क्रोधस्य देव्याः । ततस्ततः ।

चेटी—ततस्तया देवीं प्रेक्ष्य सखीवदनदत्तदृष्ट्या सगर्वमीषद् विहस्य भणितम् । [तदो ताए देवी पेक्खिअ सहीवअणदिण्णदिट्ठिए सगव्वं ईसिं विहसिअ भणिदं ।]

भीमसेन—न केवलं दृष्टा उक्ता च । अहो किं कृतं । ततस्ततः ।

चेटी—अयि याज्ञसेनि, पञ्चग्रामाः प्रार्थ्यन्त इति श्रूयते । तत्कस्मादिदानीमपि ते केशा न संयम्यन्ते । [अई जण्णसेणि, पञ्चगामा पत्थीअन्ति त्ति सुणीअदि । ता कीस दाणीं वि दे केसा ण सजमीअन्ति ।]

भीमसेन—सहदेव, श्रुतम् ।

सहदेव—आर्य, किमिहोच्यते । दुर्योधनकलत्रं हि सा । पश्य ।

कौरव्येति । [कः एषः मुक्तवेणीम् एनां कृष्णां कृष्णां धूमशिखामिव स्पृशन् अस्मिन् कौरव्यवंशदाहे शलभायते । इत्यन्वयः ।] अत्र यद्यपि तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम् इति ण्यस्य लुक्प्रसङ्गस्तथापि दुर्योधन एकस्मिन्नेव कुर्वादिभ्यो ण्यः इति कौरव्यशब्दं व्युत्पाद्य तत्र साधुः इति सूत्रेण तस्माद्यत्प्रत्ययः । एवं कौरव्याः पशवः इत्यादावप्यूह्यम् । वने च वनवह्नौ च दवो दावः प्रकीर्तितः ।

भीमसेन—इससे भी अधिक क्या हो सकता है ? बताओ, बताओ तो।

धूम-शिखा के समान खुली चोटी वाली इस कृष्णा को छूकर यह कौन इस कौरव-कुल की वनाग्नि में शलभ [पतंगा] बन रहा है ॥१६॥

चेटी—कुमार सुनिये। आज सुभद्रा आदि सपत्नी-समुदाय से घिरी हुई देवी अम्बा सहित आर्या गान्धारी की चरण-वन्दना करने के लिये गई थी।

भीमसेन—यह उचित था। बड़े जनों की वन्दना करनी ही चाहिये। उसके बाद—

चेटी—वहाँ से लौटती हुई को भानुमती ने देख लिया।

भीमसेन—(क्रोध से) ओह ! शत्रु की पत्नी ने देख लिया। आह ! देवी का क्रोध उचित ही था। उसके बाद—

चेटी—तब देवी को देखकर सखी के मुख पर दृष्टि डालते हुये उसने गर्व के साथ कुछ हंसकर कहा।

भीमसेन—केवल देखा ही नहीं, कहा भी। आह क्या करें ? उसके बाद—

चेटी—अरी याज्ञसेनी, सुना है कि पाँच गाँव माँगे हैं। तब अब भी तुम्हारे केश क्यों नही बन्ध रहे है ?

भीमसेन—सहदेव, सुन लिया ?

सहदेव—आर्य, इस विषय में क्या कहा जाय ? क्योंकि वह तो दुर्योधन की स्त्री है। देखिये—

इति शाश्वतः। बद्धवेणीमित्यत्र भूतार्थक्तप्रत्ययस्यासाधुत्वमग्रे वेणीबन्धनादित्य-देश्यम्। वेण्यास्तदाबद्धत्वादग्रे उन्मोकस्य कथनात्। अत एव वेण्याः संहार उन्मोकोऽत्रेति ग्रन्थनामपि घटते। शलभायते पतङ्गवदाचरति। वेणी केशवेषः प्रवाहश्च। एनाम् इत्यत्रान्वादेशाद् एताम् इति युक्तः पाठः। तयोरनित्यत्वात् कृष्णा द्रौपदी श्यामा च ॥१६॥

अत्र खलु वाक्यभूषायाम्। अम्बा माता कुन्ती। आ इत्याक्षेपे। न संयम्यन्ते संयमनमिह बन्धम्। कलत्रशब्दस्याजहल्लिङ्गतया कलत्र सेति सामानाधिकर-ण्यम्। कलत्रं श्रोणिभार्ययो. इति विश्वः।

स्त्रीणा हि साहचर्याद्भवन्ति चेतांसि भर्तृसदृशानि ।
मधुरापि हि मूर्च्छयते विषविटपिसमाश्रिता वल्ली ॥२०॥

भीमसेन—बुद्धिमतिके, ततो देव्या किमभिहितम् ।

चेटी—कुमार, यदि परिजनहीना भवेत्तदा देवी भणति ।
[कुमाल, जई परिजणहीणा भवे तदो देवी भणदि ।]

भीमसेन—किं पुनरभिहितं भवत्या ।

चेटी—मया एवं भणितम् । अयि भानुमति, युष्माकममुक्तेषु केशेषु कथमस्माकं देव्याः केशाः संयम्यन्त इति । [मए एव्वं भणिदं । अइ भाणुमदि, तुह्माणं अमुक्केसु केसेसु कधं अह्माण देवीए केसा संजमीअन्ति त्ति ।]

भीमसेन—(परितोषम्) साधु, बुद्धिमतिके, साधु । तदभिहितं यदस्मत्परिजनोचितम् । (स्वाभरणानि बुद्धिमतिकायै प्रयच्छति) अथभवति पाञ्चालराजतनये श्रूयताम् । अचिरेणैव कालेन ।

चञ्चद्भुजभ्रमितचण्डगदाभिघात-
संचूर्णितोरुयुगलस्य सुयोधनस्य ।
स्त्यानावनद्धघनशोणितशोणपाणि-
रुत्तंसयिष्यति कचांस्तव देवि भीमः ॥२१॥

द्रौपदी—किं नाथ दुष्करं त्वया परिकुपितेन । अनुगृह्णन्तु एवं व्यवसितं ते भ्रातरः । [किं णाह दुक्करं तुए परिकुविदेण । अणुगेह्णन्तु एदं ववसिदं दे भादरो ।]

स्त्रीणामिति । [स्त्रीणा चेतांसि भर्तुः] साहचर्यान्नित्यसमाजात् [सहवासाद् भर्तृसदृशानि भवन्ति ।] मधुरा कोमला मधुररसा वा । [वल्ली विषविटपिनं समाश्रिता मूर्च्छयते हि ।] मूर्च्छयते मूर्च्छां करोति । यद्वा मूर्च्छयते जनमिति शेषः । विषविटपो विषशाखाविस्तारः । विस्तारो विटपोऽस्त्रियाम् इत्यमरः । क्वचित् विषविटपिसमाश्रिता इति पाठः । स तु मनोहरः । वल्लर्या वृक्षसाहचर्यात् । वल्ली लता । आर्याच्छन्दः ॥२०॥

सहवास के कारण स्त्रियो के चित्त भी पतियो के जैसे हो जाते है । विर्शले वृक्ष पर आश्रित लता मीठी होते हुये भी मूर्छा उत्पन्न कर देती है ॥२०॥

भीमसेन—बुद्धिमतिका तब देवी ने कहा ?

चेटी—कुमार यदि देवी सेवकों से शून्य होती तब कहतीं ।

भीमसेन—तो फिर आपने क्या कहा ?

चेटी—मैंने यह कहा—'अरी भानुमती, तुम्हारे केश जब तक नही खुल जाते, तब तक हमारी स्वामिनी के केश कैसे बधे ?

भीमसेन—(सन्तोष से) ठीक, बुद्धिमतिका, ठीक । तुमने वही कहा जो हमारे सेवक के लिए उचित था । (अपने आभूषण बुद्धिमतिका को देता है) आदरणीय पाञ्चाल की राजकुमारी, सुनिए । अल्प ही समय में—

हे देवी, फड़कती हुई भुजाओ से घुमाई गई गदा के प्रहार से चूर-चूर हुई दोनो जङ्घाओं वाले सुयोधन के चिकने, चिपके हुए और गाढे रुधिर से लाल हाथों वाला भीम तेरे केशो को अलङ्कृत करेगा ॥२१॥

द्रौपदी—नाथ कुपित हुए आपके लिये क्या करना कठिन है ? आपके भाई आपके इस निश्चय का समर्थन करें ।

केशहस्ताः संयम्यन्त इति । अत्र केशहस्ताः प्रशस्तकेशाः । साधुबुद्धिमतिके साधु इत्यनेन हर्षरूपशिल्पकमुक्तम् । यदुक्तं तत्रैव—चित्तप्रसादो हर्षः स्यात्तन्निमित्तस्य सङ्गमे इति ।

चञ्चदित्यादि । हे देवि, तव कचान्केशान्भीम उत्तम्भयिष्यति यन्त्रयिष्यति । कीदृशः सन् । [चञ्चन्तौ परिस्फुरन्तौ यौ भुजौ ताभ्यां भ्रमिता या चण्डा गदा तस्या अभिघातेन प्रहारेण संचूर्णितं ऊरुयुगलं यस्य तस्य] सुयोधनस्य स्त्यानं स्तिमितमपविद्धं क्षिप्तं (अवनद्धं समक्तं) धनं निरन्तरं यच्छोणितं तेन शोणो लोहितः पाणिर्यस्य स तथा । स्त्यानं स्तिमितसङ्घयोः इति विश्वः । आविद्धक्षिप्तेरिताः समाः इत्यमरः । चण्डः प्रचण्डः ॥२१॥

इह स्त्यानेत्यादिकः प्रतीकाररूपो गण्डः । यदुक्तं तत्रैव—प्रतिक्रियान्वितं वाक्यं प्रतीकार इति स्मृतः । इह परिन्यासरूपो मुखसंधिः यदुक्तं तत्रैव—परिन्यासस्तु कार्यस्य भाविनो निश्चयाद्वचः । नाथ अतिदुष्करं त्वया परिकुपितेन

सहदेवः—अनुगृहीतमेतदस्माभिः ।

(नेपथ्ये महान्कलकलः । सर्वे सविस्मयमाकर्णयन्ति)

भीमसेनः—

मन्थायस्तार्णवाम्भःप्लुतकुहरचलन्मन्दरध्वानधीरः
कोणाघातेषु गर्जत्प्रलयघनघटान्योन्यसङ्घट्टचण्डः ।
कृष्णाक्रोधाग्रदूतः कुरुकुलनिधनोत्पातनिर्घातवातः
केनास्मत्सिंहनादप्रतिरसितसखो दुन्दुभिस्ताडयतेऽयम् ॥२२॥

(प्रविश्य संभ्रान्तः)

कञ्चुकी—कुमार, एष खलु भगवान्वासुदेवः ।

(सर्वे कृताञ्जलयः समुत्तिष्ठन्ति)

भीमसेनः—(ससंभ्रमम्) क्वासौ भगवान् ।

कञ्चुकी—पाण्डवपक्षपातामर्षितेन सुयोधनेन संयन्तुमारब्धः ।

(सर्वे संभ्रमं नाटयन्ति)

भीमसेनः—किं संयतः ।

कञ्चुकी—नहि नहि, संयन्तुमारब्धः ।

भीमसेनः—किं कृतं देवेन ।

व्यवसितम् । तदनुमन्यन्तामेतद्व्यवसितं देवता । कलकलोऽकस्मादुत्थितो महाशब्दः ।

मन्थेत्यादि । [अयं दुन्दुभिः केन ताड्यते ? कीदृशः ?] मन्थो मन्थनदण्डस्तेनायस्तः क्षिप्तो योऽर्णवः समुद्रस्तदम्भसा प्लुतं यत्कुहरं मध्यं तेन चलन् [मन्थेन मन्थनदण्डेन मन्थनेन वा आयस्त व्याक्षिप्त यदर्णवाम्भः तस्य प्लुतेनोत्पतनेन यत्कुहरं तत्र चलन् । अम्भसा प्लुतानि व्याप्तानि कुहराणि यस्य स चासौ चलन् इति वा] यो मन्दरनामा शैलस्तस्य ध्वान इव धीरः तच्छब्दवद्गम्भीरः अयं दुन्दुभिः केन ताड्यते इत्यन्वयः । कोणाघातेषु [शब्दविशेषेषु] सत्सु ॥ ढक्काशतसहस्राणि भेरीशतशतानि च । एकदा यत्र हन्यन्ते कोणाघातः स उच्यते ॥ इति भरतः । [यद्वा कोणो वादनदण्डस्तदाघातेषु ताडनेषु सत्सु

सहदेव—हम इसका समर्थन करते हैं।

(नेपथ्य में तीव्र कलकल ध्वनि होती है। सब आश्चर्य से सुनते है)

मन्थन से क्षुब्ध समुद्र के जल से भरी हुई गुफा वाले और घूमते हुए मन्दराचल की ध्वनि के समान गम्भीर, वादन-दण्ड का प्रहार होने पर गरजती हुई प्रलयंकारी घन-घटाओं की परस्पर टक्कर के समान,भयङ्कर कृष्णा के क्रोध के सूचक, कुरु-वंश के नाश के अपशकुनभूत प्रचण्ड पवन (के समान) और हमारे सिंहनाद की प्रतिध्वनि के मित्र इस नगाड़े को कौन पीट रहा है ॥२२॥

(प्रवेश करके घबराया हुआ)

कञ्चुकी—कुमार, इन भगवान् वासुदेव को···

(सब हाथ जोड़कर खड़े हो जाते है)

भीमसेन—(घबराहट के साथ) कहाँ हे भगवान्

कञ्चुकी—पाण्डवों के प्रति प्रेमभाव को न सहन करने वाले सुयोधन ने बाँधने का प्रयत्न किया।

(सब घबरा जाते हैं)

भीमसेन—क्या बाँध लिया।

कञ्चुकी—नहीं, बाधने का प्रयत्न किया।

भीमसेन—भगवान् ने क्या किया ?

गर्जन्त्यः प्रलयघनानां घटाः पङ्क्तयस्तासामन्योन्यसङ्घट्टस्तद्वच्चण्डः। घटा समूहः सङ्घट्टो मिलनम्। [कृष्णायाः क्रोधस्तस्य] अग्रदूत. प्रथमकथकः। कुरु-कुलस्य निधनं नाशस्तस्य) उत्पातनिर्घातवातोऽशुभः प्रचण्डपवनः। [अस्माकं] प्रनिरसितं प्रतिरवः [तस्य सखा तत्सदृशः]। [अत्र बीजगुणाख्यानात् विलोभनं नाम मुखसन्ध्यङ्गमुक्तम् इति केचित्।] ॥२२॥

कञ्चुकी महल्लक.। तल्लक्षणम्-अन्तःपुरचरो वृद्धो विप्रो गुणगणान्वितः सर्वकार्यार्थकुशलः कञ्चुकीत्यभिधीयते ॥ वसुदेवस्य अपत्यं पुमान् वासुदेवः। ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च इति अण्। सयतो बद्धः। बद्धे कीलितसंयतौ समयरूपो निर्वहणसन्धिः। यदाह—विरोधस्य श्यानं यद्वा दुःखस्य समयो सावेगं सस्नेहम्। हन्त हर्षे। [दर्शितं यद्विश्वरूप तस्य तेजः तस्य ..

कञ्चुकी—तत स महात्मा दर्शितविश्वरूपतेजःसंपातमूर्च्छितमवधूय कुरुकुलमस्मच्छिबिरसन्निवेशमनुप्राप्तः । कुमारमविलम्बितं द्रष्टुमिच्छति ।

भीमसेनः—(सोपहासम्) किं नाम दुरात्मा सुयोधनो भगवन्तं संयन्तुमिच्छति । (आकाशे दत्तदृष्टिः) आः दुरात्मन्कुरुकुलपांसुल, एवमतिक्रान्तमर्यादे त्वयि निमित्तमात्रेण पाण्डवक्रोधेन भवितव्यम् ।

सहदेवः—आर्य, किमसौ दुरात्मा सुयोधनो हतको वासुदेवमपि भगवन्तं स्वेन रूपेण न जानाति ।

भीमसेनः—वत्स, मूढः, खल्वयं दुरात्मा कथं जानातु पश्य—

आत्मारामा विहितमतयो निर्विकल्पे समाधौ
ज्ञानोद्रेकाद्विघटिततमोग्रन्थयः सत्त्वनिष्ठाः ।
यं वीक्षन्ते कमपि तमसां ज्योतिषां वा परस्तात्
तं मोहान्धः कथमयममुं वेत्तु देवं पुराणम् ॥२३॥

आर्य जयन्धर, किमिदानीमध्यवस्यति गुरुः ।

मूर्च्छित] विश्वरूपं विश्वंभरमूर्ति । संपातो मेलकम् । हतको निन्द्यः । पांसुल पापकारिन् । मूढो मूर्खः । खलु वाक्यभूषायां निश्चये वा ।

आत्मेत्यादि । सत्त्वनिष्ठा. सात्त्विकभावापन्ना मुनयः यं भगवन्तं वीक्षन्ते साक्षात्कुर्वन्ति । कीदृशाः आत्मारामा आत्मैवारामो वनं येषां ते । तथा चात्मवनयोस्तुल्यत्वेनात्यन्तमौदास्यमाविष्कृतम् । यद्वा । आत्मन्यासमन्ताद्भावेन रमन्तः इत्यात्मारामाः । त्यक्तेतरसङ्गा इत्यर्थः । पुनः कीदृशा. । निर्विकल्पे निष्कलुषे निर्णीते त्यक्तभेदे वा [असंप्रज्ञातलक्षणे] समाधौ नियमविशेषे [विहितमतयः समाहितचित्ताः ।] विहितरतयः कृतानुरागा. । विहितधृतयः इत्यपि पाठः । तत्र विहिता धृतिर्धारणा यैस्ते । इद त्वत्यन्ताभ्यासवैराग्याभ्यां भवति । तथा च गीता—असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् । अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ॥ इति ॥ यद्वा आत्मारामे आत्मनीवारामेऽप्यासमन्ताद्विहितरतयः कृतानुरागा. । यद्वा । आत्मैवारामो वन तत्रासमन्ताद्भावेन विहितरयः । अस्मिन्नर्थद्वये निर्विकल्पे समाधौ सति यं वीक्षन्त इत्यर्थः । पुनः

कञ्चुकी—तत्पश्चात् वह महात्मा प्रकट किये विश्व-रूप के तेज के प्रहार से मूर्च्छित हुए कुरु-कुल को तिरस्कृत करके हमारी छावनी मे आ गये है और अविलम्ब कुमार को देखना चाहते है।

भीमसेन—(उपहास के साथ) क्या दुष्ट दुर्योधन भगवान् को बाँधना चाहता है ? (आकाश की ओर दृष्टि लगाकर) आह ! दुष्ट, कुरु-कुल को कलङ्कित करने वाले, तेरे इस प्रकार मर्यादा का उल्लङ्घन करने वाला होने पर पाण्डवो का क्रोध तो केवल निमित्तमात्र ही रह जायेगा।

सहदेव—आर्य क्या यह दुष्ट सुयोधन भगवान् वासुदेव का भी सत्य स्वरूप नही जानता ?

भीमसेन—वत्स, यह दुष्ट तो मूर्ख है, फिर भला क्या जाने ? देखो—

जिस प्रकाश और अन्धकार (ज्ञान-अज्ञान) से परवर्ती अनिर्वचनीय पुरातन देव को आत्मा में रमण करने वाले, निर्विकल्पक समाधि में चित्त को लगाये हुए ज्ञान के उद्रेक से नष्ट हुई अज्ञान-ग्रन्थि वाले ब्रह्मनिष्ठ योगी देखते है, उस (देव) को मोह से अन्धा यह (दुर्योधन) कैसे देख सकता है ॥२३॥

आर्य जयन्धर, अब बड़े भाई ने क्या निश्चय किया है ?

कीदृशाः ज्ञानोत्सेकात्तत्त्वज्ञानमाहात्म्याद्विनाशिततामसगुणा विनाशितमिथ्याज्ञाना वा। अनेन धृतेः फलमुक्तम्। ज्ञानोद्रेकात् इत्यपि पाठः। उद्रेकः प्रौढिः। अनेन सत्रासङ्ग उक्तः। अत्र तु प्रथम वनवासः ततः समाधिलाभ. ततस्तत्त्वज्ञानेन मिथ्याज्ञानविनाशः ततः तत्त्वनिष्ठता ततः साक्षात्कार इति तत्त्वज्ञानोत्पादकः क्रमोपि बोद्धव्यः। यद्वा अन्यत्र सङ्गत्यागः, ततो धृति., ततः प्रज्ञाप्रौढि', ततोऽवेद्यालक्षणतमोग्रन्थिभेदः, ततो राजसप्रवृत्युच्छेदो, मूलोच्छेदात्, ततः सात्त्विकी प्रवृत्तिः, तस्याः फलमीश्वरप्रसादः, तेन भगवान्समस्ततम प्रकाशयो., परतरो दृश्यते। तमेनं तादृशपुरुषोऽपि न पश्यति। किं पुनर्मूढो दुर्योधन इति भावः। यं कीदृशम्। कमप्यनिर्वचनीयम्। तमसां मिथ्याज्ञानानां ज्योतिषां तत्त्वज्ञानानां वा परस्तात्परम्। ताभ्यामप्यगम्यमित्यर्थः। अत एव कमपीत्युक्तम् तं देवं कथमयं मोहान्धो जानातीति। पुनः कीदृशम्। पुराणमनादिसिद्धम्। तथा चायमपियमादिदिसि पुरुषधारेयमम्यमिति ध्वनितम् ॥२३॥

काञ्चुकी—स्वयमेव गत्वा महाराजस्याध्यवसितं ज्ञास्यति कुमारः। (इति निष्क्रान्तः)।

(नेपथ्ये कलकलानन्तरम्)

भो भो द्रुपदविराटवृष्ण्यन्धकसहदेवप्रभृतयोऽस्मदक्षौहिणीपतयः कौरवचमूप्रधानयोधाश्च, शृण्वन्तु भवन्तः।

यत्सत्यव्रतभङ्गभीरुमनसा यत्नेन मन्दीकृतं
यद्विस्मर्तुमपीहितं शमवता शान्तिं कुलस्येच्छता।
तद्द्यूतारणिसंभृतं नृपवधूकेशाम्बराकर्षणैः
क्रोधज्योतिरिदं महत्कुरुवने यौधिष्ठिरं जृम्भते ॥२४॥

भीमसेनः—(आकर्ण्य सहर्षम्) जृम्भतां जृम्भतामप्रतिहतप्रसरमार्यस्य क्रोधज्योतिः।

द्रौपदी—नाथ, किमिदानीमेष प्रलयजलधरस्तनितमांसलः क्षणे क्षणे समरदुन्दुभिस्ताडयते [णाह, किं दाणी एसो पलअजलहरत्थणिदमंसलो क्खणे क्खणे समरदुन्दुही ताडीअदि।]

भीमसेनः—देवि, किमन्यत्। यज्ञः प्रवर्तते।

द्रौपदी—(सविस्मयम्) क एष यज्ञः। [को एसो जण्णो।]

भीमसेनः—रणयज्ञः यथाहि—

यत्सत्येति। [यत् सत्यव्रतभङ्गात् भीरु मनो यस्य तेन] युधिष्ठिरेण इति शेषः। यत्नेन मन्दीकृतम्। अवश्यपालनीयः संकल्पो व्रतम्। सत्यमेव व्रतम्। मन्दीकृतं। मनसेति विशेषणद्वारा विशेष्यप्रतिपत्तिरिति वा। यत्क्रोधज्योतिः शमवता (प्रशस्तशान्तिशालिना कुलस्य शान्तिं स्वास्थ्यं विनाशाभावात् इच्छता विस्मर्तुमपीहितमिष्टं शमवशात्क्रोधायावकाशमदत्त्वेत्यर्थः।) तदिदं द्यूतमेवारणिर्यज्ञकाष्ठभेदस्तत्र संभृतं समुपचितम् निर्मन्थ्यदारुणि त्वरणिर्द्वयोः इत्यमरः। नृपसुता द्रौपदी तस्याः केशाश्चाम्बराणि वस्त्राणि च तेषामाकर्षणैरुद्दीपितमिति

कञ्चुकी—कुमार स्वयं ही जाकर महाराज के निश्चय को जान लेंगे। (यह कहकर निकल जाता है)।

(नेपथ्य मे कलकल ध्वनि के उपरान्त)

हे द्रुपद, विराट, वृष्णि, अन्धक, सहदेव आदि हमारी सेना के सेनापतियों और कौरवो की सेना के मुख्य वीरो, आप लोग सुनें—

नृपवधु (द्रौपदी) के केश और वस्त्रों के खींचने से द्यूतरूपी अरणि में उत्पन्न, युधिष्ठिर की वह महान् क्रोधाग्नि, जिसे सत्य-प्रतिज्ञा के उल्लङ्घन से भयभीत चित्त वाले (युधिष्ठिर) ने यत्नपूर्वक शान्त कर रक्खा था और जिसे कुल में शान्ति चाहने वाले तथा शान्ति धारण करने वाले (युधिष्ठिर) ने भुलाना भी चाहा था, वह (अब) कुरु-कुल रूपी वन मे भड़क उठी है ॥२४॥

भीमसेन—(सुनकर हर्ष के साथ) बढ़े आर्य की क्रोधाग्नि ऐसी बढ़े कि उसकी गति अवरुद्ध न होवे।

द्रौपदी—नाथ, प्रलयकाल में मेघ के गर्जन के समान गम्भीर यह युद्ध का नगाड़ा क्षण-क्षण मे अब क्यों बजाया जा रहा है?

भीमसेन—देवी, और क्या? यज्ञ प्रारम्भ हो रहा है।

द्रौपदी—(आश्चर्य से) यह कौन-सा यज्ञ है?

भीमसेन—(यह) युद्ध-रूपी यज्ञ (है)। इस प्रकार कि—

शेषः) तदिदं यौधिष्ठिरं युधिष्ठिरसम्बन्धि (महद् क्रोधज्योतिः क्रोधदावानलं इत्यर्थः) कुरव एव वनं तस्मिन्। जृम्भते प्रकाशते ॥२४॥

प्रलयजलधरमन्थरस्तनितमांसलोद्घोद्भीषणः क्षणे क्षणे इत्यादि। अत्र मन्थरस्तनितं गम्भीरगर्जितं तद्वन्मांसलोऽधिको य उद्घोषः उच्चैः शब्दस्तेन भीषणः। इह विद्रवनामा गर्भसन्धिः। यदाह—शङ्काकलङ्कप्रभवः संभ्रमो विद्रवो मतः। इति। ननु भणामीत्यर्थे।

चत्वारो वयमृत्विजः स भगवान्कर्मोपदेष्टा हरिः
　　संग्रामाध्वरदीक्षितो नरपतिः पत्नी गृहीतव्रता ।
कौरव्याः पशवः प्रियापरिभवक्लेशोपशान्तिः फलं
　　राजन्योपनिमन्त्रणाय रसति स्फीतं यशोदुन्दुभिः ॥२५॥

सहदेवः—आर्य गच्छामो वयमिदानीं गुरुजनानुज्ञाता विक्रमानुरूपमाचरितुम् ।

भीमसेनः—वत्स एते वयमुद्यता एवार्यस्यानुज्ञामनुष्ठातुम् । (उत्थाय) देवि, गच्छामो वयमिदानीं कुरुकुलक्षयाय ।

द्रौपदी—(बाष्पं धारयन्ती) नाथ, असुरसमराभिमुखस्य हरेरिव मङ्गलं युष्माकं भवतु [णाह, असुरसमराहिमुहस्स हरिणो विअ मङ्गलं तुह्माणं होदु ।]

उभौ—प्रतिगृहीतं मङ्गलवचनमस्माभिः ।

द्रौपदी—अन्यच्च नाथ, पुनरपि युस्माभिः समरादागत्याहं समाश्वासयितव्या [अण्णं च णाह, पुणोवि तुह्मेहिं समरादो आअच्छिअ अहं समास्ससइदव्वा ।]

भीमसेनः—ननु पाञ्चालराजतनये किमद्याप्यलीकाश्वासनया ।

　　भूयः परिभवक्षान्तिलज्जाविधुरिताननम् ।
　　अनिःशेषितकौरव्यं न पश्यसि वृकोदरम् ॥२६॥

बीजप्ररोह उद्भेदो यत्किंचित्प्रभवनात्मकः । इति भरतादुद्भेदरूपं मुखसन्धिमाह—चत्वार इति । चत्वारो भीमार्जुनसहदेवनकुलाः । ऋतुमृतौ वा यजन्ति इति ऋत्विजः । ऋत्विग्दधृग् इति क्विवन्तो निपातः । (पा० ३. २. ५६) ब्रह्मोद्गातृहोत्रध्वर्युरूपाः । स भगवान् हरिः कर्मोपदेष्टाचार्यः । [संग्राम एवाध्वरो यज्ञस्तत्र] दीक्षितो दीक्षा प्रापित. । [यद्वा दीक्षा जातास्य तरकादित्वादितच्] नरपतिर्युधिष्ठिर । पत्नी द्रौपदी गृहीतव्रता कृतनियमा । [व्रतमत्र कौरवनिधने केशान्सहरिष्यामीति नियमरूपम् ।] कौरव्याः कुरुकुलजाताः । पशवो यथार्थं घातनीयाः । राजन्योपनिमन्त्रणाय क्षत्रियाह्वानाय । रसति शब्दायते । स्फीतं मनोज्ञं [सुमहानादं च] यथा स्यादेवम् । यशोदुन्दुभिर्यशःप्रधानो वाद्यविशेषः । यद्वा यशोदुन्दुभिः पटहः । स्याद्यशः पटहो ढक्का

हम चारों पुरोहित हैं, वह भगवान् विष्णु (कर्त्तव्य) कर्म का उपदेश देने वाले (आचार्य) है, राजा (युधिष्ठिर) युद्ध रूपी यज्ञ की दीक्षा लिए (यजमान) हैं, पत्नी (द्रौपदी) नियम धारिणी है, कौरव लोग (बलि होने वाले) पशु हैं (और) प्रिया के अपमान से उत्पन्न क्लेश की शान्ति फल है। (यह) यशो-दुन्दुभि राज-समूह को निमन्त्रित करने के लिये जोर से बज रही है ॥२५॥

सहदेव—आर्य, अब बड़े जनों से अनुमति पाये हम भी अपने पराक्रम के योग्य आचरण करने के लिये जाते हैं।

भीमसेन—वत्स, आर्य की आज्ञा का पालन करने के लिये हम तैयार ही हैं। (उठकर) देवी, अब हम कौरवों के नाश के लिये जाते है।

द्रौपदी—(आँसू भरकर) नाथ, असुरों के साथ युद्ध के लिये जाने वाले विष्णु के समान आपका मङ्गल होवे।

दोनों—हमें (आपका) मङ्गल-वचन स्वीकार है।

द्रौपदी—और नाथ, युद्ध से लौटकर मुझे फिर भी सान्त्वना दीजियेगा।

भीमसेन—पाञ्चाल की राजकुमारी, अब झूठे आश्वासन से क्या (प्रयोजन)?

(अब) फिर वृकोदर को सब कौरवों का बिना नाश किये (और) तिरस्कार-जन्य ग्लानि तथा लज्जा से दीन-मुख न देखोगी ॥२६॥

भेर्यामानकदुन्दुभिः। इत्यमर ॥२५॥

अनुज्ञात इति पञ्चम्यास्ततिः। [अनुज्ञाताः कृतानुमतय.] इह देवि गच्छामः इत्यनेन कारणरूपो मुखसन्धिः। यदाह—उद्यमः प्रस्तुतार्थस्य कारण परिकीर्तितम्। हरेर्यन्मङ्गलं वृत्तं तद्युष्माकं भवतु। यच्चाम्बा कुन्ती वदति तद्युष्माकं भवतु। अलीक मिथ्याः।

भूय इति। भूयः परिभवःप्रचुरपराभवः। भूय इति पदच्छेदो युक्ततरः। 'परिभवेन या ग्लानिर्लज्जा च ताभ्याम्। क्षान्तीति पाठे परिभवस्य क्षान्त्या या लज्जा यथा विदुरितं क्लिष्ट विच्छाय वा आननं यस्य तम्। अकृतकौरवनिःपातं पुनः पश्यसि।] क्षान्तिः क्षमा। विदुरितं व्याप्तम्। वृकोदरं भीमम्। न पश्यसि इति पाठे भविष्यति लट् ॥२६॥

द्रौपदी—नाथ, मा खलु मा खलु याज्ञसेनीपरिभवोद्दीपितकोपानला अनपे-(बे) क्षितशरीराः संचरिष्यथ । यतोऽप्रमत्तसंचरणीयानि रिपुबलानि श्रूयन्ते । [णाह, मा क्खु मा क्खु जण्णसेणीपरिहवुद्दीविदकोवाणला अणवेक्खिदसरीरा संचरिस्सध । जदो अप्पमत्तसंचरणिज्जाइं रिउबलाइं सुणीअन्ति ।]

भीमसेन—अयि सुक्षत्रिये,

अन्योन्यास्फालभिन्नद्विपरुधिरवसामांसमस्तिष्कपङ्के
मग्नानां स्यन्दनानामुपरिकृतपदन्यासविक्रान्तपत्तौ ।
स्फीतासृक्पानगोष्ठीरसदशिवशिवातूर्यनृत्यकबन्धे
सङ्ग्रामैकार्णवान्तः पयसि विचरितुं पण्डिताः पाण्डुपुत्राः ॥२७॥

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

॥ इति प्रथमोऽङ्कः ॥

[अनपेक्षितमचिन्तितं शरीरं शरीररक्षणामिति यावत् यैः । अकृतशरीर-रक्षणचिन्ता इत्यर्थः । अप्रमत्तं यथा तथा संचरणीयानि ।] अत्र खलु निषेधे-ऽवधारणे वा । अप्रमत्तः सावधानः । प्रमत्त इत्यत्र रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः इति सूत्रेण न नत्वम् न ध्याख्यापृमूर्च्छिमदाम् इति प्रतिषेधात् ॥

अन्योन्येति । [पाण्डुपुत्राः संग्राम एव एकः मुख्यः अर्णवः तस्य अन्तः पयसि विचरितुं पण्डिताः सन्ति । अतो न शङ्का कार्या इति भावः । कीदृशे पयसि । अन्योन्यमन्योन्येषां वा य आस्फालस्तेन भिन्ना विपाटितदेहा ये द्विपा गजास्तेषां रुधिरं च वसा हृन्मेदश्च मांसं च मस्तिष्कं मस्तकसंभूतस्नेहश्च रुधिर···मस्तिष्कं तदेव पङ्कस्तस्मिन् मग्नानां पतितानां स्यन्दनानामुपरि कृताः पदन्यासा यैः

द्रौपदी—नाथ, नहीं, याज्ञसेनी के अपमान से उद्दीप्त क्रोध वाले आप अपने शरीर की ओर असावधान होकर संचरण नहीं करेंगे। क्योंकि सुना है कि शत्रु की सेना में सावधान होकर विचरण करना चाहिये।

भीमसेन—अयि श्रेष्ठ क्षत्राणि,

पाण्डु के पुत्र युद्ध रूपी अद्वितीय समुद्र के मध्य जल में—जहाँ परस्पर टकराने से विदीर्ण हाथियों के रुधिर, चर्बी, माँस और मस्तिष्क से (उत्पन्न) पङ्क में डूबे हुए रथों के ऊपर पैर रखकर पदाति पराक्रम दिखलाते हैं और जहाँ विपुल रुधिर की पान-गोष्ठी में ध्वनि करती हुई अमङ्गलकारी श्रृगाली-रूपी वाद्य पर कबन्ध (धड़) नाचते हैं—विचरण करने में चतुर हैं ॥२७॥

(सब निकल जाते हैं)

॥ प्रथम अङ्क समाप्त ॥

तथाभूताः विक्रान्ताः पत्तयः यत्र तस्मिन् ।] आस्फालः संघट्टः । भिन्नो दारितः। मस्तिष्कं गोदां गोदी इति लोके प्रसिद्धम् । स्यन्दनो रथः । कृतपदन्यासोऽत एव विक्रान्तः पत्तिः पदातिर्यत्र तादृशे । स्फीतासृग्दीप्तरक्तं तत्पानगोष्ठीषु रसन्ती अशिवशिवाऽमङ्गलश्रृगालिका सैव तूर्यो मर्दलं तेन नृत्यम् कबन्धः अपमूर्द्धकलेवरो यत्र तादृशे ॥२७॥

सर्वे निष्क्रान्ता इति सर्वत्राङ्के कर्तव्यम् । तदुक्तं तत्रैव तत्रैव–पात्रैस्त्रिचतुरैरङ्कस्तेषामन्ते च निर्गमः । इति ॥

असूत यं रत्नधरो गुणीशस्तत्तद्गुणाढ्या दमयन्तिकापि ।
जगद्धरं तस्य कृतौ व्यरंसीदाद्योऽयमङ्को वरटिप्पणेऽत्र ॥

॥ इति प्रथमोऽङ्कः ॥

द्वितीयोऽङ्कः

—: ० :—

(ततः प्रविशति कञ्चुकी)

कञ्चुकी—आदिष्टोऽस्मि महाराजदुर्योधनेन—विनयन्धर, सत्वरं गच्छ त्वम्। अन्विष्यतां देवी भानुमती। अपि निवृत्ता अम्बायाः पादवन्दनसमयाद्वेति। यतस्तां विलोक्य निहताभिमन्यवो राधेयजयद्रथप्रभृतयोऽस्मत्सेनापतयः समरभूमिं गत्वा सभाजयितव्याः इति। तन्मया द्रुततरं गन्तव्यम्। अहो प्रभविष्णुता महाराजस्य यन्मम जरसाभिभूतस्य मर्यादामात्रमेवावरोधव्यापारः। अथवा किमिति जरामुपालभेय, यतः सर्वान्तःपुरचारिणामयमेव व्यावहारिको वेषश्चेष्टा। तथाहि—

> नोच्चैः सत्यपि चक्षुषीक्षितमलं श्रुत्वापि नाकर्णितं
> शक्तेनाप्यधिकार इत्यधिकृता यष्टिः समालम्बिता।
> सर्वत्र स्खलितेषु दत्तमनसा याते मया नोद्धतं
> सेवास्वीकृतजीवितस्य जरसा किं नाम यन्मे कृतम्॥१॥

आदिष्टोऽस्मीति। संभावयितव्याः इत्यनेनान्वयः। अन्विष्यतामनुसन्धीयताम् अपिः प्रश्ने संभावनायां वा। अम्बा माताथ जननी इत्यमरः। [समय आचारो नियमो वा। समयः शपथे भाषासम्पदोः कालसंविदोः सिद्धान्ताचारसङ्केतनियमावसरेषु च॥ इति हैमः]। राधेयः कर्णः। संभावयितव्याः सन्निहितीकर्तव्याः) [सभाजयितव्याः सम्मानयितव्याः]। प्रभविष्णुता प्रभावशालिता। जरसा वार्धकेन। मर्यादामात्र मर्यादापर्यवसन्नः। अवरोधव्यापारोऽन्तःपुरकर्म व्यावहारिको व्यवहारजन्यः। उक्तोपन्यासे तथाहि इति शब्दप्रयोगः।

नोच्चैरिति। चक्षुषि सत्यपि उच्चैरीक्षितुं, नालमहं न समर्थः। [ईक्षितुमिति पाठः प्रक्रमभङ्गादुपेक्ष्यः। चक्षुषि सत्यपि मया उच्चैः नेक्षितमुद्वीक्षितम्]। नाऽऽकर्णितं मयेत्यन्वयः। शक्तेनापि मया यष्टिः [समालम्बिता] समाश्रिता।

द्वितीय अङ्क

(तत्पश्चात् कञ्चुकी प्रवेश करता है)

कञ्चुकी—महाराज दुर्योधन ने मुझे आज्ञा दी है—'विनयन्धर, जल्दी जाओ। देवी भानुमती का पता लगाओ। वह माता जी की चरण-वन्दना के आचार से निवृत्त हो चुकी अथवा नहीं। क्योंकि उसे देखने के पश्चात् मुझे अभिमन्यु को मार डालने वाले, कर्ण, जयद्रथ आदि अपने सेनापतियों को युद्ध-भूमि में जाकर सम्मानित करना है। इसलिये मुझे बहुत शीघ्र जाना चाहिए। ओह! महाराज का प्रभाव भी कितना अद्‌भुत है कि मुझे वृद्धावस्था से आक्रान्त का केवल मर्यादा पालन ही अन्तःपुर में कर्त्तव्य रह गया है। अथवा वृद्धावस्था को क्या उलाहना दूँ? क्योंकि अन्तःपुर मे नियुक्त सब लोगों का यही आचारानुरूप वेष और चेष्टा है। क्योंकि—

आँखें होने पर भी ऊपर को नहीं देखा, पर्याप्त सुनकर भी नहीं सुना; समर्थ होते हुए भी अधिकार के कारण धारण की जाने वाली छड़ी का सहारा लिया; हमेशा त्रुटियों का ध्यान रखते हुए मैं कभी अकड़कर नहीं चला। सेवा के लिये प्राण धारण करने वाले मुझ में क्या (नई बात है), जो वृद्धावस्था ने उत्पन्न की है ॥१॥

कीदृशी। अधिकारोऽयं मम कञ्चुकी नो यष्टिसमालम्बनमिति अधिकृता योग्या। स्खलित व्यापारप्रच्यवः। उद्धतं यथा स्यादेवं मया न यातं नोद्धतेन मया भूतमित्यर्थः। नामानवक्लृप्तौ। जरसा मम किं नाम कृतम्। अपि तु न कमपि। कीदृशस्य सेवान्धीकृतजीवितस्य इति पाठः। तत्र सेवार्थं स्वीकृतं जीवितं जीवनं येन। तथा च सेवानिमित्तमेव ममान्ध्यादिकं न तु जराकृतमिति भावः ॥१॥

(परिक्रम्य दृष्ट्वा आकाशे) विहङ्गिके, अपि श्वश्रूजनपादवन्दनं कृत्वा प्रतिनिवृत्ता भानुमती। (कर्णं दत्त्वा) किं कथयसि—आर्य, एषा भानुमती देवी पत्युः समरविजयाशंसया निर्वर्तितगुरुदेवपादवन्दनाद्यप्रभृत्यारब्धनियमा बालोद्याने तिष्ठतीति। तद्भद्रे, गच्छ त्वमात्मव्यापाराय। यावदहमप्यत्रस्थां देवीं महाराजस्य निवेदयामि। (इति परिक्रम्य) साधु पतिव्रते साधु। स्त्रीभावेऽपि वर्तमाना वरं भवती न पुनर्महाराजः, योऽयमुद्यतेषु बलवत्स्वबलवत्सु वा वासुदेव सहायेषु पाण्डुपुत्रेष्वरिष्वद्याप्यन्तःपुरविहारमनुभवति। (विचिन्त्य) इदमपरमयथातथं स्वामिनश्चेष्टितम्। कुतः—

आ शस्त्रग्रहणादकुण्ठपरशोस्तस्यापि जेता मुने—
स्तापायास्य न पाण्डुसूनुभिरयं भीष्मः शरैः शायितः।
प्रौढानेकधनुर्धरारिविजयश्रान्तस्य चैकाकिनो
बालस्यातमरातिलूनधनुषः प्रीतोऽभिमन्योर्वधात् ॥२॥

सर्वथा दैवं नः स्वस्ति करिष्यति। तद्यावदत्रस्थां देवीं महाराजस्य निवेदयामि। (इति निष्क्रान्तः)

॥ इति विष्कम्भकः ॥

(ततः प्रविशत्यासनस्था देवी भानुमती, सखी, चेटी च)

सखी—सखी भानुमति, कस्मादिदानीं त्वं स्वप्नदर्शनमात्रस्य कृते अभिमानिनी

आकाश इति। दूरस्थाभाषणं यत्स्यादशरीरं निवेदनम्। परोक्षान्तरितं वाक्यं तदाकाशे निगद्यते। इति भरतः। विहङ्गिका [तन्नाम्नी दासी]। [आरब्धो नियमो व्रतं यया]। देवगृहप्रधानमुद्यानं वनम्। वरं मनागिष्टा। मनागिष्टे वरं यत्तु कश्चिदाह तदव्ययम्। इति विश्वः। विहारः क्रीडा अयथातथमनर्हम्।

आ शस्त्रेति। यदसौ भीष्मः पाण्डुसूनुभिः शरैः शायितस्तदस्य तापाय तापार्थम्। तादर्थ्ये चतुर्थी। कीदृशः। शस्त्रग्रहणदारभ्य [अकुण्ठोऽप्रतिहतप्रसरः परशुर्यस्य तस्य]। सफलपरशोः [तस्य प्रसिद्धस्य] मुनेः परशुरामस्यापि जेता। यदयमभिमन्योर्वधात्प्रीतः। कीदृशस्य। प्रौढा ये अनेके धनुर्धरास्ते च तेऽरयश्च

(घूमकर और देखकर आकाश में) विहङ्गिका, क्या सास के चरणों की वन्दना करके भानुमती लौट आई है ? (कान लगाकर) क्या कह रही है कि—'आर्य, यह देवी भानुमती पति की युद्ध में विजय की कामना से गुरुजनों और देवों की चरण-वन्दना करके आज से व्रत धारण किये बालोद्यान में स्थित हैं।' तब भद्रे, तुम अपने काम के लिये जाओ। मैं भी यहाँ स्थित देवी के विषय में महाराज से निवेदन किये देता हूँ। (घूमकर) धन्य है, पतिव्रता धन्य है। स्त्री होते हुए भी आप अच्छी हैं; लेकिन महाराज (अच्छे) नहीं (हैं), जो यह अब भी अन्तःपुर में विहार का उपभोग कर रहे हैं, जबकि शत्रु पाण्डु के पुत्र, जिनके वासुदेव सहायक हैं और जो, (चाहे) बलवान् हों या दुर्बल, युद्ध के लिए तत्पर हैं। (सोचकर) यह स्वामि का दूसरा अनुचित कार्य है। क्योंकि—

आयुध-ग्रहण से लेकर कभी कुण्ठित न हुए परशु वाले उस प्रसिद्ध मुनि (परशुराम) को जीतने वाला यह भीष्म पाण्डु-पुत्रों द्वारा बाणों से सुला दिया जाने पर इस (दुर्योधन) के दुःख के लिये न हुआ, (जबकि) यह बड़े-बड़े अनेक धनुर्धारी शत्रुओं को जीतने से थके हुए शत्रुओं द्वारा काटी गई धनुष वाले और अकेले, बालक अभिमन्यु के वध से प्रसन्न हो रहा है ॥२॥

भगवान् ही सब तरह हमारा कल्याण करेंगे। तो अब यहाँ स्थित भानुमती के विषय में महाराज से बतला दूँ। (बाहर चला जाता है)।

॥ विष्कम्भक समाप्त ॥

(तत्पश्चात् आसन पर बैठी देवी भानुमती, सखी और चेटी प्रवेश करती हैं)

सखी—सखी भानुमती, अभिमानी महाराज दुर्योधन की महारानी होकर

तेषां विजयः तेन श्रान्तस्य] महारथविजयश्रान्तस्यैकस्य [अरातिभिः लून धनुः—र्यस्य तस्य] शत्रुच्छिन्नकोदण्डस्य च। एकाकीति एकादाकिनिच्चासहाये इत्याकिनिच्प्रत्ययः ॥२॥

दैवं दिष्टं भागधेयम् इत्यमरः। स्वस्ति कल्याणम्। नोऽस्माकम्।

विष्कम्भक इति। कुतोऽपि स्वेच्छया क्लृप्तो ह्यङ्कस्तेनोभयोरपि।

महाराजदुर्योधनस्य महिषी भूत्वैवं विगलितधीरभावातिमात्रं संतप्यसे [सहि माणुमदि, कीस दाणीं तुम सिविणअदंसणमेत्तम्म किदे अहिमाणिणो महाराअ-दुज्जोहणस्स महिसि भविअ एव्वं विअलिअधीरभावा अदिमेत्तं संतप्पसि ।]

चेटी—भट्टिनि, शोभनं भणति सुवदनः स्वप्नजन. किं न खलु प्रलपति । [भट्टिणी, सोहणं भणादि सुवअणा । सिविणअन्तो जणो किं ण क्खु प्पलवदि]

भानुमती—[हञ्जे एवमेतत् । किन्त्वयं स्वप्नोऽतिमात्रमकुशलदर्शनो मे प्रतिभाति । [हञ्जे एव्व ण्णेदम् । किंदु एदं सिविणअं अदिमेत्तं अकुसलदंसणं मे पडिभादि ।]

सखी - प्रियसखि, यद्येवं तरकथय स्वप्नं येनावामपि प्रतिष्ठापयन्त्यौ धर्मप्रशंसया देवतासंकीर्तनेन दूर्वादिपरिग्रहेण च परिहरिष्यावः । [पिअसहि, जइ एव्व ता कहेहि सिविणअं जेण अह्म वि पडिट्ठावअन्तीओ धम्मप्पसंसाए देवदासंकित्तणेण दुव्वादिपडिग्गहेण अ परिहरिस्सामो ।]

चेटी—शोभनं खलु भणति सुवदना । अकुशलदर्शना. स्वप्ना देवतानां प्रशंसया कुशलपरिणामा भवन्तीति श्रूयते । [सोहणं खु भणादि सुअवणा । अकुसलदंसणा सिविअणा देवदाण पससाए कुसलपरिणामा होन्ति त्ति सुणीअदि]

भानुमती—यद्येवं तत्कथयिष्ये । अवहिता तावद्भव ।

[जइ एव्वं ता कहइस्स । अवहिदा दाव होहि ।]

सखी—अवहितास्मि । कथयतु प्रियसखी । [अवहिदम्हि । कहेदु पिअसही]

भानुमती—हला भयेन विस्मृतास्मि । तत्तिष्ठ यावत्सर्वं स्मृत्वा कथयिष्यामि । [हला भएण विसुमरिदम्हि ता चिट्ठ जाव सव्वं सुमरिअ कहइस्सं ।] (इति चिन्ता नाटयति) ।

(ततः प्रविशति दुर्योधनः कञ्चुकी च)

दुर्योधन—सूक्तमिदं कस्यचित् ।

गुप्त्या साक्षान्महानल्पः स्वयमन्येन वा कृतः ।
करोति महती प्रीतिमपकारोऽपकारिणाम् ॥३॥

विष्कम्भकः स विज्ञेयः कथायंस्यापि सूचकः ॥ इति भरतः ॥

किमितिदानीं त्वं···भूत्वा विगलितधीरता इत्या० । अत्र [अभिमानस्त्वहं-

भी स्वप्न के दर्शन मात्र से इस प्रकार धीरता खोकर तू अब यों अत्यधिक दुःखी हो रही है?

चेटी—स्वामिनी, सुवदना ठीक कह रही है। सोते हुए मनुष्य क्या नहीं कह देता है?

भानुमती—हञ्जे, ऐसा ही है। फिर भी मुझे यह स्वप्न अत्यधिक अशुभ-सूचक प्रतीत हो रहा है।

सखी—प्रिय सखी, यदि ऐसा है तो स्वप्न (हमें भी) बतला दो, जिससे हम दोनों भी (उसे) मङ्गल-जनक बनाकर धर्म कथा, देवों के नामोच्चारण और दूर्वा (दूब घास) के धारण से (अनिष्ट का) परिहार करें।

चेटी—सुवदना ठीक कह रही है। सुना जाता है कि अशुभ स्वप्न भी देवों की स्तुति से शुभ फल वाले हो जाते हैं।

भानुमती—यदि ऐसा है, तो कहती हूँ। सावधान हो जाओ।

सखी—मैं सावधान हूँ। प्रियसखी कहे।

भानुमती—सखी, भय के कारण मैं भूल रही हूँ। तनिक ठहरो, सब याद करके बतलाती हूँ। (सोचती है)

(तत्पश्चात् दुर्योधन और कञ्चुकी प्रवेश करता है)

दुर्योधन—किसी ने यह ठीक कहा है—

शत्रु की हानि, छिपकर की गई हो या प्रत्यक्ष, थोड़ी हो या अधिक, स्वयं की हो या दूसरे ने, बहुत ही प्रसन्नता उत्पन्न करती है॥३॥

क्षता। हिंसायां प्रणयेऽज्ञाने। इति हैम.)। महिषी कृताभिषेकायाम् इत्यमरः। स्वप्नखलु जनो यत्किमपि विप्रलपति। अत्र खलु प्रसिद्धौ। विप्रलपति विसवादि वचो वदति। किं त्वेष मे स्वप्नो…प्रतिभासते। येन मया प्रतिष्ठापयन्त्या प्रशंसया देवतासंकीर्तनेन च परिहरिष्यते। अत्र प्रतिष्ठापयन्त्या स्वप्न शुभार्थकं कुर्वत्येत्यर्थः। (प्रतिष्ठापयन्त्यौ शुभफलदत्वेन सम्पादयन्त्यौ। देवि एवमेतत्। अकुशलदर्शना अपि स्वप्नाः प्रशसया…। सूक्तं शोभनोक्तिः।)

गुप्त्येति। अपकारिणां शत्रूणामपकारो गुप्त्या निभृत साक्षात्सवंवेद्यो महान्स्वल्पो वा स्वय वान्येन वा कृतो महतीं प्रीति करोतीत्यन्वयः॥३॥

येनाद्य द्रोणकर्णजयद्रथादिभिर्हतमभिमन्युमुपश्रुत्य समुच्छ्वसितमिव नश्चेतसा।

कञ्चुकी—देव, नेवमतिदुष्करमाचार्यशस्त्रप्रमाथाणाम्। कर्णजयद्रथयोर्वा का नामात्र श्लाघा।

राजा—विनयन्धर, किमाह भवान्? एको बहुभिर्बालो लूनशरासनश्च निहत इत्यत्र का श्लाघा कुरुपुङ्गवानामिति। मूढ, पश्य—

हते जरति गाङ्गेये पुरस्कृत्य शिखण्डिनम्।
या श्लाघा पाण्डुपुत्राणां सैवास्माकं भविष्यति ॥४॥

कञ्चुकी—(सवैलक्ष्यम्) देव, न ममायं सङ्कल्पः। किं तु भवत्पौरुषप्रतीघातोऽस्माभिर्नावलोकितपूर्व इत्यत एवं विज्ञापयामि।

राजा—एवमिदम्।

सहभृत्यगणं सबान्धवं सहमित्रं ससुतं सहानुजम्।
स्वबलेन निहन्ति संयुगे न चिरात्पाण्डुसुतः सुयोधनम् ॥५॥

कञ्चुकी—(कर्णौ पिधाय सभयं) शान्तं पापम्। प्रतिहतममङ्गलम्।

राजा—विनयन्धर, किं मयोक्तम्।

कञ्चुकी—सहभृत्यगण पाण्डुसुत सुयोधनः॥ (इति पठति)। एतद्विपरीतमभिहितं देवेन।

राजा—विनयन्धर, अद्य खलु भानुमति यथापूर्वं मामनामन्त्र्य वासभवनात्प्रातरेव निष्क्रान्तेति व्याक्षिप्तं मे मनः। तदादेशय समुद्देशं यत्रस्था भानुमति।

कञ्चुकी—इत इतो देव।

[समुच्छ्वसितमिव विकसितमिवेत्युत्प्रेक्षा]। का नाम अपि तु न कापि। नामानवक्लृप्तौ। लूनशरासनश्छिन्नधनुः।

हत इति। जरति वृद्धे। गाङ्गेये गङ्गापुत्रे भीष्मे। शिखण्डी क्लीबरूपी योधभेदः। तं पुरस्कृत्याग्रे कृत्वा गाङ्गेये हते सतीत्यन्वय. ॥४॥

सङ्कल्प इच्छा। वो युष्माकम्।

सहभृत्येति। सहभृत्यगणमित्यादौ समासो वैकल्पिकः। न चिरादित्यत्रा-

इसीलिए आज द्रोण, कर्ण, जयद्रथ आदि द्वारा मारे गए अभिमन्यु के विषय में सुनकर हमारे चित्त ने साँस-सा लिया है।

कञ्चुकी—महाराज, आचार्य के शस्त्रों के सामर्थ्य के लिये यह कोई अतिदुस्साध्य कार्य नहीं था और न ही कर्ण या जयद्रथ के लिए। इसमें प्रशंसा की क्या बात है ?

राजा—विनयन्धर, क्या कहा आपने—'कटे धनुष वाले अकेले बालक को बहुतों ने मारा, इसलिए इसमें कुरुश्रेष्ठों की प्रशंसा की क्या बात है ?' मूर्ख देख—

शिखण्डी को आगे करके बूढे गाङ्गेय (गङ्गा-पुत्र, भीष्म) को मारने पर जो पाण्डु के पुत्रों की प्रशंसा हुई है, वही हमारी होगी ॥४॥

कञ्चुकी—(लज्जित होकर) महाराज, मेरा यह अभिप्राय नहीं था। परन्तु आपके पराक्रम की कुण्ठा हमने पहले कभी नहीं देखी इसलिए ऐसा कहा है।

राजा—ऐसा ही है—

शीघ्र ही पाण्डु का पुत्र अपने बल से युद्ध में भृत्य-वर्ग, बन्धु-बान्धव, मित्र, पुत्र तथा अनुजों सहित सुयोधन को मार डालेगा ॥५॥

कञ्चुकी—(कानों पर हाथ रखकर, भय के साथ) पाप शान्त हो। अमङ्गल का नाश हो।

राजा—विनयन्धर, मैंने क्या कहा है ?

कञ्चुकी—'भृत्य वर्ग सहित··· पाण्डुपुत्र को सुयोधन। (इत्यादि का पाठ करता है) महाराज ने इसका विपरीत कह दिया।

राजा—विनयन्धर, आज भानुमती पहले के समान मुझ से बिना कहे वासभवन से प्रातः ही बाहर चली गई। इससे मेरा चित्त व्याकुल है। इसलिये वह स्थान बतलाओ जहाँ भानुमती स्थित है।

कञ्चुकी—महाराज, इधर से, इधर से।

चिरादित्यर्थः। न शब्द एवायं न तु नञ्समासः ॥५॥

पठति। न चिरात्पाण्डुसुत सुयोधनः इत्याकारेण। व्याक्षिप्तं—[व्याकुलं] चपलम्। इत इतो गम्यतामिति शेषः।

(उभौ परिक्रामतः)

कञ्चुकी—(पुरोऽवलोक्य । समन्ततो गन्धमाघ्राय) देव, पश्य पश्य । एतत्तुहिनकणशिशिरसमीरणोद्वेल्लितबन्धनच्युतशेफालिकाविरचितकुसुमप्रकरम्, ईषदालोहितमुग्धवधूकपोलपाटललोध्रप्रसूनविजितश्यामलतासौभाग्यम् उन्मीलितबकुलकुन्दकुसुमसुरभिशीतलं प्रभातकालरमणीयमग्रतस्ते बालोद्यानम् । तदवलोकयतु देव । तथाहि—

प्रालेयमिश्रमकरन्दकरालकोशैः
पुष्पैः समं निपतिता रजनीप्रबुद्धैः ।
अर्कांशुभिन्नमुकुलोदरसान्द्रगंध-
सम्मूर्च्छितानि कमलान्यलयः पतन्ति ॥६॥

राजा—(समन्तादवलोक्य) विनयंधर, इदमपरमस्मिन्नुषसि रमणीयतरम् । पश्य—

जृम्भारम्भप्रविततदलोपान्तजालप्रविष्टै-
र्हस्तैर्भानोर्नृपतय इव स्पृश्यमाना विबुद्धाः ।

तुहिनं हिमम् । शिशिरं शीतलम् । उद्वेल्लितं चपलीकृतम् । वृन्तं प्रसवबन्धनम् । बन्धुरं निम्नोन्नतम् । शेफालिका पुष्पभेदः । शेफालिका तु सुवहा निर्गुण्डी नीलिकापि सा । इत्यमरः । प्रियङ्गुः फलिनी फली । इत्यमरः । श्यामलता सर्तुल इति प्रसिद्धा । [तुहिनकणैः शिशिरो यः समीरणस्तेनोद्वेल्लितानि । बन्धनानि तेभ्यश्च्युता याः शेफालिकाः ताभिः विरचितः कुसुमप्रकरो यस्मिन् । ईषदालोहिता ये मुग्धवधूनां कपोलाः त इव पाटलानि यानि लोध्रकुसुमानि तैर्विजितं श्यामलतायाः सौभाग्यं शोभा यस्मिन् । उन्मीलितैर्विकसितैः कुसुमैः सुरभि च तत् शीतलं च] ।

प्रालेयेति । प्रालेयं हिमम् । (तेन मिश्रः) यः मकरन्दः पुष्परसः । [तेन करालाः कोशा येषां तैः ।] करालो दन्तुरे तुङ्गे इत्यमरः । कोशो मध्यम् । मुकुलं कलिका । अलयो भ्रमराः । [पुष्पैः समं निपतिता अलयः । अर्कस्य भानोः अंशुभिः भिन्ना ये मुकुलास्तेषां उदराणि तत्सम्बन्धिना सान्द्रगन्धेन

(दोनों घूमते हैं)

कञ्चुकी—(सामने देखकर, चारों ओर गन्ध सूँघकर) महाराज, देखिये, देखिये। यह आपके सामने बालोद्यान रहा, जिसमें ओस के कणों से शीतल वायु द्वारा हिलाये गये वृन्तों से गिरे हुए शेफालिका-पुष्पों ने पुष्पों की राशि लगा दी है, जिसमें कुछ लाल भोली वधू के कपोल के समान लाल लोध्र-पुष्पों ने श्याम-लता के सौन्दर्य को जीत लिया है, जो खिले हुए बकुल और कुन्द के पुष्पों से सुगन्धित एवं शीतल है और जो प्रभात काल में सुन्दर प्रतीत हो रहा है। महाराज इसे देखें। क्योंकि—

रात्रि में खिले हुए, हिम-कण मिश्रित पुष्परस से विषम मध्य-भाग वाले सुमनों के साथ गिरे हुए भौंरे सूर्य की किरणों से खिली हुई कलियों के अन्तर्भाग की तीव्र गन्ध से सूचित किये गये कमलों पर पड़ रहे हैं ॥६॥

राजा—(चारों ओर देखकर) विनयन्धर, यहाँ प्रभात में यह और भी सुन्दर है। देखो—

खिलना प्रारम्भ होने पर फैली हुई पखुड़ियों के छोर रूपी झरोखों में से होकर अन्दर प्रविष्ट सूर्य की किरणों से छुये जाकर जगे हुए भौंरे, जिनका अङ्गराग तीव्र गन्ध से कुछ-कुछ प्रकट हो रहा है।, अपनी स्त्रियों के साथ खिली हुई कमलिनी के मध्य-भाग रूपी शय्याओं को राजाओं के समान—(पुष्पों का) विकास प्रारम्भ होने पर फैली हुई पंखुड़ियों के छोरों के समान

संसूचितानि] कमलानि पतन्ति गच्छन्ति। [पततेः गत्यर्थत्वात्सकर्मकत्वम्] ॥६॥

[अमुष्मिन्नुद्याने]। उषसि प्रभाते।

जृम्भति। जृम्भारम्भो विकासोपक्रम इत्यर्थः। [जृम्भारम्भेण प्रवितता ये दलानामुपान्ताः ते एव जालानि पक्षे दलानामुपान्ते यानि जालानि गवाक्षास्तैः प्रविष्टैः भानोः किरणैः स्पृश्यमाना नृपतय इव विबुद्धाः। घनपरिमलश्चासौ स्तोकं लक्ष्यश्चाङ्गरागो येषाम् पक्षे घनपरिमलस्य चन्दन-गन्धस्य स्तोकेनांशेन लक्ष्यः यद्वा स्तोक लक्ष्यः अङ्गरागो येषाम्। एते द्विरेफाः विकचनलिनीगर्भ एव शय्या ताम्। पक्षे विकचनलिन्यो गर्भे यस्यास्तादृशीं शय्याम्। स्त्रीभिः सार्धं मुञ्चन्ति। दलोपान्त- पत्रसमीपम्। तदेव जाल-

स्त्रीभिः सार्धं घनपरिमलस्तोकलक्ष्यारङ्गागा ।
मुञ्चन्त्येते विकचनलिनीगर्भशय्यां द्विरेफाः ॥७॥

कञ्चुकी—देव, नन्वेषा देवी भानुमती सुवदनया तरलिकया च पर्युपास्यमाना तिष्ठति । तदुपसर्पतु देवः ।

राजा—(दृष्ट्वा) आर्य विनयन्धर, गच्छ त्वं साङ्ग्रामिकं मे रथमुपकल्पयितुम् । अहमप्येष देवीं दृष्ट्वानुपदमागत एव ।

कञ्चुकी—एष कृतो देवादेशः । (इति निष्क्रान्तः)

सखी—प्रियसखि, अपि स्मृतं त्वया । [पिअसहि, अवि सुमरिदं तुए ।]

भानुमती—सखि, स्मृतम् । अद्य किल प्रमदवने आसीनाया ममाग्रतः केनाप्यतिशयितदिव्यरूपेण नकुलेनाहिशतं व्यापादितम् । [सहि सुमिरिदम् । अज्ज किल पमदवणे आसीणाए मम अग्गदो केणावि अतिसइददिव्वरूविणा णउलेण अहिसदं वावादिदम् ।]

उभे—(अपवार्य । आत्मगतम्) शान्तं पापम् । प्रतिहतममङ्गलम् । (प्रकाशम्) ततस्ततः । सन्तं पावम् । पडिहृद अमङ्गलम् । तदो तदो ।

भानुमती—अतिसंतापोपगृहीतहृदयया विस्मृतं मया । तत्पुनरपि स्मृत्वा कथयिष्ये [अदिसंदावोवग्गहिदहिअआए मए विसुमरिदं । ता पुणो वि सुमरिअ कहइस्सम् ।]

राजा—अहो, देवी भानुमति, सुवदनातरलिकाभ्यां सह किमपि मन्त्रयमाणा तिष्ठति । भवतु । अनेन लताजालेनान्तरितः शृणोमि तावदासां विश्रब्धालापम् । (इति तथा स्थितः) ।

सखी—सखि, अलं सन्तापेन । कथयतु प्रियसखी । [सहि, अलंसदावेण । कहेदु पिअसही ।]

मानायो गवाक्षं वा । भातीति भाः । अन्येभ्योऽपि दृश्यते इति क्विप् । पुल्लिङ्गोऽप्ययम् इत्यमरटीकायां श्रीकरः । यद्वा । भामिरिति पक्षे पुल्लिङ्गोऽप्ययं भा. शब्दः । प्रभायामपि भाः शब्दः सान्त. पुंलिङ्ग एव च । शब्दभेदादित्यवधेयमिह सहृदयेन । भानोर्भाभिस्तेजोभिः स्पृश्यमाना इति सम्बन्धः । गन्धमात्रे परिमलो विमर्दोत्थेऽपि दृश्यते । इति धरणिः स्तोकमल्पम् । द्विरेफो भ्रमरः ।

गवाक्षों में से होकर अन्दर प्रविष्ट सूर्य की किरणों से छूने पर जगे हुए, और चन्दन के स्वल्पांश से दिखलाई देते हुए अङ्गराग वाले राजा अपनी स्त्रियों के साथ खिली हुई कमलिनियों को मध्य में धारण करने वाली शय्या को जैसे— छोड़ रहे हैं ॥७॥

कञ्चुकी—महाराज, सुवदना और तरलिका द्वारा सेवा की जाती हुई यह देवी भानुमती बैठी है। इसलिए महाराज पास जायें।

राजा—(देखकर आर्य विनयन्धर, तुम मेरा युद्ध का रथ तैयार कराने जाओ। मैं भी देवी से मिलकर बस यह पीछे-पीछे आया।

कञ्चुकी—महाराज का आदेश यह किया। (बाहर चला गया)।

सखी—प्रियसखी, क्या आपको याद आया ?

भानुमती—सखी, याद आया। आज मेरे प्रमदवन में बैठी हुई के सामने किसी अत्यधिक दिव्यरूपधारी नकुल ने सौ सर्प मार डाले।

दोनों—(एक ओर को होकर स्वगत) पाप शान्त हो। अमङ्गल का नाश हो। (प्रकट में) उसके बाद ?

भानुमती—अत्यधिक सन्ताप से व्याकुल हृदय वाली मैं (फिर) भूल गई। इसलिए फिर से याद करके कहूँगी।

राजा—आहा! देवी भानुमती, सुवदना और तरलिका के साथ कुछ बातें कर रही है। अच्छा, तब इस लता-गुल्म से छिपकर इनके स्वैर-आलाप को सुनूंगा। (वैसा करके खड़ा होता है)।

सखी—सखी, सन्ताप न करो। प्रियसखी (आगे) कहो।

नृपतिपक्षेऽपि सर्वं योज्यम् ॥७॥

साङ्ग्रामिकं युद्धे साधु। ममाग्रत एव दिव्यरूपिणा। अत्र किल निश्चये। दिव्यरूपिणा सुन्दरेण। नकुलो नेउर इति प्रसिद्धो जन्तुः पाण्डवश्च। अहिशतं सर्पशतम्। अथ च शत्रुशतम्। अत्रापवार्य निभृतम्। प्रकाशमिति। यत्तु सर्वजनश्राव्यं प्रकाशं तन्निगद्यते। इति भरतः। ततस्ततः। मन्त्रयमाणा मन्त्रं कुर्वती।

राजा—किं नु खल्वस्याः सन्तापकारणम् । अथवानामन्त्र्य मामियमद्य वासभवनान्निष्क्रान्तेति समर्थित एवास्या मया कोपः । अयि भानुमति, अविषयः खलु दुर्योधनो भवत्याः कोपस्य—

किं कण्ठे शिथिलीकृतो भुजलतापाशः प्रमादान्मया
निद्राच्छेदविवर्तनेष्वभिमुखं नाद्यासि सम्भाविता ।
अन्यस्त्रीजनसंकथालघुरहं स्वप्ने त्वया लक्षितो
दोषं पश्यसि कं प्रिये परिजनोपालम्भयोग्ये मयि ॥८॥

(विचिन्त्य) अथवा—

इयमस्मदुपाश्रयैकचित्ता मनसा प्रेमनिबद्धमत्सरेण ।
नियतं कुपितातिवल्लभत्वात्स्वयमुत्प्रेक्ष्य ममापराधलेशम् ॥९॥

तथापि शृणुमस्तावत्किं नु वक्ष्यतीति ।

भानुमती—हला, अहं ततस्तस्यातिशयितदिव्यरूपिणो नकुलस्य दर्शनेनोत्सुका जाता । [हला, अहं तदो तस्स अदिसइददिव्वरूविणो णउलस्स दंसणेण उक्कुआ जादा ।]

राजा—(सवैलक्ष्यम्) किं नामातिशयितदिव्यरूपिणो नकुलस्य दर्शनेनोत्सुका जाता । तत्किमनया पापया माद्रीसुतानुरक्तया वयमेवं विप्रलब्धाः । (सोत्प्रेक्षम्) । इयमस्मद् इति पठित्वा) मूढ दुर्योधन, कुलटाविप्रलभ्यमानमात्मानं बहुमन्यमानो-

---

किं कण्ठ इति [अद्य मया प्रमादात् तव कण्ठे भुज० शिथिलीकृतः किम्] । निद्रायाश्छेदोऽवसानं तत्र विवर्तनं पार्श्वपरिवर्तनम् । [अद्य गतायां रात्रावित्यर्थः निद्राच्छेद विवर्तनेषु अभिमुखं अभिमुखी भूत्वा इत्यर्थः । मया त्वं न सम्भाविता समानिता किम् ।] संभाविता संमुखीकृता । [अन्यस्त्रीजनेन सह या] संकथा आलापः [तया लघु क्षुद्रवृत्तिः अहं त्वया लक्षितः किम् । [उपालम्भो विसंवादः । [परिजन इवोपालम्भयोग्ये मयि यद्वा परिजनस्योपालम्भस्तद्योग्ये । कृतापराधोऽहं परिजनवन्निर्भर्त्स्यो न त्वन्यथा मयि कोपः कार्यं इत्यर्थः] ॥८॥

इयमिति । [अस्माकमुपाश्रयः सान्निध्यम् अस्मदु० स एव एकः प्रधानः तत्र

राजा—इसके सन्ताप का क्या कारण हो सकता है ? अथवा वह मुझसे बिना कहे ही वास-भवन से निकल आई है, इससे मैं इसके कोप को समझ गया। अरी भानुमति, दुर्योधन आपके कोप का पात्र नहीं है।

क्या लापरवाही के कारण मैंने कण्ठ में भुजारूपी लता के पाश को शिथिल किया है ? क्या मैंने निद्रा भङ्ग में करवट बदलने पर तुम्हारी ओर मुख करके आज तुम्हारा आदर नहीं किया है ? क्या तुमने स्वप्न में मुझे अन्य स्त्री के साथ आलाप के कारण क्षुद्रवृत्ति देख लिया है ? प्रिय, सेवक के समान भर्त्सना योग्य मुझ में क्या दोष देख रही हो ॥८॥

(सोचकर) अथवा—

एकमात्र हम में आश्रित चित्त वाली यह अवश्य ही अपने मन से, जिसमें द्वेष उत्पन्न हो गया है, अतिप्रिय होने के कारण मेरे किसी तनिक से अपराध की कल्पना करके रुष्ट हो गयी है ॥९॥

तो भी सुनेंगे कि यह क्या कहेगी।

भानुमती—सखी, तब मैं उस अतिशय दिव्य रूप वाले नकुल के दर्शन से उत्कण्ठित हो गई।

राजा—(खिसियाकर) क्या अतिशय दिव्य रूप वाले नकुल के दर्शन से उत्कण्ठित हो गई है ? तो क्या माद्री के पुत्र पर आसक्त हुई इस पापिनी ने हमें इस प्रकार धोखा दिया है ? सोचते हुए—('इयमस्मद्' इत्यादि २/६ का फिर पाठ करके) मूर्ख दुर्योधन, पुंश्चली द्वारा वञ्चित स्वयं को बहुत मानने वाला तू

चित्तं यस्याः सा तथोक्ता। इयं प्रेमनिबद्धमत्सरेण मनसा मम अपराधलेशं स्वयमुत्प्रेक्ष्य अतिवल्लभत्वात्। नियतं कुपिता इत्यन्वयः]। उपाश्रयः संश्रयः। तद्गतेति यावत्। [मम सान्निध्यमेव वाञ्छन्तीत्यर्थः।] मनसा कारणभूतेनाऽस्मदुपाश्रयैकचित्तेत्यन्वय.। निबद्धं निरस्तम्। [प्रेम्णा निबद्धो मत्सरोऽन्यस्त्रीविषयको यस्मिन्। मत्सरोऽन्यशुभद्वेषः इत्यमर.]। स्वयमुत्प्रेक्ष्य असन्तमपि तर्कयित्वा] ॥९॥

कुलटया वेश्यमानया वृथा प्रेमदर्शनेन प्रतार्यमाणम्। माद्रीसुतो नकुलः॥ [विप्रलब्धा वञ्चिता।] विप्रलम्भो विसंवादः इत्यमर.। कुलटा बन्धकीत्वरी

ऽधुना किं वक्ष्यसि । ('किं कण्ठे' इत्यादि पठित्वा । दिशोऽवलोक्य) अहो, एतदर्थमेवास्याः प्रातरेव विविक्तस्थानाभिलाषः सखीजन संकथासु च पक्षपातः। दुर्योधनस्तु मोहादविज्ञातबन्धकीहृदयसारः क्वापि परिभ्रान्तः । आः पापे मत्परिग्रहपांसुले—

तद्भीरुत्वं तव मम पुरः साहसानीदृशानि
श्लाघा सास्मद्वपुषि विनयव्युत्क्रमेऽप्येष रागः ।
तच्चौदार्यं मयि जडमतौ चापले कोऽपि पन्थाः
ख्याते तस्मिन्वितमसि कुले जन्म कौलीनमेतत् ॥१०॥

सखी—ततस्ततः । [तदो तदो ।]

भानुमती—ततः उज्झित्वा तदासनस्थानं लतामण्डपं प्रविष्टा । ततः सोऽपि मामनुसरन्नेव लतामण्डपं प्रविष्टः । [तदो उज्झिअ त आसणट्ठाणं लदामण्डवं पविट्ठा । तदो सोवि मं अणुसरन्तो एव्व लदामण्डवं पविट्ठो ।]

राजा—अहो कुलटोचितमस्याः पापाया अशालीनत्वम् ।

यस्मिंश्चिरप्रणयनिर्भरबद्धभावा-
मावेदितो रहसि मत्सुरतोपभोगः ।
तत्रैव दुश्चरितमद्य निवेदयन्ती
ह्रीणाऽसि पापहृदये न सखीजनेऽस्मिन् ॥११॥

इत्यमरः । [विविक्त् विजनम् ।] विविक्तौ पूतविजनौ इत्यमरः । [पक्षपात आदरः । मोहाद्यथार्थाज्ञानात् ।] बन्धकी वेश्या । सारः स्थैर्यम् [यथार्थ्य वा] । परिग्रहोऽत्र कलत्रम् । तत्र पांशुला असती ।

तद्भीरुत्वमिति । [मम पुरतः तव तत् तथा दर्शितं भीरुत्वम् । परोक्षे तु] ईदृशानि परपुरुषगमनरूपाणि [साहसानि] । [विनयस्य पातिव्रत्यरूपस्य] व्युत्क्रमोऽतिक्रमः । [तत्र एष] रागोऽनुरागः । [मयि जडमतौ तत् तथा प्रदर्शितम्] औदार्यं दाक्षिण्यम् ।] चापले चाञ्चल्ये । तव कोऽपि पन्थाः किमपि वर्त्म । [प्रवृत्तिरित्यर्थः ।] सर्वत्र तवेत्यन्वयः । [तस्मिन् ख्याते वितमसि निष्कलंके

अब क्या कहेगा ? (कि कण्ठेशिथिलीकृत 'इत्यादि २।८ का पाठ करके चारों ओर देखकर) अहो ! इसलिए इसकी प्रातः ही एकान्त स्थान की अभिलाषा और सखियों के साथ स्वैर-आलाप में प्रेम हुआ है। दुर्योधन तो मोह के कारण कुटला (व्यभिचारिणी) के हृदय की वास्तविकता को न जानने के कारण किसी धोखे में ही रहा। ओ पापिनी, मेरे कलत्र को कलङ्कित करने वाली—

(कहाँ) मेरे सामने तेरी वह भीरुता, (और कहाँ तेरे) ऐसे साहसपूर्ण अनुचित कर्म ! (कहाँ) हमारे रूप (शरीर) की (वह) प्रशंसा, और (कहाँ) मर्यादा के उल्लङ्घन के प्रति (यह) आसक्ति ! (कहाँ) मुझ मन्दबुद्धि के प्रति (तेरी) वह उदारता, (और कहाँ) चञ्चलता का (यह) विलक्षण मार्ग ! (कहाँ) उस विशुद्ध प्रसिद्ध कुल में जन्म, (और कहाँ) यह निन्दनीय कर्म ॥ १०॥

सखी—उसके बाद ?

भानुमती—तब मैं उस बैठने के स्थान को छोड़कर लता-मण्डप के अन्दर चली गई। तब वह भी मेरे पीछे-पीछे आता हुआ लता-मण्डप में ही घुस गया।

राजा—ओह ! इस पापिनी की कैसी व्यभिचारिणियों जैसी निर्लज्जता है।

हे पापपूर्ण हृदय वाली, जिन सखियों से तूने एकान्त में मेरे सुरत के उपभोग का लम्बे प्रेम के कारण बड़े चाव से वर्णन किया था, आज उन्हीं इन (सखियों) से अपने दुराचार को बतलाती हुई तू लज्जित नहीं होती ॥११॥

कुले तव [एतत्] कौलीनमपवादः । कौलीनं पशुभिर्युद्धे कुलीनत्वापवादयोः । इति विश्वः ॥१०॥

ततः सोऽपि मामनुरुध्यमानस्तमेव लतामण्डपं प्रविष्टः । अशालीनत्वं निर्लज्जता ।

यस्मिन्निति ॥ हे पापहृदये यस्मिन्सखीजने चिरं प्रणयेन चिरप्रणयेन वा निर्भरम् अतिमात्रं यथा तथा बद्धो भावो यस्मिन्कर्मणि तद्यथा तथा मत्सुरतोपभोगः रहसि आवेदितः तत्रैव अस्मिन् सखीजने अद्य दुश्चरितं निवेदयन्ती न ह्रीणा असि ।] प्रणयः प्रेम्णि विस्रम्भे इति विश्वः । भावोऽभिप्रायः रहस्येकान्ते । ह्रीणा लज्जावती ॥ ११॥

उभे—ततस्ततः। [तदो तदो]

भानुमती—ततस्तेन सगर्वं प्रसारितकरेणापहृतं मे स्तनांशुकम्। [तदो तेण सगव्वं पसारिअकरेण अवहरीअं मे त्थणसुअम।]

राजा—(विचिन्त्य)। सगर्वं प्रसारितकरेणापहृतं मे स्तनांशुकम्। (सक्रोधम्) अलमतः परं श्रुत्वा। भवतु तावत्तस्य परवनितास्कन्दनप्रगल्भस्य माद्रीसुतहतकस्य जीवितमपहरामि। (किंचिद् गत्वा। विचिन्त्य)। अथवा इयमेव तावत्पापशीला प्रथममनुशासनीया। (इति निवर्तते)।

उभे—ततस्ततः। [तदो तदो]

भानुमती—ततोऽहमार्यपुत्रस्य प्रभातमङ्गलतूर्यरवमिश्रेण वारविलासिनी-सङ्गीतशब्देन प्रतिबोधितास्मि। [तदो अहं अज्जउत्तस्स पभादमङ्गलतूररव-मिस्सेण वारविलासिणीसङ्गीदसद्देण पडिबोधिदह्मि।]

राजा—(सवितर्कम्) किं नु प्रतिबोधितास्मीति स्वप्नदर्शनमनया वर्णितं भवेत्। (विचिन्त्य) भवतु सखीवचनाद्व्यक्तिर्भविष्यति।

(उभे सविषादमन्योन्यं पश्यतः)।

सुवदना—यत्किमप्यत्राप्रत्याहितं तद्भागीरथीप्रमुखाणां नदीनां सलिलेनाप-ह्रियताम्। भगवतां ब्राह्मणानामप्याशिषा आहुतिहुतेन प्रज्वलितेन भगवता हुताशनेन च नश्यतु। (जं किं वि एत्थ अच्चाहिदं तं भाईरहीप्पमुहाणं णईण सलिलेण अवहारीअदु। भअवदाणं ब्रह्मणाणं वि आसीसाए आहुदिहुदेण पज्जलि-देण भअवदा हुदासणेण अ णस्सदु।)

राजा—अलं विकल्पेन स्वप्नदर्शनमेवैतदनया वर्णितम् मया पुनर्मन्द-धियाऽन्यथैव संभावितम्।

दिष्ट्यार्धश्रुतविप्रलम्भजनितक्रोधादहं नो गतो
दिष्ट्या नो परुषं रुषार्धकथने किञ्चिन्मया व्याहृतम्।

ततस्तेन सप्रगल्भप्रसारितकरेण सर्वगर्वप्रसारितकरेण वापहृतं मे स्तनांशुकम्। अवस्कन्दनमवस्कन्दः। जीवितं जीवनम्। अत्र—आर्यपुत्रेति संबोध्य. पतिः पत्नीजनेन तु। इति भरत.। [प्रभाते यानि मङ्गलानितूर्याणि तेषां रवेण मिश्रः

दोनों—उसके बाद ?

भानुमती—तब उसने धृष्टता के साथ हाथ बढ़ाकर मेरी चोली खींच ली।

राजा—(सोचते हुये) गर्व से हाथ बढ़ाकर मेरी चोली खींच ली ? (क्रोध से) अब आगे नहीं सुना जाता। अच्छा तो मैं दूसरे की स्त्री को दूषित करने में ढीठ बने उस नीच माद्री के पुत्र के प्राण लिये लेता हूँ। (कुछ दूर जाकर और सोचकर) या पहले इस पापिनी को ही दण्ड देना चाहिये। (लौट पड़ता है)।

दोनों—उसके बाद ?

भानुमती—इसके बाद आर्यपुत्र के (जगाने के लिए किये गये) प्रातः कालीन मङ्गलमय वाद्यों की ध्वनि से मिले हुए बाराङ्गनाओं के संगीत के शब्द ने मुझे जगा दिया।

राजा—(अनिश्चय से) 'मुझे जगा दिया' इस कथन से प्रतीत होता है कि इसने स्वप्न-दर्शन का वर्णन किया हो। (सोचकर) जो भी हो, सखी के वचन से स्पष्ट हो जायेगा।

(दोनों खेद सहित एक दूसरी को देखती है)

सुवदना—इसमें जो भी अनिष्ट है, उसे भागीरथी आदि नदियों के जल से दूर कर दिया जाय। भगवान् ब्राह्मणों के आशीर्वचन और आहुति दिये गये तथा प्रज्वलित अग्निदेव द्वारा नष्ट हो जाय।

राजा—अब सन्देह की आवश्यकता नहीं। इसने यह स्वप्न दर्शन का ही वर्णन किया था, लेकिन मुझ जड़मति ने कुछ अन्य ही समझ लिया—

सौभाग्य है कि मैं आधी सुनी बात से होने वाली वञ्चना से उत्पन्न आवेश से चला नहीं गया; सौभाग्य से मैंने बातचीत में ही क्रोध से कठोर

तेन।] वारविलासिनी वेश्या। अत्याहितं महाभीतिदं। अत्याहितं महाभीतिः इत्यमरः। आहुतिभिर्हुतस्तेन। हुता आहुतयो यस्मिन् तेन इति वा।] हुतोहुतिसुरभिर्गन्धिना ज्वलनेनापह्रियताम्। अत्र अत्याहितमप्रशस्तम।

दिष्ट्येति।[अर्धश्रुतेन यो विप्रलम्भो वञ्चना तेन जनितः य क्रोधस्तस्मात्। अहं न गत इति दिष्ट्या भाग्येनेति हर्षहेतुः दिष्ट्या समुपजोषं चेत्यानन्दे

मा प्रत्यायितु विमूढहृदयं दिष्टया कथान्त गता ।
मिथ्यादूषितयानया विरहितं दिष्टया न जात जगत् ॥१२॥

भानुमती—हला कथय किमत्र शुभसूचकम् ।

[हला, कहेहि किं एत्थ सुहसूअअम् ।]

सखी चेटी च—(अयोन्यमवलोक्य, अपवार्य) अत्र नास्ति स्तोकमपि शुभसूचकम् यद्यत्रालीकं कथयिष्ये तत्प्रियसख्या अपराधिनी भविष्यामि । स एव स्निग्धो जनो य. पृष्ट परुषमपि हित भणतितं (प्रकाशम्), सखि सर्वमेवैतदशुभ-निवेदनम् । तद्देवतानां प्रणामेन द्विजातिजनप्रतिग्रहेण शान्तयंताम् । न खलु-दंष्ट्रिणो नकुलस्य वा दर्शनमहिशतवधं च स्वप्ने प्रशंसन्ति विचक्षणाः । [एत्थ णत्थि त्थोअं वि सुहसूअअम् । जइ एत्थ अलीअ कहइस्स ता पिअसहीए अवराहिणी भविस्सम् । सो एव्व सिणिद्धो जणो जो पुच्छिदो परुसं वि हिदं भणादि । सही सव्वं एव्व एदं असुहणिवेदणम् । ता देवदाण पणामेम दुजादिजनपडिग्गहेण अ अन्तरीअदु । ण हु दाढिणो णउलस्स वा दंसणं अहिसदवहं अ सिविणये पस सन्ति विअक्खणा ।]

राजा—अवितथमाह सुवदना । नकुलेन पन्नगशतवध स्तनांशुकापहरणं च नियतमनिष्टोदर्कं तर्कयामि ।

पर्यायेण हि दृश्यन्ते स्वप्नाः कामं शुभाशुभाः ।
शतसंख्या पुनरियं सानुजं स्पृशतीव माम ॥१३॥

(वामाक्षिस्पन्दनं सूचयित्वा) आः, कथममपि नाम दुर्योधनस्यानिमित्तानि हृदय-

---

[इत्यमर. । दिष्ट्या हर्षेण । मो निषेधे । अमानोना निषेधवचनाः इति कोशात् । दिष्ट्या अर्थकथने कथामध्ये मया रुषा क्रोधेन परुषं कठिनं मो व्याहृयमवक्तम् । दिष्ट्या विमूढं यथार्थग्रहणासमर्थं हृदय यस्य तं मा] प्रत्याय-यितु बोधयितम् । कथा अन्तं गता समाप्ता । [दिष्टया जगत् मिथ्या दूषितया अनया विरहितं जातम्] ॥१२।

सखि कथय किमत्र प्रशस्तं किं चाशुभसूचकमिति । ततोऽलीक मन्त्र त्यः प्रियसख्या अपराधिन्यो भविष्यामः । सर्वमेवैतदत्यद्भुतनिवेदनम् । तथाप्यत्र

बात नहीं कही; हर्ष है कि मुझ मूर्ख को विश्वास दिलाने के लिये कथा समाप्ति पर पहुँच गई, सौभाग्य है कि मिथ्या दोषारोपण की गई इस (भानुमती) से जगत् मून्य नहीं हुआ ॥१२॥

भानुमती—सखी, बतलाओ इसमें क्या शुभ-सूचक है ?

सखी और चेटी—(परस्पर एक-दूसरे को देखकर, एक ओर को) इसमें तनिक भी शुभ-सूचक नहीं है। यदि इस विषय में झूठ कहूँगी तो प्रियसखी की अपराधिनी हो जाऊँगी। प्रेमी जन वही है जो पूछने पर कठोर होते हुए भी हितकर बात कहे (प्रकट में) सखी, यह तो सारा ही अशुभ-सूचक है। इसलिये देवों को प्रणाम करके और ब्राह्मणों को दान देकर अनिष्ट को रोका जाये। सयाने लोग स्वप्न में जंगली सूअर या नेवले के दर्शन और सौ साँपों के वध को अच्छा नहीं बतलाते।

राजा—सुवदना सत्य कह रही है। नकुल द्वारा सौ साँपों का वध और चोली का अपहरण निश्चित रूप से अशुभ फल वाला है, ऐसा मैं समझता हूँ। यद्यपि शुभ-अशुभ स्वप्न लोगों को समय-समय पर दीखते है लेकिन यह सौ संख्या तो, मानो, छोटे भाइयों समेत मुझ पर ही लग रही है ॥१३॥

बाईं आँख का फड़कना सूचित (करके) ओह ! अपशकुन मुझ दुर्योधन के भी हृदय को व्याकुल कर रहे हैं। (सभलकर) अथवा डरपोक लोगों के

यत्किमप्यत्याहित तद्देवतानां प्रणामेन द्विजातिनप्रतिग्रहेण चान्तरीक्रियताम्। न पुनर्दंष्ट्रिणो नकुलस्य वा दर्शनमहिशतव्यापादनं च स्वप्ने प्रशसन्ति विचक्षणाः। अत्र परुष निष्ठुरम्। अन्तरीक्रियता शाम्यताम्। इहाशीरलकारः। यदुक्तम् तत्रैव—आशीरिष्टार्थशासनम् इति। विचक्षणा पण्डिताः। अवितथं सत्यम्। पन्नगः सर्पं। [अरिष्टमशुभमुदर्कं उत्तरकाले यस्य।। उदर्कः उत्तरविशुद्धिः। पर्यायेणेति। [स्वप्नाः पर्यायेण शुभशुभाः दृश्यन्ते। कदाचित् शुभफलोत्पादकाः कदाचिदशुभपरिणामा इत्यर्थः।) अकामानुमतौ कामम् इत्यमरः। इयं शतसंख्या पूनार्मा स्पृशतीत्यन्वयः ॥१३॥

आवहन्तीत्यत्र रूढिच्युतदोषो नास्ति। विशेषगुणेपूद्धृतत्वादित्यवधेयम्। [प्रकम्पनेषु कम्पकारिष। का गणना तुच्छान्येतानीत्यर्थः।]

क्षोभमावेदयन्ति । (सावष्टम्भम्) अथवा भीरुजनहृदयप्रकम्पनेषु का गणना दुर्योधनस्यैवंविधेषु । गीतश्चायमर्थोऽङ्गिरसा—

ग्रहाणां चरितं स्वप्नोऽनिमित्तान्युपयाचितम् ।
फलन्ति काकतालीयं तेभ्यः प्राज्ञा न बिभ्यति ॥१४॥

तद्भानुमत्या स्त्रीस्वभावसुलभामलीकाशङ्कामपनयामि ।

भानुमती—हला सुवदने, पश्य तावदुदयगिरिशिखरान्तरितविमुक्तरथवरो विगलितसन्ध्यारागप्रसन्नदुरालोकमण्डलो जातो भगवान्दिवसनाथः । [हला सुवअणे पेक्ख दाव उदअगिरिसिहरन्तरिदविमुक्करहवरो विअलिअसंझाराअप्पसण्णदुरालोअमण्डलो जादो भअव दिवसणाहो ।]

सखी—सखि, रोषाणितकनकपत्रसदृशेन लताजालान्तरोपहितकिरणनिवहेन पिञ्जरितोद्यानभूमिभागो दुष्प्रेक्षणीयो भगवान्सहस्ररश्मिः संवृत्तः । तत्समयस्ते लोहितचन्दनकुसुमगर्भेणार्घ्येण पर्युपस्थातुम् । [सहि; रोसाणिदकणअपत्तसरिसे लदाजालन्तरापडिदकिरणनिवहेण पिञ्जरिदोज्जाणभूमिभाओ दुप्पेक्खणिज्जो भअवं सहस्सरस्सी संवुत्तो । ता समओ दे लोहिदचन्दणकुसुमगब्भेण अग्घेण पज्जुवठ्ठादुम् ।]

भानुमती—हञ्जे तरलिके, उपनय मेऽर्घ्यभाजनं यावद्भगवतः सहस्ररश्मेः सपर्यां निवर्तयामि । [हञ्जे तरलिए, उवणेहि मे अग्घभाअणं जाव भअवदो सहस्सरस्सिणो सवरिअं णिव्वठ्ठेमि ।]

चेटी—यद्देव्याज्ञापयति । (इति निष्क्रान्ता) । [जं देवी आणवेदी ।]

राजा—अयमेव साधुतरोऽवसरः प्रियासमीपमुपगन्तुम् ।

(इत्युपसर्पति)

ग्रहाणामिति । सूर्यादिदशा स्वप्नोऽनिमित्तमकस्वादौत्पातिकमुत्पातवातादिकमेते काकतालीयमतीमतोपनत यथा स्यादेवं फलन्ति । अतस्तेभ्य. प्राज्ञाः पण्डिता न बिभ्यति न भयं कुर्वन्तीत्यर्थ. । तेभ्य इति भीत्रार्थानां भयहेतुः इति पञ्चमी ॥१४॥

(अलीका चासौ आशंका च ताम् । विगलितो यः सन्ध्यारागस्तेन प्रसन्नमत

हृदय को कम्पित करने वाले इस प्रकार के (अपशकुन आदि) के विषय में दुर्योधन को क्या चिन्ता हो सकती है ? अङ्गिरा ने भी यही भाव छन्दोबद्ध किया है—

ग्रहों की गति, स्वप्न, अपशकुन और मनौती (उपयाचित) संयोग-वश ही फल देती हैं (सच्ची होती हैं) इसलिए बुद्धिमान् लोग उनसे डरते हैं ॥१४॥

तो अब भानुमती की स्त्री-स्वभाव-सुलभ मिथ्या आशङ्का को दूर करता हूँ।

भानुमती—सखी सुवदना, देखो तो—भगवान् सूर्य (दिन का पति), जिसका उदयपर्वत के शिखर से छिपा हुआ उत्तम रथ बाहर निकल आया है, सन्ध्या की लालिमा के नष्ट हो जाने से स्वच्छ एवं दुर्लक्ष्य बिम्ब वाला हो गया है।

सखी—सखी, तपे हुए स्वर्ण के पत्र-सदृश, लता समूह के अन्तर्भाग में पड़े हुए किरण-जाल से उद्यान के भूमि-भाग को पीला कर देने वाला भगवान् भास्कर (सहस्र किरणों वाला) दुरालोक हो गया है। इसलिए आपका लाल चन्दन और पुष्पों से मिश्रित पूजा-सामग्री से पूजा करने का समय हो गया है।

भानुमती—अरी तरलिका, पूजा-सामग्री का पात्र मेरे पास ला, जिससे कि मैं भगवान् सूर्य की पूजा कर सकूँ।

चेटी—जैसी देवी आज्ञा दें। (बाहर जाती है)।

राजा—प्रिया के समीप जाने का यही अच्छा अवसर है। (यह कहकर समीप जाता है)।

एष दुरालोकं मण्डलं यस्य ।] सखि रोसानितकनकपत्रसदृशेन लताजालान्तरवलितकिरणनिवहेन पिञ्जरितोद्यान भूमिभागः पूरितप्रतिज्ञ इव रिपुदुष्प्रेक्षणीयो जातो भगवान्सहस्रकिरण । तत्समयस्ते कुसुमचन्दनगर्भेणार्घेण पर्युपस्थातुम् । अत्र रोसानित निर्मलीकृतम् पिञ्जरितः कपिशीकृतः । पर्युपस्थातुं पूजयितुम् । अत्र सपर्या पूजा । देवि एतदर्घभाजनम् । भगवन्नम्बरसरोवरैकसहस्रपत्र पूर्वदिग्वधूमुखमण्डलकुङ्कुमविशेषक सकलभुवनाङ्गनदीपक इह स्वप्नदर्शने यत्किमप्यत्याहितं तद्भगवतः प्रणामेन कुशलपरिणामं मम सशतभ्रातृकस्यार्य-

चेटी—भट्टिनि, इदमर्घ्यभाजनम् । तन्निर्वर्त्यतां भगवतः सहस्ररश्मेः सपर्या । [भट्टिणि, एदं अग्घभाअणम् । ता णिव्वट्टीअदु भअवदो सहस्सरस्सिणो सवरिआ]

सखी—(विलोक्यात्मगतम्) कथं महाराजः समागतः । हन्त जातोऽस्या नियमभङ्गः [कहं महाराओ आअदो । हन्त जादो से णिअमभङ्गो ।]

(राजा उपसृत्य संज्ञया परिजनमुत्सार्य स्वयमेवार्घ्यपात्रं गृहीत्वा ददाति)

भानुमती—(दिनकराभिमुखी भूत्वा) भगवन् अम्बरमहासरएकसहस्रपत्र, पूर्वदिशावधूमुखमण्डलकुङ्कुमविशेषक, सकलभुवनैकरत्नप्रदीप, यदत्र स्वप्नदर्शने किमप्याहितं तद्भगवतः प्रणामेन सभ्रातृकस्यार्यपुत्रस्य कुशलपरिणामि भवतु । (अर्घ्यं दत्त्वा) हञ्जे तरलिके, उपनय मे कुसुमानि । अपरासामपि देवतानां सपर्यां निर्वर्तयामि । (हस्तौ प्रसारयति) । [भअव अम्बरमहासरेक्कसहस्सपत्त पुव्वदिसावहूमुहमण्डलकुङ्कुमविसेसअ सअलभुवणेक्करअणप्पदीव जं एत्थ सिविणअदंसणे किं वि अच्चाहिदं तं भअवदो पणामेण सभादुअस्स अज्जउत्तस्स कुसलपरिणामि होदु । हञ्जे तरलिके, उवणेहि मे कुसुमाइं । अवराणं वि देवदाणं सवरिअं णिव्वट्टेमि ।]

(राजा पुष्पाण्युपनयति । स्पर्शसुखमभिनीय च कुसुमानि भूमौ पातयति)

भानुमती—(सरोषम्) रहो प्रमादः परिजनस्य । (परिवृत्य दृष्ट्वा ससंभ्रमम्) कथमार्यपुत्रः । [अहो पमादे परिअणस्स कधं अज्जउत्तो ।]

राजा—देवि, अनिपुणः परिजनोऽयमेवंविधे सेवावकाशे । तत्प्रभवत्यत्रानुशासने देवी ।

भानुमती—(लज्जां नाटयति)

राजा—अयि प्रिये,

> विकिर धवलदीर्घापाङ्गसंसर्पि चक्षुः
> परिजनपथवर्तिन्यत्र किं संभ्रमेण ।

पुत्रस्य भवतु । अत्र सहस्रपत्रं कमलम् विशेषकस्तिलकः । अङ्गनं चत्वराजिरे पुंस्यमरः । अत्र णत्वविधायकसूत्राभावान्नकारान्तत्वमेवेत्यवधेयम् । अनिपुणो कुशलः ।

(प्रवेश करके)

चेटी—स्वामिनी, यह पूजा-पात्र रहा। अब भगवान् सूर्य की पूजा कर लीजिये।

सखी—(देखकर स्वगत) क्या महाराज आ गये? ओहो! (बस अब) इसका व्रत-भङ्ग हो ही गया।

(राजा पास जाकर संकेत से सेवकों को हटाकर स्वयं ही पूजा-पात्र लेकर देता है)

भानुमती—(सूर्य की ओर मुख करके) आकाश रूपी विशाल जलाशय के अद्वितीय सहस्र-दल (कमल), पूर्व दिशा रूपी वधू के मुखमण्डल के कुंकुम-तिलक सम्पूर्ण जगत् के अद्वितीय मणि-दीपक, भगवान्, इस स्वप्न-दर्शन में जो भी अनिष्ट हो, वह भगवान् के अभिवादन से भाइयों सहित आर्यपुत्र के लिये शुभ फल वाला हो जाय। (अर्घ्य देकर) अरी तरलिका, मुझे पुष्प दो, (जिससे कि) दूसरे देवताओं की भी पूजा कर सकूं। (दोनों हाथ फैलाती है)

(राजा पुष्प देता है और स्पर्श-सुख का नाटय करके पुष्पों को पृथ्वी पर गिरा देता है)

भानुमती—(नाराज होकर) ओह! सेवकों का कैसा प्रमाद है? (घूमकर और देखकर घबराहट के साथ) क्या? आर्यपुत्र!

राजा—देवी, यह सेवक इस प्रकार की सेवा के अवसर के लिये (बहुत) चतुर नहीं है। इसलिये देवी इसके लिए दण्ड देने में समर्थ हैं।

भानुमती—(लज्जा का नाटय करती है)।

राजा—प्यारी, घबराहट की क्या आवश्यकता है? धवल और विशाल नेत्र प्रान्त की ओर चलने वाली अपनी दृष्टि सेवक के मार्ग पर चलने

विकिरेत—हे देवि संभ्रमेण अलम्। परिजनस्य पन्थाः परिजनपथः। तत्र वर्तितुं शीलमस्य तस्मिन्परिजनपथवर्तिनि अत्र मयि। धवलश्चासौ दीर्घश्च यः अपाङ्गस्तेन ससर्पतीति तच्छीलं चक्षुः।' विकिर विक्षिपाऽपाङ्ग नेत्रप्रान्तः तत्र संसर्पि-गमनशीलम्। परिजनपथवर्तिनि सेवकमार्गस्थिते मयी। कि

स्मितमधुरमुदारं देवि मामालपोच्चैः ।
प्रभवति मम पाण्योरञ्जलिः सेवितुं त्वाम् ॥१५॥

भानुमती—आर्यपुत्र, अभ्यनुज्ञातायास्त्वयाऽस्ति मे कस्मिन्नपि नियमेऽभिलाषः । [अज्जउत्त, अब्भणुण्णादाए तुए अत्थि मे कस्सि वि णिअमे अहिलासो ।]

राजा—श्रुतविस्तार एवास्मि भवत्याः स्वप्नवृत्तान्तं प्रति । तदलमेवं प्रकृतिसुकुमारमात्मानं खेदयितुम् ।

भानुमती—आर्यपुत्र, अतिमात्रं मां शङ्का बाधते । तदनुमन्यतां मामार्यपुत्रः । [अज्जउत्त, अदिमेत्तं मे सङ्का बाहेदि । ता अणुमण्णदु मं अज्जउत्तो ।]

राजा—(सगर्वम्) देवी, अलमनया शङ्कया । पश्य—

किं नो व्याप्तदिशां प्रकम्पितभुवामक्षौहिणीनां फलं
किं द्रोणेन किमङ्गराजविशिखैरेवं यदि क्लाम्यसि ।
भीरु भ्रातृशतस्य मे भुजवनच्छायां सुखोपस्थिता
त्वं दुर्योधनकेसरीन्द्रगृहिणी शङ्कास्पदं किं तव ॥१६॥

भानुमती—आर्यपुत्र, न खलु किमपि माशङ्काकारणं युष्मासु सन्निहितेषु । किं त्वार्य पुत्रस्यैव मनोरथसंपत्तिमभिनन्दामि । [अज्जउत्त ण हु किं वि मे

संभ्रमेणोद्वेगेन । स्मितमधुरमुदारं मनोहरं च यथा स्यादेवं हे देवि मामालप ब्रूहि । मम पाण्योरञ्जलिः सेवितुं [त्वां प्रभवति । पाण्योञ्जलिरित्यत्रार्थपौनरुक्त्यं न देश्यम् । उत्कर्षोपालंकारेण तदुद्धारात् ॥१५॥

किं नो व्याप्तेति । [यदि त्वमेवं क्लाम्यसि तर्हि नः व्याप्ता दिशो याभिस्तासां, प्रकम्पिता भूर्याभिस्तासाम्, अक्षौहिणीनां किं फलम् तथा च द्रोणेन तत्पराक्रमेणेत्यर्थः । किं फलम् अङ्गानां राजा अङ्गराजः कर्णः तस्य विशिखैः बाणैः किं फलम् ।] अक्षौहिणी संख्याभेदः [अक्षौहिण्याः प्रसंख्याता रथानां द्विजसत्तमाः । संख्या गणिततत्त्वज्ञैः सहस्राण्येकविंशतिः ॥ शतान्युपरि चैवाष्टौ तथा भूयश्चसप्ततिः (२१८७०) । गजाना च परिमाणमेतदेव विनिर्दिशेत्

वाले इस (मुझ दुर्योधन) पर डालो। पर देवी, मुझ से मन्द हास से मधुर और उदारतापूर्ण वचन जोर से कहो। मेरे हाथों की अञ्जलि आपकी सेवा कर सकती है ॥११॥

भानुमती—आर्यपुत्र, आपकी अनुमती पाकर मुझे कोई व्रत लेने की अभिलाषा है।

राजा—आपके स्वप्न की घटना के विषय में मैंने विस्तार से सुन लिया है। इसलिये स्वभाव से कोमल अपने (शरीर) को इस प्रकार कष्ट देने से बस करो।

भानुमती—आर्यपुत्र, मुझे बहुत अधिक भय सता रहा है। इसलिये आर्यपुत्र मुझे अनुमती प्रदान करें।

राजा—(गर्व से) देवी, इस आशङ्का से बस करो। देखो, यदि तुम इस प्रकार दुःखी होगी तो—

दिशाओं में छा जाने वाली और पृथ्वी को कम्पित कर देने वाली हमारी अक्षौहिणी सेनाओं का क्या फल हुआ? (आचार्य) द्रोण से क्या लाभ हुआ? अंग देश के राजा (कर्ण) के बाणो का क्या लाभ हुआ? हे भयशीला, तुम मेरे सौ भाइयों की भुजा रूपी वृक्षों की छाया में सुखपूर्वक बैठी हुई, दुर्योधन रूपी सिंहराज की पत्नी हो; तुम्हें भय का कारण क्या हो सकता है ॥१६॥

भानुमती—आर्यपुत्र, तुम लोगों के रहते मेरे लिये कोई भी भय का कारण नहीं है। किन्तु मैं आर्यपुत्र की ही मनोरथ-सिद्धि की कामना कर रही हूँ।

ज्ञेयं शतसहस्रं तु सहस्राणि नवैव तु । नराणामपि पञ्चाशच्छतानि त्रीणि चानघाः ॥ पञ्चषष्टिसहस्राणि तथाश्वानां शतानि च। दशोत्तराणि षट् प्राहुर्यथावदिह संख्यया ॥ इति महाभारते । आदिपर्वणि अ० २ श्लो० २३-२६] किं द्रोणेनेत्यादौ फलमित्यनुषज्यते। अङ्गराजः कर्णः। क्लाम्यसि परिश्राम्यसि। हे भीरु। [मे भ्रातृशतस्य भुजा एव वनं तस्य छायां सुखेनोपस्थिता ।किं च दुर्योधनः। केसरीन्द्रः तस्य गृहिणी एव] ॥१६॥

खलु शब्दो निषेधे। दयिता कान्ता।

सङ्कालणं तुह्ये सु सण्णिहिदेसु । किं तु अज्ज उत्तस्स एव्व मणोरहसंपत्ति अहिणन्दामि ।]

राजा—अयि सुन्दरि, एतावन्त एव मनोरथा यदहं दयितया सङ्गतः स्वेच्छया विहरामीति । पश्य—

प्रेमाबद्धस्तिमितनयनापीयमानाब्जशोभं
लज्जायोगादविशदकथं मन्दमन्दस्मितं वा ।
वक्त्रेन्दुं ते नियममुषितालक्तकाग्राधरं वा
पातुं वाञ्छा परमसुलभं किं नु दुर्योधनस्य ॥१७॥

(नेपथ्ये महान् कलकलः । सर्वे आकर्णयन्ति)

भानुमती—(सभयं राजानं परिष्वज्य) परित्रायतां परित्रायतामार्यपुत्रः । [परित्ताअदु परित्ताअदु अज्जउत्तो ।]

राजा—(समन्तादवलोक्य) प्रिये, अलं संभ्रमेण । पश्य—

दिक्षु व्यूढाङ्घ्रिपाङ्गस्तृणजटिलचलत्पांशुदण्डोऽन्तरिक्षे
झाङ्कारी शर्करालः पथिषु विटपिनां स्कन्धकाषैः सधूमः ।
प्रासादानां निकुञ्जेष्वभिनवजलदोद्गारगम्भीरधीर-
श्चण्डारम्भः समीरो वहति परिदिशं भीरु किं संभ्रमेण ॥१८॥

सखी—महाराजः प्रविशत्विमं दारुपर्वतप्रासादम् । उद्वेगकारी खल्वयमुत्थितपरुषरजः कलुषीकृतनयन उन्मूलिततरुवरशब्दवित्रस्तमन्दुरापरिभ्रष्टवल्लभतुरङ्गमपर्याकुलीकृतजनपद्धतिर्भीषणः समीरणासारः । [महाराओ पविसदु एवं ।

प्रेमेति । एतादृशं वा तव वक्त्रेन्दुं पातुं दुर्योधनस्य किं वाञ्छा न । अपि तु वाञ्छैव । कीदृशम् । प्रेम्णाबद्धं संबद्धमत एव स्तिमितं निश्चलं यन्नयनं तेनापीयमानं यदब्जं तद्वच्छोभा यस्य तम् । लज्जासंबन्धादस्वच्छकथमत्यल्पहासं च । नियमान्मुषितः परिवासीभूतः अलक्तको यत्र । ताहृशोऽग्राधरो यत्र । परमतिशयेनासुलभं दुर्लभम् । अन्यतरुणानामिति शेषः ॥१७॥

दिक्ष्विति । हे भीरु किं संभ्रमेण भयेन । एतादृश. समीरो वायुः परिदिशं

राजा—अयि सुन्दरी, मेरे तो केवल यही मनोरथ है कि मै प्रिया के साथ मिलकर यथेच्छ विहार करूँ। देखो—

(मुझे) तुम्हारे चन्द्र सदृश मुख के, जो अपने प्रेमपूर्ण और निश्चल नेत्रों से कमलों की शोभा को पी रहा है, लज्जा के कारण, जिससे अस्पष्ट वचन निकल रहे हैं तथा जिस पर मन्द मुस्कान है और जिसमे अधर के अग्रभाग से क्षत के कारण याचक वञ्चित हो गया है, पान करने की इच्छा है। दुर्योधन के लिये अन्य कौन (वस्तु) दुर्लभ है ॥१७॥

(नेपथ्य में तीव्र कलकल ध्वनि होती है। सब सुनते है)

भानुमती—(भय से राजा का आलिङ्गन करके) आर्यपुत्र बचाइये, बचाइये।

राजा—(चारों ओर देखकर) प्यारी, घबराओ नही। देखो—

(यह) चारों ओर तीव्र वेग वाला वायु बह रहा है, जिसने विभिन्न दिशाओ में वृक्षो को बखेर दिया है; आकाश मे जिसने तिनकों से जटिल धूलि-स्तम्भ उठ रहा है, जो मार्गों में झाँय-झाँय करने वाला तथा कंकरिनों (छर्रों) से भरा है; जो वृक्षों की शाखाओं की (परस्पर) रगड़ से धूम से युक्त है और महलों के कुञ्जों में नूतन जलधर के गर्जन के समान गम्भीर और धीर (ध्वनि वाला) है। (इसलिये) हे भीरु, डरने की क्या बात है ॥१८॥

सखी—महाराज, इस दारुपर्वत के प्रसाद के अन्दर चलिये। यह वायु का तूफान बड़ा ही भीषण और उद्वेगजनक है, जिससे उठी हुई कर्कश धूलि से

प्रतिदिशं वहति यतः। कीदृशः। दिक्ष व्यूढ सबद्धमङ्घ्रिपस्य पादपस्याङ्गं [शाखादि] येन स तथा। अन्तरिक्षे व्योम्नि तृणेन जटिलो व्याप्तश्चलत्पांशुदण्डो दण्डाकारकधूलिर्यस्मात्स तथा। झाङ्कारः अव्यक्तशब्दस्तद्युक्तः पथिषु शर्करालः शर्करायुक्तः। सिध्मादित्वात् मत्वर्थीयो लच्प्रत्ययः। विटपिनां वृक्षाणां स्कन्धकषणैर्धूमसहितः। प्रासादानां धवलगृहाणां मध्येषु नवजलधरोद्गम्भीररवः प्रचण्डोपक्रमः। अङ्घ्रिश्चरणस्तेन पिबति जलादिकमित्यङ्घ्रिपः॥ पदङ्घ्रिश्चणोऽस्त्रियाम् इत्यमरः कषणं काषः। भावे घञ् ॥१८॥

दारुपव्वअप्पासादम् । उव्वेअकारी क्खु अअं उत्थिदपंसुसरअकलुसीकिदणअणो उन्मूलिअतरुवरसद्दवित्तत्थमन्दुरापरिब्भट्ठवल्लहतुलङ्गमपज्जाउलीकिदजणपद्धई भीषणो समीरणासारो ।]

राजा—(सहर्षम्) उपकारि खल्विदं वात्याचक्रं सुयोधनस्य । यस्य प्रसादात् प्रयत्नपरित्यक्तनियमया देव्या संपादितोऽस्मन्मनोरथः । कथमिति—

न्यस्ता न भ्रुकुटिर्न बाष्पसलिलैराच्छादिते लोचने
नीतं नाननमन्यतः सशपथं नाहं स्पृशन्वारितः ।
तन्व्या मग्नपयोधरं भयवशादाबद्धमालिङ्गितं
भङ्क्ताऽस्या नियमस्य भीषणमरुन्नायं वयस्यो मम ॥१९॥

तत्संपूर्णमनोरथस्य मे कामचारः संप्रति विहारेषु । तदितो दारुपर्वतप्रासादमेव गच्छामः ।

(सर्वे वात्याबाधां रूपयन्तो यत्नतः परिक्रामन्ति)

राजा—

कुरु घनोरु पदानि शनैः शनैरयि विमुञ्च गतिं परिवेपिनीम् ।
सुतनु बाहुलतोपरिबंधनं मम निपीडय गाढमुरःस्थलम् ॥२०॥

(प्रवेशं रूपयित्वा) प्रिये, अलब्धावकाशः समीरणः संवृतत्वाद्गर्भगृहस्य । विस्रब्धमुन्मीलय चक्षुरुन्मृष्टरेणुनिकरम् ।

अत्र दारुपर्वतः काष्ठरचनाभेदः पर्वताकारः । यद्वा दारुपर्वत इति क्रीडापर्वतनाम् । स्खलित इतस्ततो भ्रष्टः । वाजिशाला तु मन्दुरा इत्यमरः पद्धतिर्वर्त्म । चक्रं समूहः ।

न्यस्तेति । अयं भीषणमरुन्मम वयस्यो मित्रं न । अपि तु मित्रमेव । यतोऽस्या नियमस्य भङ्क्ता भञ्जकः । नियमभङ्गानेवाह—भ्रुकुटिर्न न्यस्ता न कृता न वा नेत्रजलेन नेत्रं छन्नम् । अन्यत्र मुखं न कृतम् । स्पृशन्नहं न सशपथं वारितः । यदि मां स्पृशसि तदैव ते शपथं इति न कृतमित्यर्थः । तन्व्येति सर्वत्रान्वीयते । मग्नपयोधरं संबद्धस्तनं यथा स्यात्तथा भयवशादालिङ्गतमा-

नेत्रों को व्याकुल कर दिया है और जिससे उखडे हुये बड़े वृक्षों के शब्द से डरकर अश्वशाला से छुटे हुये उत्तम घोड़ो से मनुष्यों के यातायात को अस्त-व्यस्त कर दिया है।

राजा—(हर्ष के साथ) यह वायु का तूफान सुयोधन के लिये हितकर ही है, जिसकी कृपा से बिना प्रयत्न ही व्रत छोड़ देने वाली देवी ने हमारी इच्छा पूरी कर दी है। क्योंकि—

इस कृशाङ्गी ने न भ्रूकुटि टेढी की, न आँसुओं से दोनो नेत्र ढके, न मुख दूसरी ओर किया, न स्पर्श करते हुये मुझे शपथपूर्वक रोका, (बल्कि) भय के कारण (मेरा ऐसा) आलिङ्गन किया कि (इसके) स्तन दूब (दब) गये। इसके व्रत को भङ्ग कर देने वाला यह भीषण वायु नही है, प्रत्युत मेरा सखा है ॥१६॥

इसलिये पूर्ण मनोरथ वाला मैं अब इच्छानुसार विहार कर सकता हूँ। तो यहाँ से दारुपर्वत के प्रासाद मे ही चलें।

(सब आँधी के कष्ट का नाटय करते हुए कठिनता से चलते है।)

राजा—

हे निबिड जङ्घाओ वाली, धीरे-धीरे पद रक्खो, लड़खड़ाती गति को छोड़ो। सुन्दरी, भुजा रूपी लता के ऊपर (कण्ठ मे) बन्धन डालकर मेरे वक्षःस्थल को जोर से दबाओ ॥२०॥

(प्रवेश करके) प्रिय, इस गर्भ-गृह के बन्द होने के कारण (यहाँ) आँधी को स्थान नही मिला है। (इसलिये) धूलि-समूह पोछी गई आँखे निडर होकर खोलो।

लिङ्गनमाबद्धं कृतम्। एतानि भयात्तया कृतानीति मरुत उपकारकतति भावः। यद्वा। अय भीषणमरुन्न। किं तु मम वयस्य इति योजना। मैत्रं च तत्तत्क्रियाभिरुन्नेयम् ॥१६॥

कामचारः—स्वेच्छाचरणम्॥

कुर्विति। हे घनोरु निबिडोरुप्रदेशे। परिवेपिनीं कम्पवतीम्। हे सुतनु शोभनशरीरे। ममोरःस्थलं गाढं दृढं निपीडय। बाहुलतोपरिबन्धनं। यथा स्यात्तथैवम् ॥२०॥

[संवृतत्वाच्छन्नत्वात्]। गर्भगृहहं गर्भहर इति प्रसिद्धम्। [विस्रब्धं कृतं-

भानुमती—(सहर्षम्) दिष्ट्येह तावदुत्पातसमीरण
[दिट्ठिआ इह दाव उप्पादसमीरणो ण बा

सखी—महाराज, आरोहणसम्भ्रमनि. सह प्रियस
स्माविदानीं महाराज आसनवेदीं न भूषयति । [महा
स्सहं । पिअसहीए ऊरुजुअलम् । ता कीस दाणी म
भूसेदी ।]

राजा—(देवीमवलोक्य) भवति, अनल्पमेवापकृत

रेणुर्बाधां विधत्ते तनुरपि महती नेत्रयोरायतत्व
दुत्कम्पोऽल्पोऽपि पीनस्तनभरितमुर क्षि
ऊर्वोर्मन्देऽपि याते पृथुजघनभराद्वेपथुर्वर्धतेऽस्या
वात्या खेद मृगाक्ष्याः सुचिरमवयवैर्दत्तहस्त

(सर्वे उपविशन्ति)

राजा—तत्किमित्यनास्तीर्ण कठिनशिलातलमध्यास्तं

लोलांशुकस्य पवनाकुलितांशुकान्तं
त्वद्दृष्टिहारि मम लोचनबान्धवस्य
अध्यासितुं तव चिरं जघनस्थलस्य
पर्याप्तमेव करभोरु ममोरुयुग्मम् ॥२२॥

(प्रविश्य पटाक्षेपेण संभ्रान्त)

विप्रवासमिति क्रियाविशेषणम् । उन्मृष्टः अपसारितः रेणुनिकरः यस्मात् तच्चक्षुः ।] दिष्ट्येह तावदुत्पातमारुतो न बाधते । तत्किनिमित्तं···न भूषयति । [आरोहणस्य संभ्रमेण त्वरया नि.सहमसमथम् ।'

रेणुरिति नेत्रयोरायतत्वाद्दैर्घ्यात्तनुरप्यल्पोऽपि रेणुर्बाधां पीडां विधत्ते । अल्पोऽप्येष कम्पः । [क्षिप्तो हारो यस्मात्तद् । उरो वक्षःस्थल दुनोति पीडयति । भरितमिति तारकादित्वादितच् इति साधनीयम् । अन्यथा भृतमिति स्यादित्य- वधेयम् । ऊर्वोराधारभूतयोर्वेपथुः कम्प. मन्देऽप्यल्पेऽपि याते गमने सति वर्धते इत्यन्वयः ।' अतो हेतोर्वात्या मृगाक्ष्याः खेदं करोति । कीदृशः] अवयवैः शरीरावय-

भानुमती—(हर्ष के साथ) सौभाग्य से यहाँ उत्पात-वायु नहीं सता रही है।

सखी—महाराज, प्रियसखी की दोनों जङ्घाएं (ऊपर) चढ़ने की शीघ्रता के कारण अशक्त हो गई हैं। तो अब महाराज आसन-वेदिका (चबूतरे) को क्यों नहीं अलङ्कृत करते ?

राजा—(देवी को देखकर) भद्रे, आँधी के उत्थान ने तो बड़ा ही अपकार किया है। क्योंकि—

अल्प भी धूलि नेत्रों के विशाल होने से अधिक पीड़ा दे रही है; थोड़ा-सा भी कम्पन स्थूल स्तनों के भार वाले तथा हार पड़े हुये वक्षःस्थल को पीड़ित कर रहा है; धीरे-धीरे चलने पर भी स्थूल जघन (कटि) के भार के कारण इसकी जङ्घाओं में कम्पन बढ़ रहा है। (इस प्रकार) अवयवों का अवलम्बन पाई हुई वात्या मृग-नयनी को बहुत देर तक कष्ट दे रही है ॥२१॥

(सब बैठते हैं)

राजा—परन्तु महारानी नंगे ही कठोर शिलातल पर क्यों बैठ रही है?

करभ (हथेली का कलाई और छोटी अंगुली के बीच का भाग) के समान जङ्घाओं वाली वायु से चञ्चल पट के छोर वाला और तुम्हारी दृष्टि को हरने वाला मेरा यह उरु-युगल चञ्चल वस्त्र वाले और नेत्रों को प्रिय तुम्हारे जघन-स्थल के चिरकाल तक आश्रय लेने के लिये पर्याप्त है ॥२२॥

(पर्दा हटाकर प्रवेश करके घबराया हुआ)

यैर्नयनादिभिर्दत्तहस्तः कृतसाहित्य इत्यर्थः। उभाभ्यामेव पीडा देया इति भावः ॥२१॥

अनास्तीर्णं वस्त्रादिना अनाच्छादितम्।

लोलेति। हे करभोरु तव जघनस्थलस्याभ्यासितुं जघनस्थलस्याश्रयणाय ममोरुयुग्मं पर्याप्तमेव शक्तमेव। कीदृशस्य। [लोलांशुकस्य] चपलवस्त्रस्य। [मम लोचनबान्धवस्य] मदीयनेत्रमित्रस्य। कीदृशम्। वाताकुलितांशुकान्तम्। त्वदीयदृष्टिहरणशील च। जघनस्थलस्येत्यत्र शेषे षष्ठी इति सूत्रेण षष्ठी। करस्य करभो: बहिः। इत्यमरः ॥२२॥

इह लोलेत्यादिभग्नमित्यन्तेन छलंतन्निरुक्त। इष्टार्थयुक्तं यद्वाक्यं भापातेऽर्थ-

कञ्चुकी—देव, भग्नं भग्नम् ।

(सर्वे सातङ्कं पश्यन्ति)

राजा—किं नाम ?

कञ्चुकी—भग्नं भीमेन ।

राजा—आः किं प्रलपसि ?

भानुमती—आर्य, किमनर्थं मन्त्रयसे [अज्ज किं अणत्थं मन्तेसि ।]

कञ्चुकी—(संभयम्) ननु भग्नं भीमेन भवतः ।

राजा—धिक् प्रलापिन् वृद्धापसद, कोऽयमद्य ते व्यामोहः ।

कञ्चुकी—देव, न खलु कश्चिद् व्यामोहः । सत्यमेव ब्रवीमि ।

भग्नं भीमेन भवतो मरुता रथकेतनम् ।
पतितं किङ्किणीक्वाणबद्धाक्रन्दमिव क्षितौ ॥२३॥

राजा—बलवत्समीरणवेगात्कम्पिते भुवने भग्नः स्यन्दनकेतुः । तत्किमित्युद्धतं प्रलपसि भग्नं भग्नमिति ।

कञ्चुकी—देव, न किंचित् । किन्तु शमनार्थमस्यानिमित्तस्य विज्ञापयितव्योदेव इति स्वामिभक्तिर्मां मुखरयति ।

भानुमती—आर्यपुत्र, परिहार्यतामेतदनिमित्तं प्रसन्नब्राह्मणवेदानुघोषेण होमेन च । [अज्जउत्त पडिहरीअदु एदं अणिमित्तं पसण्णब्रह्मणवेआणुघोसेण होमेण अ ।]

राजा—(सावज्ञम्) ननु गच्छ । पुरोहितसुमित्राय निवेदय ।

कञ्चुकी—यदाज्ञापयति देवः । (इति निष्क्रान्तः) ।

(प्रविश्य)

प्रतीहारी—(सोद्वेगमुपसृत्य) जयतु जयतु महाराजः । महाराज, एषा खलु

समभीप्सितम् । वाक्यान्तरेण संयोगाच्छलोऽयमभिधीयते ॥ इति भरतः । किं नामेति । नाम प्रकाश्ये । किं तदिति प्रकाशयेत्यर्थः । आर्य किमनार्यं कथयसि ॥

भग्नमिति । भीमेन मरुता वायुना अथ च भीमसेनेन । मरुता वायुपुत्रेण मरुतेत्यत्र 'आत्मा वै जायते पुत्रः' इत्यभेदोपचाराद्वा तद्धितलोपाद्वा साधुतेत्यव-

कञ्चुकी—महाराज, तोड़ दिया, तोड़ दिया।

(सब भय से देखते हैं)

राजा—क्या हुआ ?

कञ्चुकी—भीम ने तोड़ दिया।

राजा—अरे ! क्या बक रहा है ?

कञ्चुकी—(भयपूर्वक) निश्चित ही भीम ने आपका तोड़ दिया।

राजा—धिक्कार ! वकवादी, अधम वृद्ध, आज तुझे यह क्या बुद्धि विभ्रम हो गया है ?

कञ्चुकी—महाराज, (मुझे) कोई बुद्धि-विभ्रम नहीं हुआ है। बिल्कुल सच कह रहा हूँ—

भयङ्कर वायु से तोड़ दी गई आपके रथ के ध्वजा, घुघुरुओं के शब्द से चीत्कार करती हुई, मानो, पृथ्वी पर गिर पड़ी है।

राजा—तीव्र वायु के वेग से जगत् से कंप जाने पर रथ की ध्वजा टूट गई तो क्या कारण है कि इस तरह जोर-जोर से बक रहे हो—'तोड़ दिया, तोड़ दिया।'

कञ्चुकी—महाराज, कुछ भी नहीं। किन्तु इस अनिष्ट के शमन के लिये महाराज को सूचित कर देना चाहिये, यह स्वामि-भक्ति ही मुझे कहने के लिये विवश कर रही है।

भानुमती—आर्यपुत्र, प्रसन्न हुये ब्राह्मण के वेद-पाठ और यज्ञ से इस अपशकुन का निवारण करा दीजिये।

राजा—(तिरस्कारपूर्वक) अच्छा जाओ। पुरोहित सुमित्रा से कह दो।

कञ्चुकी—जैसी महाराज की आज्ञा (बाहर चला जाता है)।

(प्रवेश करके)

प्रतीहारी—(घबराई हुई समीप जाकर) जय हो, महाराज की जय हो।

वधेयम्। केतनं चिह्नम् किङ्किणीक्वाणः क्षुद्रघण्टिकाशब्दः। [तेन आबद्धः; आक्रन्दो येन] ॥२२॥

स्यन्दनो रथस्तस्य केतु. चिह्नम्। [अनिमित्तमपशकुन.]। आर्यपुत्र अन्तरीयतामेतत्प्रसन्नब्राह्मणवेदघोषेण। [पुरोहितेति]। अत्र चाणक्यः—वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो

जामातु. सिन्धुराजस्य माता दुःशला च प्रतीहारभूमौ तिष्ठति । [जअदु जअदु महाराओ । महाराअ, एसा क्खु जामादुणो सिन्धुराअस्स मादा दुस्सला अ पडिहारभूमीए चिट्ठदि ।]

राजा—(किंचिद्विचिन्त्यात्मगतम्) किं जयद्रथमाता दुःशला चेति । कच्चिदभिमन्युवधामर्षितैः पाण्डुपुत्रैर्न किंचिदत्याहितमाचेष्टितं भवेत् । प्रकाशम्) गच्छ । प्रवेशाय शीघ्रम् ।

प्रतीहारी—यन्महाराज, आज्ञापयति । (इति निष्क्रान्ता) । [जं महाराओ आणवेदि ।]

(ततः प्रविशति संभ्रान्ता जयद्रथमाता दुःशला च)

(उभे सास्रं दुर्योधनस्य पादयोः पतत.)

माता—परित्रायतां परित्रायतां कुमार. । [परित्ताअदु परित्ताअदु कुमालो ।]

(दुःशला रोदिति)

राजा—(ससंभ्रममुत्थाप्य) अम्ब, समाश्वसिहि समाश्वसिहि । किमत्याहितम् । अपि कुशलं समराङ्गणेष्वप्रतिरथस्य जयद्रथस्य ।

माता—जात, कुतः कुशलम् । [जाद कुदो कुसलम् ।]

राजा—कथमिव ।

माता—(साशङ्कम्) अद्य खलु पुत्रवधामर्षोद्दीपितेन गाण्डीविना अनस्तमिते दिवसनाथे तस्य वधः प्रतिज्ञातः । [अज्ज क्खु पुत्तवहामरिसुद्दीविदेण गण्डीविणा अणत्थमिदे दिअहणाहे तस्स वहो पडिण्णादो ।]

राजा—(सस्मितम्) इदं तदश्रुकारणमम्बाया दुःशलायाश्च । पुत्रशोकादुर्मनसस्य किरीटिनः प्रलापैरेवमवस्था । अहो मुग्धत्वमबलानाम् । अम्ब, कृत विषादेन । वत्से दुःशले, अलमश्रुपातेन । कुतश्चायं तस्य धनञ्जयस्य प्रभावो दुर्योधनबाहुपरिघरक्षितस्य महारथजयद्रथस्य विपत्तिमुत्पादयितुम् ।

माता—जात, ते हि पुत्रबन्धुवधामर्षोद्दीपितकोपानला अनपेक्षितशरीरा वीराः परिक्रामन्ति । [जाद दे हि पुत्तबन्धुवहामरिसुद्दीविदकोवाणला अणपेक्खिदसरीरा वीरा परिक्कामन्ति ।]

जपहोमपरायणः । आशीर्वादवचोयुक्त एष राजपुरोहितः ॥ इति ॥ अयं च

महाराज, जामाता सिन्धुराज की माता और दुःशला द्वार-भूमि पर उपस्थित हैं।

राजा—(कुछ सोचकर, स्वगत) क्या ? जयद्रथ की माता और दुःशला ? कहीं अभिमन्यु के वध से क्रुद्ध पाण्डु-पुत्रों ने कुछ अनर्थ तो नहीं कर दिया ? (प्रकट में) जाओ, शीघ्र अन्दर ले आओ।

प्रतीहारी—जैसी महाराज आज्ञा दें। (यह कहकर बाहर जाती है)। (तत्पश्चात् घबराई हुई जयद्रथ की माता और दुःशला प्रवेश करती हैं) दोनों आँसू भरकर दुर्योधन के पैरों में पड़ती हैं।

माता—बचाइये, कुमार बचाइये।

(दुःशला रोती है)

राजा—(जल्दी से उठाकर) माता जी, धैर्य रखिये, धैर्य रखिये। क्या अनर्थ हुआ ? अप्रतिम वीर जयद्रथ युद्ध-भूमि में कुशल तो है ?

माता—पुत्र कुशल कहाँ से ?

राजा—क्यों, क्या हुआ ?

माता—(आशङ्कापूर्वक) आज पुत्र के वध से उत्पन्न क्रोध से भड़के हुये गाण्डीवधारी (अर्जुन) ने सूर्य के छिपने से पहले ही उसके वध की प्रतिज्ञा की है।

राजा—(मुस्कराकर) तो माता जी और दुःशला के आँसुओं का कारण यह है। पुत्र के शोक से पागल हुये अर्जुन के प्रलाप से यह अवस्था है। ओह ! स्त्रियों में कितना भोलापन होता है ! माता जी, दुःख न कीजिए। प्रिय दुःशला, आँसू न गिराओ। दुर्योधन की भुजा रूपी परिघ से रक्षा किये गये महारथी जयद्रथ के लिये विपत्ति पैदा करने का सामर्थ्य अर्जुन में कहाँ है ?

माता—पुत्र, पुत्र और बन्धुओं के वध को न सहने से प्रज्वलित क्रोधाग्नि वाले वह (पाण्डव) वीर अपने शरीर की चिन्ता न करके घूम रहे हैं।

वेदविहितं कुर्याच्छान्तिकपौष्टिकम्। इत्यग्निपुराणम्। सिन्धुराजमाता। अत्र सिन्धुराजो जयद्रथः। [प्रतीहारभूमिद्वारम्]। [अमर्ष एषां संजातः इति अमर्षिताः तैः] अत्याहितमनर्थः। अप्रतिरथस्य अविद्यमानः प्रतिरथः यस्य। उन्मत्तस्य जातचित्तविभ्रमस्य। मुग्धत्वं विचारवैकल्यम्। दुर्योधनस्य बाहू परिघौ अर्गले इव ताभ्यां रक्षितस्य]।

राजा—(सोपहासम्) एवमेतत् । सर्वजनप्रसिद्धैवामर्षिता पाण्डवानाम् । पश्य—

हस्ताकृष्टविलोलकेशवसना दुःशासनेनाज्ञया
पाञ्चाली मम राजचक्रपुरतो गौर्गौरिति व्याहृता ।
तस्मिन्नेव स किं नु गाण्डिवधरो नासीत्पृथानन्दनो
यूनः क्षत्रियवंशजस्य कृतिनः क्रोधास्पदं किं न तत् ॥२४॥

माता—असमाप्तप्रतिज्ञाभारस्यात्मवधोऽस्य प्रतिज्ञातः । [असमत्तपडिण्णाभारस्स आप्पवहो से पडिण्णादो ।]

राजा—यद्येवमलमानन्दस्थानेऽपि ते विषादेन । ननु वक्तव्यमुत्सन्नः सानुजो युधिष्ठिर इति । अन्यच्च मातः, का शक्तिरस्ति धनञ्जयस्यान्यस्य वा कुरुशतपरिवारवर्धितमहिम्नः कृपकर्णद्रोणाश्वत्थामादिमहारथद्विगुणीकृतनिरावरणविक्रमस्य नामापि ग्रहीतुं ते तनयस्य । अयि सुतपराक्रमानभिज्ञे ।

धर्मात्मजं प्रति यमौ च कथैव नास्ति
मध्ये वृकोदरकिरीटभृतोर्बलेन ।
एकोऽपि विस्फुरितमण्डलचापचक्रं
कः सिन्धुराजमभिषेणयितुं समर्थः ॥२५॥

हस्ताकृष्टेति । [मम आज्ञया दुःशासनेन हस्तेन आकृष्टमत एव विलोलं केशाश्च वसनं च केशवसनं यस्याः सा हस्ताकृष्टविलोलकेशवसना पाञ्चाली राजचक्रपुरतः गौः गौः इति व्याहृता । व्याहृतेति णिजगर्भम् । तेन व्याहारितेत्यर्थः । राजवधूनां गौर्गौरित्यभिधानमतिहानिकरमिति समाचारः । तस्मिन्काले तता विस्तृता ज्या पतिञ्चिका यत्र तादृशं गाण्डिवं धनुर्यस्य सः । गाण्डीवमपि गाण्डिवम् इति शब्दभेदः । पृथानन्दनोऽर्जुन । [नासीत्किनु । अपि त्वासीदेव । क्षत्रियवंशोत्पन्नस्य तत्रापि यूनो यौवनशालिनः । न तु वार्धक्याद् गलितोत्साहस्य वीतशक्तेर्वा । तथाहि कृतिनः कृतहस्तस्य युद्धकलाप्रवीणस्येत्यर्थः ।] आस्पदं स्थानम् ॥२४॥

राजा—(उपहास के साथ) ऐसा ही है ! पाण्डवों की असहनशीलता सब लोगों में प्रसिद्ध ही है । देखा—

मेरी आज्ञा से दुःशासन ने हाथ से खींचे गये, (इसलिये) चञ्चल केशों और वस्त्र वाली पाञ्चाल-पुत्री (द्रौपदी) से राज-समूह के सामने 'गौ, गौ' यह कहलाया था। क्या गाण्डीवधारी वह पृथा का पुत्र वहाँ नहीं था ? क्या वह क्षत्रिय वंश में उत्पन्न शस्त्र-निपुण युवक के क्रोध का कारण नहीं था ॥२४॥

माता—प्रतिज्ञा का भार समाप्त न कर लेने पर उसने आत्मघात की प्रतिज्ञा की है ।

राजा—यदि ऐसा है तो आपको हर्ष के स्थान में भी दुःख नहीं करना चाहिये । तब तो कहना चाहिये कि अनुजों सहित युधिष्ठिर नष्ट हो गया । दूसरे माता जी, अर्जुन या अन्य किसी में क्या शक्ति है जो तुम्हारे पुत्र का, सौ कौरवों के समूह से जिसकी महिमा बढ गई है और कृप, द्रोण, अश्वत्थामा आदि महारथियों द्वारा जिनका दुर्धर्ष पराक्रम दुगुना हो गया है, नाम भी ले सके । अरी, पुत्र के पराक्रम से अपरिचित,

युधिष्ठिर और जोडियों (नकुल और सहदेव) का तो कहना ही नहीं, भीम और अर्जुन में से कौन-सा एक चमकते हुये वर्तुलाकार धनुर्मण्डल वाले सिन्धुराज पर बलपूर्वक आक्रमण करने में समर्थ है ॥२५॥

असमाप्तप्रतिज्ञाभारस्यात्मवधस्तेन व्यवसितः । [कुरूणां शतमेव परिवारः तेन वर्धितो महिमा यस्य । महारथः—एको दशसहस्राणि योधयेद्यस्तु धन्विनाम् शस्त्रशास्त्रप्रवीणश्च विज्ञेयः स महारथ ॥ इत्युक्तलक्षणैः द्विगुणीकृत. निरावरण. अप्रतिबन्धः विक्रमो यस्य ।] परिवारोऽनुचरः । निरावरणोऽन्तरायशून्यः ।

। [धर्मात्मजमिति । धर्मात्मजो युधिष्ठिरः यमौ नकुलसहदेवौ इति इत्यन्वयः भीमार्जुनयोर्मध्ये एकोऽपि कः सिन्धुराजम् [अभिषेणयितु सेनयाभिगन्तुम्] अभियोद्धुं समर्थः । अपि तु न कोऽपि । [सेनयाभिगन्तुमित्यर्थे 'सत्यापपाश' इत्यादिना णिच् । उपसर्गात्सुनोति इत्यादिना षत्वम् ।] विस्फुरितं मण्डलाकारं चापमक्र यस्य तम् ॥२५॥

भानुमती—आर्यपुत्र, यद्यप्येवं तथापि गुरुकृतप्रतिज्ञाभारो धनञ्जयः स्थानं खलु शङ्कायाः । [अज्जउत्त, जइवि एवं तहवि गुरुकिदपडिण्णाभारो धणंजओ ट्ठाण क्खु सङ्काए ।]

माता—जाते, साधु कालोचितं त्वया मन्त्रितम् । [जादे साहु कालोइदं एतु मन्तिदं ।]

राजा—आः, ममापि नाम दुर्योधनस्य शङ्कास्थानं पाण्डवाः । पश्य—

कोदण्डज्याकिणाङ्कैरगणितरिपुभिः कङ्कटोन्मुक्तदेहैः
श्लिष्टान्योन्यातपत्रैः सितकमलवनभ्रान्तिमुत्पादयद्भिः ।
रेणुग्रस्तार्कभासां प्रचलदसिलतादन्तुराणां बलाना-
माक्रान्ता भ्रातृभिर्मे दिशि-दिशि समरे कोटयः संपतन्ति ॥२६॥

अपि च भानुमति विज्ञातपाण्डवप्रभावे, किं त्वमप्येवमाशङ्कसे । पश्य—

दुःशासनस्य हृदयक्षतजाम्बुपाने
दुर्योधनस्य च यथा गदयोरुभङ्गे ।
तेजस्विनां समरमूर्धनि पाण्डवानां
ज्ञेया जयद्रथवधेऽपि तथा प्रतिज्ञा ॥२७॥

कः कोऽत्र भोः । जैत्रं मे रथमुपकल्पय तावत् । यावदहमपि तस्य प्रगल्भ-पाण्डवस्य जयद्रथपरिरक्षणेनैव मिथ्याप्रतिज्ञावैलक्ष्यसम्पादितमशस्त्रपूतं मरणमुपदिशामि ।

कोदण्डेति । कोदण्डो धनुः । [तस्य ज्यायाः किणो घर्षणजन्य चिह्नं तस्य अङ्को येषां तैः । अगणिता अचिन्तिता रिपवः यैः ।] कङ्कटेन संनाहेन उन्मुक्तोऽनाश्लिष्टो देहो येषां तैः । तथा चात्मगौरवात्संनाहमकुर्वाणैरित्यर्थः । [कङ्कटामुक्तदेहैरिति पाठे कंकटा आमुक्ताः पिनद्धा येषु तथा देहा येषाम्] । श्लिष्टमन्योन्यस्य] आतपत्रं छत्रं । तैः करणभूतैः श्वेतकमलवनभ्रमं कुर्वद्भिः । [मे भ्रातृभिः आक्रान्ताः । रेणुना ग्रस्तार्कस्य भा यैः तेषाम् । प्रचलयन्त्यो या असिलतास्ताभिः] दन्तुराणां निम्नोन्नतानां बलानां कोटयः संख्याभेदाः प्रदेशा वा । संपतन्ति गच्छन्ति । कोटिरग्रे प्रकर्षे च संख्यापार्श्वप्रदेशयोः इति विश्वः ॥

भानुमती—आर्यपुत्र, यद्यपि यह ठीक है। फिर भी की गई प्रतिज्ञा के भारी भार वाला अर्जुन शङ्का का कारण हो सकता है।

माता—पुत्री, तूने ठीक समयोचित बात कही है।

राजा—ओह ! क्या मुझ दुर्योधन के लिये भी पाण्डव भय का कारण हो सकते हैं ? देखो—

धनुष की डोर के घाव के चिह्न वाले, शत्रुओं की चिन्ता न करने वाले, (इसलिये) शरीर पर से कवच खोल देने वाले और परस्पर सटे हुये छत्रों से श्वेत कमलों के वन की भ्रान्ति उत्पन्न करने वाले मेरे भाइयों के अधिष्ठित, सेनाओं की कोटि-कोटि संख्यायें, जिन्होंने धूलि से सूर्य की क्रान्ति ग्रस ली है और जो घुमाई गई तलवार रूपी लताओं से विकराल है, दिशा-दिशा में युद्ध-भूमि में मिलकर जा रही है ॥२६॥

और, पाण्डवों के प्रभाव को जानने वाली भानुमती, तू भी ऐसी आशङ्का कैसे कर रही है ? देख—

दुःशासन के हृदय से रुधिर रूपी जल के पीने और गदा से दुर्योधन की जङ्घा को तोड़ डालने के विषय में तेजस्वी पाण्डवों की जैसी प्रतिज्ञा थी, वैसी ही युद्ध-भूमि में जयद्रथ के वध के विषय में भी समझनी चाहिये ॥२७॥

अरे यहाँ कोई है ? मेरे जय-शील रथ को तैयार करो तो अब मैं भी केवल जयद्रथ की रक्षामात्र से उस धृष्ट पाण्डव का झूठी प्रतिज्ञा से उत्पन्न लज्जा से किये गये और शस्त्र पवित्र न किये गये मरण का उपदेश देता हूँ।

उरश्छदः कङ्कटको जगरः कवचोऽस्त्रियाम् । इत्यमरः ॥२६॥

दुःशासनेति । यथा दुःशासनस्य हृदयरक्तमेवाम्बु जलं तस्य पाने । यथा च दुर्योधनस्य ऊरुभङ्गे ऊर्वोः भङ्गविषये । तथा समरमूर्धनि रणशिरसि जयद्रथ-वधेऽपि तेजस्विनां पराक्रमिणां पाण्डवानां प्रतिज्ञा ज्ञेया ।] रक्तक्षतजशोणितम् इत्यमरः ॥२७॥

[जैत्रमिति जेतृशब्दात् प्रज्ञादित्वादण् । उपकल्पय सज्जं कृत्वा आनय । प्रगल्भस्य धृष्टस्य पाण्डवस्यार्जुनस्य । मिथ्याप्रतिज्ञा तया यद् वैलक्ष्यं लज्जा तेन संपादितं विहितम् । शस्त्रेणशस्त्रव्यापारेण पूतं शस्त्रपूतम् । युद्धे

(प्रविश्य)

कञ्चुकी—देव,

उद्घातक्वणितविलोलहेमघण्टः
प्रालम्बद्विगुणितचामर प्रहासः ।
सज्जोऽयं नियमितवल्गिताकुलाश्वः
शत्रूणां क्षपितमनोरथो रथस्ते ॥२८॥

राजा—देवि, प्रविश त्वमभ्यन्तरमेव । (यावदहमपि तस्य प्रगल्भपाण्डवस्य) इत्यादि पठन् परिक्रामति) ।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

* इति द्वितीयोऽङ्कः *

शस्त्रप्रहारेण मृतस्य वीरस्य स्वर्गप्राप्तिहेतुत्वात्तन्मरणस्य पूतत्वम् । तथा न भवतीति अशस्त्रपूतम् । जैत्रं जयशालिनम् । अशस्त्रपूतमशस्त्रकृतम् ॥

उद्घातेति । उद्घात आघातः तेन क्वणिताः शब्दिताः विलोलाः प्रचला हेमघण्टा यस्य [।] यद्वा स्यादभ्यादानमुद्घात आरम्भः इत्यमरः । तेनोद्घाते उपक्रम इत्यर्थः । प्रालम्बो लम्बितो हारः । [तेन द्विगुणितः चामरस्य प्रहासः धवलिमा यत्र । प्रालम्बं द्विगुणितं द्विपार्श्वे द्विधाबद्धं यच्चामरं तस्य प्रहासो यत्र इति केचित् ।] प्रहासः प्रकाशः । नियमिता अतएव वल्गितेनाकुला अश्वा यस्य । नियमितं वल्गितं येषां तथाभूता अतएव आकुला अश्वा यस्येति वा । ['नियमितवल्गुवल्गिताश्व.' इति पाठे नियमितं वल्गु चारु वल्गितं येषां तथाभूता

(प्रवेश करके)

कञ्चुकी—महाराज,

प्रतिघात से बजती हुई चञ्चल सुवर्ण की घण्टियों वाला, लटकती मालाओं से दुगुने किये गये चामर के हास (धवलता) वाला, गति के नियमित होने से चञ्चल घोड़ों वाला और शत्रुओं के मनोरथों को नष्ट कर देने वाला आपका यह रथ तैयार है ॥२८॥

राजा—देवी, तुम भी अन्दर जाओ। ('तो अब मैं उस धृष्ट पाण्डव···' इत्यादि कहता हुआ घूमता है)।

(सब निकल जाते हैं)

* द्वितीय अङ्क समाप्त *

अथवा यस्य।] नियमितो वेल्लितेन गतिविशेषणाकुलितोऽश्वो यत्र स तथा। शत्रूणां क्षपिता नाशिता मनोरथा येन स तथोक्तः। अत्र शत्रूणामिति षष्ठ्या मनोरथेन सम्बन्धः। सापेक्षत्वात्समासः। तदुक्तम्—सम्बन्धिशब्द सापेक्षो नित्यं सर्वः समस्यते। वाक्यवत्सा व्यपेक्षापि वृत्तावपि न हीयते॥ इति ॥२८॥

अत्राङ्के नायिकाचेट्योर्भाषा शौरसेनी। तदुक्तं तत्रैव नायिकायां च चेट्या च तथा चैव विदूषके। शौरसेनीं समाश्रित्य भाषा योज्या तु नाटके। इति। एवमन्यत्रापि॥

असूत यं रत्नधरो गुणीशो नानागुणाढ्या दमयन्तिकापि।
जगद्धरं तस्य कृतौ गतोऽयमङ्को द्वितीयो वरटिप्पनेऽत्र॥

* द्वितीयोऽङ्कः *

तृतीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशतिविकृतवेषा राक्षसी)

राक्षसी—(विकृतं विहस्य । सपरितोषम्)

हतमानुषमांसभाण्के कुम्भसहस्रं वसाभिः संचिते ।
अनिशं च पिबामि शोणितं वर्षशतं समरो भवतु ॥१॥

(नृत्यन्ती सपरितोषम्) यदि सिन्धुराजवधदिवस इव दिवसे-दिवसे समरकर्म प्रतिपद्यतेऽर्जुनस्तदापर्याप्तभृतकोष्ठागार मांसशोणितैर्मे गृहं भविष्यति । (परिक्रम्य दिशोऽवलोक्य) अथ क्व नु खलु रुधिरप्रियो भविष्यति । तद्यावदेतस्मिन्समरे प्रियभर्तारं रुधिरप्रियमन्वेषयामि । (परिक्रम्य) भवतु । शब्दायिष्ये तावत् । अरे रुधिरप्रिय, रुधिरप्रिय, इत एहि, इत एहि ।

[हदमाणुशमशभालए कुम्भशहश्शवशाहि शंचिए ।
अणिशं अ पिवामि शोणिअं वलिशशदं शमले हुवीअदु ॥१॥]

[जइ शिन्दुलाअवहदिअहे विअ दिअहे-दिअहे शमलकम्म पडिवज्जइ अज्जुण शदो पज्जत्तभलिदकोठ्ठागाले मशशोणिएहिं मे गेहे हुवीअदि । अह कहिं णु खलु लुहिलप्पिए हुवीअदि । ता जाव इमश्श शमले पिअभत्ताल लुहिलप्पिअं अण्णेशामि । होदु । शद्दावइश्शं दाव । अले लुहिलप्पिआ लुहिलप्पिआ इदो एहि इदो एहि ।]

(ततः प्रविशति तथाविधो राक्षसः)

राक्षसः—(श्रमं नाटयन्)

प्रत्यग्रहतानां मांसं यद्युष्णं रुधिरं च लभ्येत् ।
तदेष मम परिश्रम क्षणमात्रमेव लघु नश्येत् ॥२॥

[पच्चग्गहदाणं मंशए जइ उण्हे लुहिले अ लब्भइ ।
ता एशो मह पलिश्शमे क्खणमेत्तं एव्व लहु णश्शइ ॥२॥]

(राक्षसी पुनर्व्याहरति)

[विकृतः बीभत्सः वेषो यस्याः । विकृतं विरुद्धम्] ।

तृतीय अङ्क

(तत्पश्चात् वीभत्स वेष वाली राक्षसी प्रवेश करती है)

राक्षसी—(भयंकर हंसी हंसकर सन्तोष के साथ)

मरे हुए मनुष्यों की मांस-राशि के हजारों घड़े चर्बी सहित सञ्चित कर लेने पर मैं दिन-रात रुधिर पी रही हूँ। यह युद्ध सौ वर्ष तक चलता रहे ॥१॥

(नाचती हुई सन्तोष के साथ) यदि सिन्धु देश के राजा (जयद्रथ) के वध के दिन के समान प्रतिदिन अर्जुन युद्ध-पराक्रम करता रहे, तो मेरा घर मांस और रुधिर से पूरे भ हुए कोठे वाला हो जायेगा। (घूमकर और चारों ओर देखकर) न जाने रुधिरप्रिय कहाँ है ? तो इस युद्ध-क्षेत्र में अपने प्रिय पति रुधिरप्रिय का पता लगाऊँ। (घूमकर) अच्छा, पुकारती हूँ। ओ, रुधिरप्रिय, रुधिरप्रिय, इधर आ, इधर आ।

(तब उसी प्रकार का राक्षस प्रवेश करता है)

राक्षस—(थकान का नाट्य करता हुआ)

यदि ताजे मरे हुए लोगों का मांस और गर्म रुधिर मिल जाये तो मेरी यह थकान क्षण-भर में ही तुरन्त मिट जाय ॥२॥

(राक्षसी फिर पुकारती है)

[हतेति। हतानां मानुषाणां मांसस्य भार एव भारकः तस्मिन्। कुम्भानां सहस्रं तैन परिच्छिन्नाभि वसाभि सह संचिते सति अनिशमहोरात्रं शोणितं रुधिरं पिबामि। समरो युद्ध वर्षशतं शतवर्षपर्यन्त भवतु ॥१॥]

समरकर्मातिप्रवर्तयत्यर्जुनस्तदा पर्यन्तं भृतकोष्ठागारं मम मांसशोणितैर्गृहं भविष्यति। भवतु। वादयिष्ये। अरे रुधिरप्रिय रुधिरप्रिय एहि तावत्।

[यदि प्रत्यग्रं सद्य. हतानां मांसम् उष्णं कोष्ण रुधिर च लभ्येत, तत्सदा एप मम परिश्रमः खेदः क्षणमात्रमेव लघु द्राक् नश्येत् क्षयमियात् ॥२॥]

कोष्ठागारे कोठाखण्डम्। अरे को मां वादयते। कथं प्रिया मे वसागन्धा।

राक्षस—(आकर्ण्य) अरे कैया मां शब्दायते। (विलोक्य) कथं प्रिया मे वसागन्धा। (उपसृत्य) वसागन्धे, कस्मान्मां शब्दायसे। [अले के एशे मं शद्दावेदि। कह पिआ मे वसागन्धा। वशागन्धे कीश म शद्दावेशि।]

रुधिरासवपानमत्तिके रणहिण्डनस्खलद्गात्रिके।

शब्दायसे कस्मान्मा प्रिये पुरुषसहस्रं हतं श्रूयते॥३॥

[लुहिलाशवपाणमत्तिए, लणहिण्डन्तखलन्तगत्तिए।

अद्दाअशि कीश मं पिए पुलिवशशहश्श हद शुणीअदि॥३॥]

राक्षसी—अरे रुधिरप्रिय, इदं खलु मया तव कारणात्प्रत्यग्रहतस्य कस्यापि राजर्षे प्रभूतवसास्नेहचिक्कणं कोष्णं नवरुधिरमग्रमांसं चानीतम्। तत्पिबैतत्। [अले लुहिलप्पिआ एदं क्खु मए तु कालणादो पच्चग्गहदश्श कश्शवि लाएशिणो प्पहूदवशाशिणेहचिक्कणं कोण्हं णवलुहिलं अग्गमंशं अ आणीदम्। ता पिवाहि णम्।]

राक्षसः—(सपरितोषम्) साधु, वसागन्धे, साधु। शोभनं त्वया कृतम्। बलवदस्मि पिपासितः। तदुपनय। [शाहु वशागन्धे शाहु। शोहणं तुए किदम्। बलि अह्मि पिवाशिए। ता उवणेहि।]

राक्षसी—अरे रुधिरप्रिय ईदृशे हतनरगजतुरङ्गमशोणितवसासमुद्रदु.सचरे समराङ्गणे परिभ्रमंस्त्वं पिपासितोऽसीत्याश्चर्यमाश्चर्यम्। [अले लुहिलप्पिआ, एदिशे हदणलगअतुलङ्गमशोणिअवशाशमुद्दुश्शंचले शमलङ्गणे पडिब्भमन्त तुमं पिवाशिएशि त्ति अच्चलिअं अच्चलिअम्।]

राक्षस.—अयि सुस्थिते, ननु पुत्रशोकसतप्तहृदयां स्वामिनीं हिडिम्बादेवीं प्रेक्षितुं गतोऽस्मि। [अइ शुत्थिदे, णं पुत्तशोअशन्तत्तहिअअं शामिणी हिडिम्बादेवी पेक्खिदुं गदह्मि।]

राक्षसी—रुधिरप्रिय, अद्यापि स्वामिन्या हिडिम्बादेव्या घटोत्कचशोको नोपशाम्यति। [लुहिलप्पिआ, अजवि शामिणीए हिडिम्बादेवीए घडुक्कअशोए ण उपशमइ।]

यावदेनामुपसर्पामि। वसागन्धे किंनिमित्तं त्वं मा वादयसे।

राक्षस—(सुनकर) अरे ! यह कौन मुझे पुकार रही है ? (देखकर) कैसे ? मेरी प्यारी वसागन्धा ! (समीप जाकर) वसागन्धा, मुझे क्यों पुकार रही हो ?

रुधिर रूपी आसव के पीने से मत्त हुई, युद्ध-क्षेत्र में भ्रमण से शिथिल-अङ्गो वाली, हे प्यारी, तु मुझे क्यो पुकार रही है ? हजारो पुरुष मरे हुए सुने जाते हैं ॥२॥

राक्षसी—अरे रुधिरप्रिय, मैं यह तेरे लिए ताजे मरे हुये किसी राजर्षि का अत्यधिक चर्बी की चिकनाई से चिकना, कुछ गर्म ताजा रुधिर और हृदय का मांस (कलेजा) लाई हूँ। इसे पी ले।

राक्षस—(सन्तोष के साथ) शाबाश ! वसागन्धा, शाबाश ! तूने बड़ा अच्छा किया। मै बहुत ही प्यासा हूँ। तो मेरे पास लाओ।

राक्षसी—अरे रुधिरप्रिय, बड़ा आश्चर्य है कि तुम ऐसी युद्ध-भूमि में, जो मारे गये पुरुषों, हाथियों और घोड़ों के रुधिर और चर्बी के समुद्र से दुर्गम है, घूमते हुए भी प्यासे हो !

राक्षस—अरी, निश्चिन्त बैठी हुई, मै पुत्र-शोक से व्याकुल हृदय वाली स्वामिनी हिडिम्बा देवी को देखने गया था।

राक्षसी—रुधिरप्रिय, तो अभी स्वामिनी हिडिम्बा देवी का घटोत्कच की मृत्यु से उत्पन्न शोक शान्त नही हुआ ?

रुधिरासवपानमत्त रणभ्रमणस्खलद्गात्रि। व्याहरसे किमिति सुन्दरि मां पुरुषशत हतमिति श्रूयते ॥३॥

प्रभूतवसाशोणित मस्तिष्कचिक्कणमग्रमांस चानीतम्। तास्वादय। पिब शोणितासवम्। अत्र प्रत्यग्रं नवम्। प्रभूतमुपचितम्। मस्तिष्क गोदोति प्रसिद्धम्। अग्रं प्रथमभागमुत्तम [बलवत् अत्यन्त] पिपासित. [पिपासाः अस्य सजाता स तथा।] अत्र सुष्ठु मनोहरम्। वलितोऽतिशयितः। ननु पुत्र-शोकसतप्ता देवीमन्वेष्टु गतोऽस्मि। हे सुस्थिते ! ननु भणामि। अरे रुधिर-प्रिय तत्किमद्याप्यस्या. स्वामिन्या हिडिम्बादेव्याः पुत्रस्य घटोत्कचस्य शोको हृदयान्नोपशाम्यति।

राक्षसः—वसागन्धे, कुतोऽस्या उपशमः। केवलमभिमन्युवधशोकसमानदुःखया सुभद्रादेव्या याज्ञसेन्या च कथं कथमपि समाश्वास्ते। [वशागन्धे, कुदो शे उवशमे। केवलं अहिमण्णुवहशोअशमाणदुक्खाए शुभद्दादेवीए जण्णशेणीए अ कधं कधं वि शमाश्शाशीअदि।]

राक्षसी—रुधिरप्रिय, गृहाणैतद्धस्तिशिरःकपालसंचितमग्रमांसोपदंशम्। पिबनव शोणितासवम्। [लुहिलप्पिआ, गेण्ह एदं हत्थिशिलक्कवालशचिअं अग्गमशोवदंशम्। पिवाहि णवशोणिआशवम्]

राक्षसः—(तथा कृत्वा) वसागन्धे, अथ कियत्प्रभूत त्वया संचितं रुधिरमग्रमांस च। [वशागन्धे अह किअप्पहूद तुए शचिअ लुहिलं अग्गमशं अ।]

राक्षसी—अरे रुधिरप्रिय, पूर्वसंचित जानास्येव त्वम्। नवसंचित शृणु तावत्। भगदत्तशोणितकुम्भः सिन्धुराजवसाकुम्भौ द्वौ द्रुपदमत्स्याधिपभूरिश्रवः सोमदत्तबाल्हीकप्रमुखाणां नरेन्द्राणामन्येषामपि प्राकृतपुरुषाणां रुधिरवसामांसस्य घटा अपिनद्धमुखा सहस्रसंख्या सन्ति मे गेहे। [अले लुहिलप्पिआ, पुव्वसंचिअ जाणाशि जेव्व तुम। णवशचिअ शिणु दाव। भअदत्तशोणिअम्भे शिन्धुलाअवशाकुम्भे दुवे दुवदमच्छाहिवभूलिश्शवशोमदत्तवल्हीअप्पमुहाण णलिन्दाण वि पाकिदपुलिशाणं लुहिलवशामशश्श घडा अपिणद्धमुहा शहश्शशङ्खा शन्ति मे गेहे।]

राक्षसः—(सपरितोषमालिङ्ग्य) साधु सुगृहिणी साधु। अनेन ते सुगृहिणीत्वेनाद्य पुनः स्वामिन्याः हिडिम्बादेव्याः सविधानेन च प्रनष्ट मे जन्मदारिद्रयम्। [शाहु शुग्घालणीए शाहु। इमिणा दे शुग्घालिणित्तणेण अज्ज उण शामिणीए हिडिम्बादेवीए शविहाणेण अ प्पणट्टं मे जम्मदालिद्दम्।]

राक्षसी—रुधिरप्रिय, कीदृश स्वामिन्या सविधानं कृतम्। [लुहिलप्पिआ, केलिशे शामिणीए शविहाणए किदे।]

राक्षस—वसागन्धे, अद्य खल्वह स्वामिन्या हिडिम्बादेव्या सबहुमान शब्दाय्याज्ञप्त –यथा रुधिरप्रिय, अद्यप्रभृति त्वया आर्यपुत्रस्य भीमसेनस्य पृष्ठतोऽनुपृष्ठं समर आहिण्डितव्यमिति। तत्स्यानुमार्गगामिनो हतमानुषशोणितमवोदर्शनप्रनष्टबुभुक्षापिपासस्येहैव मे स्वर्गलोको भविष्यति। त्वमपि विस्रब्धा भूत्वा रुधिरवसाभिः कुम्भसहस्रं संचिनु। [वशान्धे अज्ज क्खु हगं शामिणिए

हिडिम्बादेवीये शबहुमाणं शद्दाविअ आणत्ते जह लुहिलप्पिआ अजप्पहुदि तुए अज्जउत्तस्स भीमशेणश्श पिट्ठदोणु पिट्ठं शमले आहिण्डिदव्व त्ति। ता तश्श अनुमग्गगामिणो हुअमाणशशोणिअणईदशणप्पणट्ठबुभुक्खापिवाशश्श इम एव्व मे शग्गलोओ हुवीअदि। तुम वि वीशद्धा भविअ लुहिलवशाहि कुम्भशहश्श शचेहि।]

राक्षसी—रुधिरप्रिय, किंनिमित्त कुमारभीमसेनस्य पृष्ठतोऽनुपृष्ठमाहिण्डयते। [लुहिलप्पिआ, किंणिमित्त कुमालभीमशेणश्श पिट्टदोणुपिट्ठ आहिण्डीअदि।]

राक्षसः—वसागन्धे, तेन हि स्वामिना वृकोदरेण दुःशासनस्य रुधिरं पातुं प्रतिज्ञातम्। तच्चास्माभीराक्षसैरनुप्रविश्य पातव्यमिति। [वशागन्धे, तेण हि शामिणा विओदलेण दुश्शाशणश्श लुहिलं पादु पडिण्णादम्। त च अह्म हिं लक्खशेहिं अणुप्पविशिअ पादव्वत्ति।]

राक्षसी—(सहर्षम्) साधु, स्वामिनो, साधु। सुसंविधानो मे भर्ता त्वया कृत.। [शाहू शामिणीए शाहू। शुशविहाणे मे भत्ता तुए किदे।]

(नेपथ्ये महान्कलकलः उभावाकर्णयत.)

राक्षसी—(आकर्ण्य ससंभ्रमम्) अरे रुधिरप्रिय, किं नु खल्वेष महान्कलकलः श्रूयते। [अले लुहिलप्पिआ, किं णु क्खु एशे महन्ते कलअले शुणअदि।]

राक्षसः—(दृष्ट्वा) वसागन्धे, एष खलु धृष्टद्युम्नेन द्रोणः केशेष्वाकृष्याऽसिपत्रेण व्यापाद्यते। [वशागन्धे एशे क्खु धिट्ठज्जुण्णेण दोणे केशेशु आकड्डिअ असिवत्तेण वावादीअदि।]

राक्षसी—(सहर्षम्) रुधिरप्रिय एहि। गत्वा द्रोणस्य रुधिरं पिबाव.। [लुहिलप्पिआ, एहि। गच्छिअ दोणश्श लुहिलं पिवह्म।]

राक्षसः—(सभयम्) वसागन्धे, ब्राह्मणशोणितं खल्वेतद्। गलं दहद्दहत्प्रविशति। तत्किमेतेन। [वशागन्धे, ब्रह्मणशोणिअ क्खु एदं। गलअं दहन्ते दहन्ते पविशदि। ता किं एदिणा।]

(नेपथ्ये पुनः कलकल)

राक्षसी—रुधिरप्रिय, पुनरप्येष महान्कलकलः श्रूयते। [लुहिलप्पिआ पुणोवि एशे महन्ते कलअले शुणीअदि।]

राक्षसः—(नेपथ्याभिमुखमवलोक्य) वसागन्धे, एष खल्वश्वत्थामा आकृष्टा-

राक्षसी—रुधिरप्रिय, कुमार भीमसेन के पीछे-पीछे किस कारण घूमते हो ?

राक्षस—वसागन्धा, स्वामी वृकोदर (भीमसेन) ने दु शासन का रुधिर पीने की प्रतिज्ञा कर रक्खी है। वह (कुमार भीमसेन के शरीर मे) प्रविष्ट होकर हम राक्षसों को ही पीना होगा।

राक्षसी—(हर्ष के साथ) धन्य हो, स्वामिनी धन्य हो। आपने मेरे पति के लिये अच्छी व्यवस्था कर दी है।

(नेपथ्य में तीव्र कलकल ध्वनि होती है। दोनों सुनते हैं)

राक्षसी—(सुनकर घबराहट के साथ) अरे रुधिरप्रिय, यह कैसा तीव्र कलकल शब्द सुनाई दे रहा है ?

राक्षस—(देखकर) वसागन्धा, यह द्रोण धृष्टद्युम्न द्वारा केश खींचकर तलवार से मारा जा रहा है।

राक्षसी—(हर्ष से) रुधिरप्रिय, आओ। चलकर द्रोण का रुधिर पीयेंगे।

राक्षस—(भय से) वसागन्धा यह ब्राह्मण का रुधिर है। गले को जलाता हुआ अन्दर जाता है। इसलिये इसमे क्या (लाभ) ?

(नेपथ्य मे फिर कलकल ध्वनि होती है)

राक्षसी—रुधिरप्रिय यह पुन तीव्र कलकल शब्द सुनाई दे रहा है।

राक्षस—(नेपथ्य की ओर देखकर) वसागन्धा यह अश्वत्थामा तलवार

अद्यतनकेन। एतत्कालीनेत्यर्थः। अरे रुधिरप्रिय ईदृशः स्वामिन्या हिडिम्बा-देव्या संविभाग कृतः। पुत्र रुधिरप्रिय अद्यप्रभृतित्वयानाथभीमसेनस्य पश्चात्समर आहिण्डितव्यमिति। ततस्तस्य मार्गानुगामिनो हतमानुषशोणितनदी दर्शनेन प्रणष्टा मे बुभुक्षा पिपासा च। त्वमपि विश्वस्ता भूत्वा रुधिरं वसां मांसं च सचेष्यसीतीहैव सुरलोको भविष्यतीति अत्र। बुभुक्षा भोक्तुमिच्छा। विश्वस्ता विश्वासवती। सुसंविभागो मम भर्ता कृतः। अरे रुधिरप्रिय रुधिर प्रिय उत्तिष्ठोत्तिष्ठ कुतः खल्वेष महान्कलकलः श्रूयते। तदलं ममैतेन। अरे रुधिरप्रिय रुधिरप्रिय उत्तिष्ठोत्तिष्ठ। पुनरप्येष महान्कलकलः श्रूयते। वसागन्धे एष खल्वश्वत्थामाकृष्टासिपत्र इतः समरभूमिमवतरति। कदाचिद्द्रुपदसुतरोषेणा स्मान्राक्षसान्प्रेक्ष्य व्यापादयिष्यति। तदेहि पलायावहे। अत्रासिपत्रः खड्गः

सिपत्र इत एवागच्छति। कदाचिद् द्रुपदसुतरोषेणाऽऽवामपि व्यापादयिष्यति तदेहि। अतिक्रमावः। [वशागन्धे, एशे क्खु अश्शत्थामे आकड्ढिदाशिवत्ते इदो एव्व आअच्छदि। कदावि दुवदशुलोशेण अह्मे वि वावादइश्शइ। ता एहि। अतिवक्कमह्म।

(इति निष्क्रान्तौ)

इति प्रवेशकः।

(ततः प्रविशत्युत्खातखड्गः कलकलमाकर्णयन्नश्वत्थामा)

अश्वत्थामा—

महाप्रलयमारुतक्षुभितपुष्करावर्तक—
प्रचण्डघनगर्जितप्रतिरवानुकारी मुहुः।
रवः श्रवणभैरवः स्थगितरोदसीकन्दर.
कुतोऽद्य समरोदधेरयमभूतपूर्वः पुरः ॥४॥

(विचिन्त्य) ध्रुवं गाण्डीविना सात्यकिना वृकोदरेण वा यौवनदर्पादतिक्रान्त-मर्यादेन परिकोपितस्तात. समुल्लङ्घ्य शिष्यप्रियतामात्मप्रभावमद्दशमाचेष्टते। तथाहि—

यद् दुर्योधनपक्षपातसदृशं युक्तं यदस्त्रग्रहे।
रामाल्लब्धसमस्तहेतिगुरुणो वीर्यस्य यत्साम्प्रतम्।

द्रुपदसुतो धृष्टद्युम्नः। एवं करवावः।

प्रवेशक इति। हीनाभ्यामेव पात्राभ्यामङ्कादौ सम्प्रवर्तते। प्रवेशकः स विज्ञेयः शौरसेन्यादिभाषया। इति भरतः।

महाप्रलयेति। [अद्य पुरः अग्रेवर्तमानः समरमेवोधिस्तस्यायं रवः कुतः। कीदृशः। महान् यः प्रलयमरुतः तेन। यद्वा महाप्रलये यः, मारुतस्तेन। क्षुभिता पुष्करावर्तकास्तेषां प्रचण्डं घनं च यद्गर्जितं तस्य प्रतिरव. प्रतिशब्द-स्तस्यानुकरोतीति तत्सदृश इत्यर्थः। पुष्करावर्तको मेघविशेष. । घनं निबिडम्

नीचे इधर ही आ रहा है। कहीं द्रुपद के पुत्र पर आये हुए क्रोध से हमें भी मार डाले। इसलिये आओ बचकर निकल चलें।

(दोनों निकल जाते है)

प्रवेशक समाप्त

(तत्पश्चात् तलवार उठाये और कलकल ध्वनि सुनते हुए अश्वत्थामा)
(प्रवेश करता है)

अश्वत्थामा—

आज सामने युद्धरूपी समुद्र से बार-बार यह, महा-प्रलय के समय वायु से चलायमान पुष्कर और आवर्तक नाम के मेघों के तीव्र और गम्भीर गर्जन की प्रतिध्वनि का अनुकरण करने वाला, कर्णकटु और पृथ्वी तथा आकाश के मध्यवर्ती भाग (अन्तरिक्ष) रूपी गुहा को ढक देने वाला, अभूतपूर्व शब्द क्यों (उठ रहा है ?) ॥४॥

(सोचकर) निश्चय ही यौवन के मद से मर्यादा का उल्लङ्घन कर देने वाले अर्जुन या सात्यकि या भीमसेन द्वारा क्रुद्ध किये गये पिताजी शिष्य-प्रेम को त्यागकर अपने पराक्रम के अनुरूप कर्म कर रहे हैं। क्योंकि—

जो (कर्म) दुर्योधन के प्रति प्रेम के योग्य है, जो (कर्म) शस्त्र उठा लेने पर उचित है, जो (कर्म) परशुराम से प्राप्त समस्त शस्त्रों के कारण महान् पराक्रम के योग्य है, और जो (कर्म) सब धनुर्धरों के अधिपति के क्रोध के

अनुकारी सदृशः। श्रवणभैरव. कर्णकटुः। स्थगित पिहितम्। द्यावापृथिव्यो-रन्तरं रोदः। तदेव कन्दर तस्य वा कन्दरं मध्यम्। रोदश्च रोदसी चैव दिवि भूमौ पृथक्पृथक्। इत्यमर.। स्थगितं रोदस्यो. कन्दरं येन]। अभूतपूर्वः न पूर्वं भूत इत्यर्थः। सुप्सुपेति समासः ॥४॥

आचेष्टते करोति।

यद्दुर्योधनेति यदिति सर्वत्र यच्छब्देनाग्रे वक्ष्यमाणं कर्माभिधीयते। पक्षपातो गौरवम्। [अस्त्रग्रहे अस्त्रे गृहीते यत्तदुचितम् रामाल्लब्धाः समस्ता हेतयः समस्तान्यस्त्राणि ताभिर्गुरु दुर्भरम्] रामात्परशुरामात् हेतिरस्त्रम्।

लोके सर्वधनुष्मतामधिपतेर्यच्चानुरूपं रुषः
प्रारब्धं रिपुघस्मरेण नियतं तत्कर्म तातेन मे ॥५॥

(पृष्ठतो विलोक्य) तत्कोऽत्र । रथमुपनयतु । अथवाऽलमिदानीं मम रथप्रतीक्षया । सशस्त्र एवास्मि सजलजलधरप्रभाभासुरेण सुप्रग्रहविमलकलधौतत्सरुणाऽमुना खड्गेन । यावत्समरभुवमवतरामि । (परिक्रम्य वामाक्षिस्पन्दनं सूचयित्वा) आः कथं ममापि नामाश्वत्थाम्नः समरमहोत्सवप्रमोदनिर्भरस्य तातविक्रमदर्शनलालसस्याऽनिमित्तानि समरगमनविघ्नमुत्पादयन्ति । भवतु, गच्छामि । (सावष्टम्भं परिक्रम्याग्रतो विलोक्य च) कथमवधीरितक्षात्रधर्माणामुज्झितसत्पुरुषोचितलज्जावगुण्ठनानां विस्मृतस्वामिसत्कारलघुचेतसां द्विरदतुरङ्गमचरणचारिणामगणितकुलयशःसदृशपराक्रमव्रतानां रणभूमेः समन्तादक्रामतामयं महान्नादो बलानाम् । (निरूप्य) हा धिक्कष्टम् । कथमेते महारथाः कर्णादयोऽपि समरात्पराङ्मुखा भवन्ति । कथं नु तातापिष्ठितानामपि बलानामियमवस्था भवेत् । भवतु संस्तम्भयामि । भो भोः कौरवसेनासमुद्रवेलापारपालनमहामहीधरा नरपतयः कृतं कृतममुना समरपरित्यागसाहसेन—

गुरुणोऽधिकस्य । सांप्रतं युक्तम् । धनुष्मतां । प्रशस्तधनुर्धराणाम् अधिपतेस्तस्य [रुषः] रोषस्य यदनुरूपमित्यन्वयः । [रिपूणां] घस्मरो भक्षक. [तेन] । भक्षको घस्मरोऽद्मरः इत्यमरः ॥५॥

[सजल य. जलधरस्तस्येव प्रभा तया] भासुरेण दीप्तेन । भञ्जभासमिदो घुरच् इति घुरच्प्रत्ययः । सुप्रग्रहः सुष्ठु ग्रहणं रश्मिर्वा [यस्य] । हयादिरश्मौ च प्रग्रहःसंग्रहेऽपि च इति विश्वः । तादृश. विमलं निर्मलं यत्कलधौतं तस्य त्सरुर्यस्य तेन । कलधौतं सुवर्णम् त्सरुः खड्गादिमुष्टौ स्यात् इत्यमरः । नाम संभावनायाम् । अनिमित्तानीति कर्तृपदम् [समरमेव महोत्सवं तेन प्रमोदस्य निर्भरः यस्य । तातविक्रमदर्शने लालसा यस्य अवधीरितस्तिरस्कृतः क्षत्रस्यायं क्षात्रो धर्मो युधि स्थैर्येणावस्थानं तद्रूपायै.] [उज्झितं त्यक्तं लज्जैवावगुण्ठनमुपरिवस्त्रं यैस्तेषाम् । विस्मृतः स्वामिसत्कारस्तेन लघु चेतो येषाम् ।

अनुरूप है, शत्रुओं के भक्षक पिता ने निश्चित रूप से (आज) वही कर्म प्रारम्भ कर दिया है ॥५॥

(पीछे की ओर देखकर)—यहाँ कौन है ? रथ लाओ। अथवा अब मुझे इस रथ की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए। जल से भरे मेघ की क्रान्ति के समान चमकने वाले और अच्छी प्रकार पकड़ने योग्य तथा निर्मल सुवर्ण निर्मित मूठ वाले इस खड्ग से शस्त्र-सज्जित हूँ ही। तब युद्धक्षेत्र में उतरता हूँ। (घूमकर और बायें नेत्र की फड़कन को सूचित करके) ओह ! मुझ अश्वत्थामा के लिए भी जिसे युद्ध रूपी महोत्सव का अत्यधिक हर्ष है और जिसे पिता के पराक्रम को देखने की तीव्र अभिलाषा है, ये अपशकुन युद्ध में जाने में विघ्न उत्पन्न कर रहे है। अच्छा, जाता हूँ। (अकड़ के साथ घूमकर और देखकर) क्षात्रधर्म की उपेक्षा करने वाली, सज्जनोचित लज्जा के आवरण को त्याग देने वाली स्वामी द्वारा किये गये सत्कार को भुला देने के कारण क्षुद्र चित्त वाली, कुल एवं ख्याति के अनुरूप पराक्रम-व्रत की चिन्ता न करने वाली, युद्ध-क्षेत्र से चारो ओर भाग खड़ी होने वाली और हाथी, घोड़ो तथा पदातियो की सेनाओं का यह महान् कोलाहल क्यों है ? (देखकर) ओह ! धिक्कार है ! ये कर्ण आदि महारथी भी युद्ध से क्यों भाग रहे हैं ? पिता से संचालित होने पर भी सेनाओं की यह दशा कैसे हो सकती है ? अच्छा, मैं (इन्हे) रोकता हूँ। हे कौरव-सेना रूपी समुद्र के तट की रक्षा के कार्य में विशाल पर्वतों के समान् राजा लोगो, युद्ध मे पलायन के इस दुष्कृत्य से बस करो।

द्विरदैः तुरंगमैश्चरणैश्च चरन्तीति चच्छीलानाम्। चारीति ताच्छीलिको णिनिः। [अगणितं कुलस्य यशः तस्य सदृश पराक्रम एव व्रतं यै तेषाम्।] अपक्रामतां पलायमानानाम्। अपक्रमोऽपयानं स्यात् इत्यमरः। हा हा शोकेऽपि निन्दायाम् इति कौरवसेना एव समुद्रस्तस्य वेलामर्यादास्थितस्तस्याः परिपालने महामहीधराः।] वेला तत्तीरनीरयोः इत्यमरः। महीधरो गिरिः। कृतं निष्फलम्। कृतं क्लीवं तु निष्फले इति विश्व। [कृतमलं मा कुरुतेत्यर्थः।]

यदि समरमपास्य नास्ति मृत्यो—
भयमिति युक्तमितोऽन्यतः प्रयातुम् ।
अथ मरणमवश्यमेव जन्तोः
किमिति मुधा मलिनं यशः कुरुध्वे ॥६॥

अपि च—

अस्त्रज्वालावलीढप्रतिबलजलधेरन्तरौर्वायमाणे
सेनानाथे स्थितेऽस्मिन्मम पितरि गुरौ सर्वधन्वीश्वराणाम् ।
कर्णाऽलं संभ्रमेण व्रज कृप समरं मुञ्च हार्दिक्य शङ्कां
ताते चापद्वितीये वहति रणधुरां को भयस्याऽवकाशः ॥७॥

(नेपथ्ये)

कुतोऽद्यापि ते तातः ।

अश्वत्थामा—(श्रुत्वा) किं ब्रूथ—कुतोऽद्यापि ते तात. इति । (सरोषम्) आः क्षुद्राः समरभीरवः, कथमेवं प्रलपतां वः सहस्रधा न दीर्णमनया जिह्वया ।

दग्धुं विश्वं दहनकिरणैर्नोदिता द्वादशार्का
वाता वाता दिशि दिशि न वा सप्तधा सप्त भिन्नाः ।
छन्नं मेघैर्न गगनतलं पुष्करावर्तकाद्यैः
पाप पापाः कथयत कथं शौर्यराशेः पितुर्मे ॥८॥

(प्रविश्य संभ्रान्तः सप्रहारः)

सूतः—परित्रायतां परित्रायतां कुमार. । (इति पादयोः पतति) ।

यदीति अपास्य त्यक्त्वा । मृत्योर्मरणाद्भयमाद्रा । इतः समरात् अन्यतोऽन्यत्र । अथ पक्षान्तरे । मुधा विफलम् ॥६॥

अस्त्रेति । अस्त्रमेव ज्वाला तेनावलीढ आक्रान्ताः प्रतिबलजलधिस्तस्य मध्ये और्वायमाणे वडवानल इवाचरति सति । संभ्रमेण भयेन । हार्दिक्यो योधविशेषः । शङ्कां भयं मुञ्च । इह श्लोके युक्तिरलङ्कारः । अर्थावधारणं यत्तु

यदि युद्ध का त्याग करके मृत्यु का भय न रहे, तब तो यहाँ से अन्यत्र जाना उचित भी हो सकता है, परन्तु जब प्राणी की मृत्यु अवश्यम्भावी है तो (अपनी) कीर्ति को व्यर्थ क्यों कलङ्कित कर रहे हो ? ॥६॥

और भी,

शस्त्रो रूपी ज्वालाओं से व्याप्त शत्रु-सेना रूपी समुद्र के मध्य बड़वानल के समान, समस्त उत्तम धनुर्धारियों के गुरु, मेरे पिता के सेनापति रहते हुए हे कर्ण, घबराहट से बस करो; हे कृप, युद्ध-भूमि में जाओ; हे हार्दिक्य, भय त्याग दो। धनुष को सहाय रूप में धारण करने वाले (मेरे) पिता के युद्ध-संचालन का भार धारण करने पर भय का अवकाश क्या हो सकता है ? ॥७

(नेपथ्य में)

अब तुम्हारे पिता कहाँ है ?

अश्वत्थामा—(सुनकर) क्या कह रहे हो—अब तुम्हारे पिता कहाँ है ? (क्रोध से) ओह ! नीच युद्ध-भीरुओं, इस तरह प्रलाप करते हुए तुम्हारी यह जीभ हजार टुकड़े क्यों नहीं हो गई ?

अपनी ज्वलनशील किरणों से संसार को जला डालने के लिए बारह आदित्य उदित नही हुए; सात-सात प्रकार की सात (७×७=४६) वायु प्रत्येक दिशा में नही चली; और पुष्कर एव आवर्तक आदि मेघो ने आकाश को आच्छादित नही किया; (तब) हे पापियों, वीर्य की राशि मेरे पिता के विषय मे अनिष्ट बात कैंस कह रहे हो ? ॥८॥

(प्रवेश करके घबराया हुआ तथा चोटें लगा हुआ)

सूत—बचाइये, कुमार बचाइये। (पैरों पर गिरता है)।

प्रमाणाद्युक्तिरुच्यते। इति भरतः। अन्यदीयप्रौढ्यतिशयरूपो गर्भसंधिरयम्। यदाह—स्वीयान्यदीयभेदेन प्रौढिवाक्यमुदाहृतिः ॥७॥

वो युष्माकम्।

दग्धुमिति। [दहनात्मकाः किरणा दहनकिरणाः तैः] दहनकिरणैरग्निकरैः। न वाता न गतिमन्तः। वाता इति वा गतिगन्धनयोः। क्तः। सप्तधा सप्तप्रकारेण भिन्नाः सप्त। तथा चोनपञ्चाशत्। [वाताः वा दिशि दिशि न वाता]। पापं मरणरूपम्। हे पापाः पापिष्ठाः ॥८॥

अश्वत्थामा—(विलोक्य) अये, कथं तातस्य सारथिरश्वसेनः। आर्य, ननु त्रैलोक्यत्राणक्षमस्य सारथिरसि। किं मत्तः परित्राणमिच्छामि।

सूत —(उत्थाय सकरुणम्) कुतोऽद्यापि ते तातः।

अश्वत्थामा—(सावेगम्) किंतात एव नास्ति।

सूतः—अथ किम्।

अश्वत्थामा—हा तात। (इति मोहमुपगतः)।

सूतः—कुमार, समाश्वसिहि। समाश्वसिहि।

अश्वत्थामा—(लब्धसंज्ञः सास्रम्) हा तात, हा सुतवत्सल, हा लोकत्रयैकधनुर्धर, हा जामदग्न्यास्त्र सर्वस्वप्रतिग्रहप्रणयिन्, क्वासि। प्रयच्छ मे प्रतिवचनम्।

सूतः—कुमार, अलमत्यन्तशोकावेगेन। वीरपुरुषोचितानां विपत्तिमुपगते पितरि त्वमपि तदनुरूपेणैव वीर्येण शोकसागरमुत्तीर्य सुखी भव।

अश्वत्थामा—(अश्रूणि विमुच्य) आर्य, कथय कथय कथं तादृग्भुजवीर्यसागरस्तातोऽपि नामाऽस्तमुपगत।

किं भीमादगुरुदक्षिणां गुरुगदाद्भीमप्रियः प्राप्तवान्।

सूतः—शान्तं पापम्। शान्तं पापम्।

अश्वत्थामा—

अन्तेवासिदयालुरुज्झितनयेनासादितो जिष्णुना।

सूतः—कथमेवं भविष्यति।

अश्वत्थामा—

गोविन्देन सुदर्शनस्य नियतं धारापथ प्रापितः।

[जमदग्नरपत्यं पुमान् जामदग्न्यः परशुरामस्तस्यास्त्राण्येव सर्वस्वं तस्य प्रतिग्रहे स्वीकरे प्रणयो विद्यते अस्य तत्संबुद्धिः। विपत्ति मरणम्। तस्य पितुरनुरूपेण सदृशेन। [प्रतिग्रहो ग्रहणम्]।

किं भीमादिति शिष्याद्भीमात्। गुरुगदामेव गुरुदक्षिणाम् [गुरुगदादिति पाठे गुर्वी भीषणा महती वा गदा यस्य तस्मात्।] भीमः प्रियो मित्रं यस्य स तातः। अन्तेवासी शिष्यः। तद्विषये दयालुर्दयायुक्तः। उज्झितस्त्यक्तः नयो

अश्वत्थामा—(देखकर) अरे ! पिता का सारथि अश्वसेन ? आर्य तीनो लोको की रक्षा करने मे समर्थ (मेरे पिता) के सारथि हो। क्या मुझसे रक्षा चाहते हो ?

सूत—(उठकर करुणापूर्वक) अब तुम्हारे पिता कहाँ ?

अश्वत्थामा—(आवेग के साथ) क्या पिता ही नही रहे ?

सूत—और क्या ?

अश्वत्थामा—हाय तात ! (यह कहकर मूर्छित हो जाता है)।

सूत—कुमार, धैर्य रखिये, धैर्य रखिये।

अश्वत्थामा—(चेतना प्राप्त करके आंसू भरकर) हाय तात ! हाय पुत्र-वत्सल ! हाय तीनो लोको मे अद्वितीय धनुर्धर ! हाय परशुराम के अस्त्र-रूपी धन के लेने मे प्रेम रखने वाले ! तुम कहाँ हो ? मुझे प्रत्युत्तर दीजिए।

सूत—कुमार, अत्यन्त शोक के आवेग से बस करो। पिता के वीर पुरुष के योग्य मृत्यु पाने पर तुम भी उनके अनुरूप ही पराक्रम से शोक-सागर को तर कर सुखी होओ।

अश्वत्थामा—(आंसू बहाकर) आर्य बतलाओ, बतलाओ—कैसे (अधिक) भुज-बल का सागर, पिता भी कैसे मृत्यु को प्राप्त हो गया ?

क्या भीम से प्रेम करने वाले (पिता) ने भारी गदा वाले भीम से गुरु-दक्षिणा पा ली है ?

सूत—पाप शान्त हो, पाप शान्त हो।

अश्वत्थामा—(तो) उचित आचार का परित्याग करके जिष्णु (अर्जुन) ने शिष्य पर दयालु (पिता) को अभिभूत कर दिया है ?

सूत—ऐसा कैसे होगा ?

अश्वत्थामा—(तो) निश्चय ही गोविन्द (कृष्ण) ने सुदर्शन की धारा के पथ को प्राप्त करा दिया ?

[नीतिमार्गो गुरौभक्तिरेवोचिता न तु नृशंसत्वमित्येतद्रूप· येन।] जिष्णुणा

सूतः—एतदपि नास्ति ।

अश्वत्थामा—

शङ्कनापदमन्यतः खलु गुरोरेभ्यश्चतुर्थादहम् ॥९॥

सूतः—कुमार,

एतेऽपि तस्य कुपितस्य महास्त्रपाणेः
किं धूर्जटेरिव तुलामुपयान्ति संख्ये ।
शोकोपरुद्धहृदयेन यदा तु शस्त्रं
त्यक्तं तदास्य विहितं रिपुणाऽतिघोरम् ॥१०॥

अश्वत्थामा—किं पुनः कारणं शोकस्याऽस्त्रपरित्यागस्य वा ।

सूतः—ननु कुमार एव कारणम् ।

अश्वत्थामा—कथमहमेव नाम ।

सूतः—श्रूयताम् । (अश्रूणि विमुच्य) ।

अश्वत्थामा हत इति पृथासूनुना स्पष्टमुक्त्वा
स्वैरं शेषे गज इति किल व्याहृतं सत्यवाचा ।
तच्छ्रुत्वाऽसौ दयिततनयः प्रत्ययात्तस्य राज्ञः
शस्त्राण्याजौ नयनसलिलं चापि तुल्यं मुमोच ॥११॥

अश्वत्थामा—हा तात, हा सुतवत्सल, हा वृथामदर्थपरित्यक्तजीवित, हा शौर्यराशे, हा शिष्यप्रिय, हा युधिष्ठिरपक्षपातिन् । (इति रोदिति)

सूतः—कुमार, अलमत्यन्तपरिदेवनकार्पण्येन ।

अर्जुनेन । आसादितः मारित इत्यर्थः । नियतं निश्चितम् । सुदर्शनो हरिचक्रम् । चक्रं सुदर्शनं इत्यमरः । अन्यतोऽन्यस्मात् । खलु निश्चये ॥९॥

एतेऽपीति । एते भीमार्जुनकृष्णाः । संख्ये संग्रामे धूर्जटेर्हरस्य [इव कुपितस्य तस्य तुलामुपयान्ति किम् । नैवेत्यर्थः हृदयेनेत्याचार्यविशेषणं । [यदा तु शोकेनोपरुद्धं व्याप्तमिति यावत् हृदयं यस्य तेन आचार्येण शस्त्रं त्यक्तं तदा रिपुणा अस्य अतिघोरं विहितम् ।] अस्याचार्यस्य । अतिघोरं विनाशः । अस्त्रं काण्डादि शस्त्रं खड्गादि । इत्यनयोर्विशेषः । असु क्षेपणे । शसु हिंसायाम् । औणादि कष्ट्रन प्रत्ययः ॥१०॥

सूत—यह भी नही है।

अश्वत्थामा—इनसे अतिरिक्त किसी चौथे से मैं पिता की विपत्ति की आशङ्का नही करता ॥९॥

सूत—कुमार, क्या ये सब लोग भी, शिव के समान हाथ मे महान् अस्त्र धारण करने वाले, कुपित हुए उसका युद्ध मे सामना कर सकते हैं? लेकिन जब शोक से आक्रान्त हृदय वाले (आपके पिता) ने शस्त्र त्याग दिया, तब शत्रु ने इसके प्रति अतिदारुण कर्म किया ॥१०॥

अश्वत्थामा - लेकिन शोक अथवा शस्त्र-त्याग का क्या कारण था?

सूत—बस, कुमार ही कारण थे।

अश्वत्थामा—मैं ही कैसे?

सूत—सुनिये। (आँसू बहाकर)

सत्यवादी - पृथा के पुत्र युधिष्ठिर) ने 'अश्वत्थामा मारा गया, यह स्पष्ट कहकर (वाक्य के) शेष (भाग) मे 'गज' यह पद धीरे से कहा। उसे सुनकर उस राजा (युधिष्ठिर) के विश्वास से पुत्र को प्रेम करने वाले इसने युद्ध-भूमि में शस्त्र गिरा दिये और साथ ही आँसू भी गिराये ॥११॥

अश्वत्थामा—हाय तात! हाय पुत्रवत्सल, हाय! व्यर्थ ही मेरे कारण प्राण त्यागने वाला, हाय वीर्य-राशि! हाय युधिष्ठिर का पक्षपात करने वाले। (इस प्रकार विलाप करके रोता है)।

सूत—कुमार, अत्यधिक विलाप और कायरता से बस करो।

अश्वत्थामेति। पृथासूनुना युधिष्ठिरेण। स्वैरमल्पं [अस्पष्टमित्यर्थः]। शेषे वचनस्येति शेषः। किल निश्चये। व्याहृतमुक्तम्। असावाचार्य. दयितः प्रियः तनयः पुत्रो यस्य स तथा। प्रत्ययात्प्रतीतेः। आजौ संगामे। शस्त्राणि मुमोच अपि तुल्यं धनु.समकालं नयनसलिलं च मुमोचेत्यन्वयः। इहाभूताहरण-रूपः गर्भसन्धिः। यदाह—उक्तं युक्तं तु उद्वाक्यमभूताहरणं तु तत्। इति। अश्वत्थामा गजनाम् ॥११॥

अश्वत्थामा—

श्रुत्वा वधं मम मृषा सुतवत्सलेन
तात त्वया सह शरैरसवो विमुक्ताः ।
जीवाम्यहं पुनरयं भवता वियुक्तः
क्रूरेऽपि तन्मयि मुधा तव पक्षपातः ॥१२॥

(इति मोहमुपगतः)

सूतः—समाश्वसितु समाश्वसितु कुमारः ।

(ततः प्रविशति कृपः)

कृपः—(सोद्वेगं निःश्वस्य)

धिक् सानुजं कुरुपतिं धिगजातशत्रुं
धिग् भूपतीन्विफलशस्त्रभृतो धिगस्मान् ।
केशग्रहः खलु तदा द्रुपदात्मजाया
द्रौणस्य चाद्य लिखितैरिव वीक्षितो यैः ॥१३॥

तत्क्वं नु खलु वत्स द्रक्ष्याम्यश्वत्थामानम् । अथवा हिमवत्सारगुरुचेतसि ज्ञानलोकस्थितो तस्मिन्न खलु शोकावेगमहमाशङ्के । किं तु पितुः परिभवम- इशमुपश्रुत्य न जाने किं व्यवस्यतीति । अथवा—

एकस्य तावत्पाकोऽयं दारुणो भुवि वर्तते ।
केशग्रहे द्वितीयेऽस्मिन्नूनं निःशेषिताः प्रजाः ॥१४॥

[युधिष्ठिरे पक्षपातो विद्यते अस्य । कार्पण्येन वैक्लव्येन । प्राकृतजनवच्छो- कवशो मा भूरित्यर्थः ।]

श्रुत्वेति [मृषा मिथ्या मम वधं श्रुत्वा ।] असवः प्राणाः ॥१२॥

ततः प्रविशति कृप इति । अत्र सूचनाव्यतिरेकेणैव प्रवेश इति प्रवेशे सूचना व्यभिचरतीत्यवधेयम् ।

धिक्सानुजमिति । सानुजमिति धिग्योगे द्वितीया । जातशत्रुं युधिष्ठिरम्

अश्वत्थामा—हे तात, पुत्र को प्रेम करने वाले आपने मेरे वध की झूठी बात सुनकर बाणों के साथ (ही) प्राण भी त्याग दिये। लेकिन यह मैं आपसे वियुक्त होकर भी जीवित हूँ इसलिये मुझ निर्दयी पर आपका पक्षपात व्यर्थ ही था ॥१२॥

(यह कहकर मूर्छित हो जाता है)

सूत—कुमार धैर्य रखिये, धैर्य रखिये।

(तत्पश्चात् कृप प्रवेश करता है)

कृप—(उद्वेगपूर्वक लम्बा साँस लेकर)

अनुजों सहित कुरुपतियों को धिक्कार है; अजातशत्रु (युधिष्ठिर) को धिक्कार है; राजाओं को धिक्कार है; निरर्थक शस्त्र धारण करने वाले हमको धिक्कार है; जिन्होंने चित्र-लिखित के समान तब द्रुपद की पुत्री के और आज द्रोण के केश-ग्रहण को देखा है ॥१३॥

तो पुत्र अश्वत्थामा को कैसे देख सकूँगा? अथवा हिमालय के समान बल-शाली और उदार चित्त वाले तथा लोकमर्यादा को जानने वाले उस (अश्वत्थामा) मे मुझे शोक के आवेग की आशङ्का नहीं करनी चाहिये। किन्तु पता नहीं कि पिता के अनुचित अपमान को सुनकर वह क्या कर डाले? अथवा—

एक (केश-ग्रहण) का तो पृथ्वी पर यह (महाभारत रूप) भयङ्कर परिणाम है। इस द्वितीय केशग्रहण होने पर निश्चय ही समस्त प्रजा नष्ट हो जायेगी ॥१४॥

[विफलानि शस्त्राणि बिभ्रतीति तान्] खलु प्रसिद्धौ निश्चये वा। द्रौपद्याः केशग्रहस्तथाद्य द्रोणस्य च यैः [लिखितश्चित्रगतैरिव] वीक्षित इत्यन्वयः ॥१३॥
[हिमवतः सार.] हिमवत्सरो हिमालयबलम्। [सद्वद् गुरु स्थिर चेतो यस्य।] स्थितिः स्थैर्यम्। [मर्यादा व्यवस्था वा।] तस्मिन्नश्वत्थामनि। व्यवस्यति करोति।

एकस्येति एकस्य [द्रौपद्याः] केशग्रहस्य। तावच्छब्द उपक्रमे। निःशेषिता विनष्टाः। इहाक्षिप्तरूपो गर्भसन्धिः। यदाह—बीजयस्योच्छेदनं यत्तु तदाक्षिप्त-मुदाहृतम् ॥१४॥

(विलोक्य) तदयं वत्सस्तिष्ठति । यावदुपसर्पामि । (उपसृत्य ससंभ्रमम्) । वत्स, समाश्वसिहि, समाश्वसिहि ।

अश्वत्थामा—(संज्ञां लब्ध्वा सास्रम्) हा तात, हा सकलभुवनैकगुरो । (आकाशे) युधिष्ठिर, युधिष्ठिर,

आजन्मनो न वितथं भवता किलोक्तं
न द्वेक्षि यज्जमनतस्त्वमजातशत्रुः ।
ताते गुरौ द्विजवरे मम भाग्यदोषा-
त्सर्वं तदेकपद एव कथं निरस्तम् ॥१५॥

सूतः—कुमार, एष ते मातुलः शारद्वतः पार्श्वे तिष्ठति ।

अश्वत्थामा—(पार्श्वे विलोक्य सबाष्पम्) मातुल, मातुल,

गतो येनाद्य त्वं सह रणभुवं सैन्यपतिना
य एकः शूराणां गुरुसमरकण्डूनिकषणः ।
परिहासाश्चित्राः सततमभवन्येन भवतः
स्वसुः श्लाघ्यो भर्ता क्व नु खलु स ते मातुल गतः ॥१६॥

कृपः—परिगतपरिगन्तव्य एव भवान् । तदलमत्यन्तशोकावेगेन ।

अश्वत्थामा—मातुल, परित्यक्तमेव मया परिदेवनम् । एषोऽहं सुतवत्सलं तातमेवानुगच्छामि ।

कृपः—वत्स, अनुपपन्नं भवद्विधानामिदम् ।

सूतः—कुमार, अलमतिसाहसेन ।

अश्वत्थामा—आर्य शारद्वत,

आजन्मन इति । आजन्मनो जननादारभ्य । वितथमसत्यम् । किल प्रसिद्धौ । यत्त्वं जनं द्वेक्षि । द्वेषविषयं करोषि, तत्सर्वं मम भाग्यदोषात् दैवानुकूल्याभावात् । त्वयेति शेषः । कथं निरस्तं दूरीकृतम् ।] ॥१५॥

[शारद्वतः पुत्रः] शारद्वतः कृपः ।

(देखकर) तो यह वत्स अश्वत्थामा खड़ा है। समीप जाता हूँ (समीप जाकर घबराहट के साथ) वत्स, धैर्य रक्खो, धैर्य रक्खो।

अश्वत्थामा—(चेतना पाकर आँसू भरे हुए) हाय तात! हाय सम्पूर्ण संसार के प्रधान गुरु! (आकाश की ओर देखकर) युधिष्ठिर! युधिष्ठिर,

जन्म से लेकर आपने (कभी) झूठ नही बोला क्योकि तुम लोगो से द्वेष नही करते हो, इसलिये तुम अजातशत्रु (कहलाते हो); लेकिन मेरे भाग्य के दोष से (तुमने) आचार्य और श्रेष्ठ ब्राह्मण (मेरे) पिता के विषय मे यह सब गुण एकदम कैसे छोड़ दिये ॥१५॥

सूत—कुमार, तुम्हारे मामा शारद्वत समीप मे खडे हैं।

अश्वत्थामा—(पार्श्व मे देखकर आँसुओं के साथ) मामा, मामा?

जिस सेनापति के साथ आज युद्ध-भूमि मे गये थे; जो अकेला ही वीरों की युद्ध की भारी खुजली को मिटा देने वाला था; जिसके साथ हमेशा आपके अनोखे हँसी मजाक हुआ करते थे; आपकी बहन का प्रशंसनीय पति वह हे मामा, कहाँ चला गया? ॥१६॥

कृप—आप सब ज्ञातव्य जानते ही है। इसलिये बहुत शोक के आवेग से बस कीजिये।

अश्वत्थामा—मातुल, मैंने विलाप छोड़ ही दिया। अब मै भी पुत्र-प्रेमी पिता का ही अनुगमन करता हूँ।

कृप—वत्स, आप जैसों के लिये यह उचित नही है।

सूत—कुमार, दुःसाहस न करो।

अश्वत्थामा—आर्य शारद्वत,

गत इति। येन सैन्यपतिना सह अद्य त्वं रणभुवं गतः। यः एकः धूराणां। गुर्वी या समरस्य युद्धस्य कण्डूः भुजयोः कण्डूतिस्तस्या निकषणः। कण्डूनिकषण कण्डूनिवारणः [येन सह भवतः चित्राः। परिहासा नर्मभाषणानि सततम् अभवन्। हे मातुल सः ते स्वसुर्भगिन्याः श्लाघ्यो भर्ता। क्व नु कुत्र नु खलु गतः। खलुः प्रश्ने ॥१६॥

परिगतं ज्ञातं परिगन्तव्यं ज्ञातव्यं येन स तथा। परिवेदितं विलापः।

मद्वियोगभयात्तातः परलोकमितो गतः ।
करोमि विरहं तस्य वत्सलस्य कथं पितुः ॥१७॥

कृपः वत्स, यावदयं संसारस्तावत्प्रसिद्धैवेयं लोकयात्रा यत्पुत्रैः पितरो लोकद्वयेऽप्यनुवर्तनीया इति । पश्य—

निवापाञ्जलिदानेन केतनैः श्राद्धकर्मभिः ।
तस्योपकारे शक्तस्त्वं किं जीवन्किमुतान्यथा ॥१८॥

सूतः—आयुष्मन्, यथैव मातुलस्ते शारद्वत. कथ्यति तत्तथा ।

अश्वत्थामा—आर्य, सत्यमेवेदम् । किं त्वतिदुर्वहत्वाच्छोकभारस्य न शक्नोमि तातविरहितः क्षणमपि प्राणान्धारयितुम् । तद्गच्छामि तमेवोद्देशं यत्र तथाविधमपि पितरं द्रक्ष्यामि (उत्तिष्ठन् खड्गमालोक्य विचिन्त्य) कृतमद्यापि शस्त्रग्रहणविडम्बनया । भगवन् शस्त्र,

गृहीतं येनासीः परिभवभयान्नोचितमपि
प्रभावाद्यस्याभून्न खलु तव कश्चिन्न विषयः ।
परित्यक्तं तेन त्वमसि सुतशोकान्न तु भया-
द्विमोक्ष्ये शस्त्र त्वामहमपि यत. स्वस्ति भवते ॥१९॥

(इति उत्सृजति)

(नेपथ्ये)

भो भो राजानः, कथमिह भवन्तः सर्वे गुरोर्भारद्वाजस्य परिभवममुना नृशंसेन प्रयुक्तमपेक्षन्ते ।

मदिति । अविरह समाजं [साहित्यमित्यर्थः] ॥१७॥

लोकद्वये इहलोके परलोके च [अनुवर्तनीया आनुकुल्येनानुसर्तव्याः इहलोकस्थिते पितरि साहशचरणेन परलोकगते श्राद्धादिकर्मणेत्यर्थः ।]

निवापेति । निवापः पितृदानं स्यात् इत्यमरः । निवापाञ्जलिर्जलाञ्जलि [तस्य तर्पणादिषु दानेन] केतनैर्गृहैः [केतनैः ब्रह्मभोजैरित्यर्थः साधीयान् । अथ केतनं कृत्ये । इत्यमरः । श्राद्धकर्मभिः च तस्योपकारे त्वं किं जीवन् शक्तः ।] किमुतान्यथाऽजीवन्वा शक्तः । अपि तु जीवता जलादिदानमेव

मेरे विरह के भय के कारण पिता यहाँ से परलोक चले गये । (तब) मैं उस प्रणयी पिता का वियोग कैसे सहन कर सकता हूँ ॥१७॥

कृप—वत्स जब तक यह ससार है तब तक यह लोक-व्यवहार भी रहेगा कि—पुत्र दोनों लोकों मे ही पितरों के अनुकूल आचरण करें । देखो—

तुम जलाञ्जलि-दान ब्राह्मण-भोज और श्राद्ध-कर्म द्वारा उसके उपकार में जीवित रहते हुए समर्थ हो सकते हो अथवा अन्यथा अनुगमन करके) ॥१८॥

सूत—आयुष्मन्, तुम्हारे मामा शारद्वत जैसा कह रहे है, वह ठीक है ।

अश्वत्थामा—आर्य, यह सच ही है । परन्तु दुःख-भार के अत्यधिक असह्य होने के कारण पिता से वियुक्त मै क्षणभर भी प्राण-धारण नहीं कर सकता । तब उस ही जगह जाता हूँ जहाँ उस दशा में वर्तमान (मृत) भी पिता को देख सकूँ । (उठते हुए तलवार को देखकर और सोचकर) अब शस्त्र धारण करने के उपहास से बस करना चाहिये । भगवन् शस्त्र,

जिसने उचित न होते हुए भी अपमान के भय से तुम्हे धारण किया था और जिसके प्रभाव से कोई तुम्हारा विषय नही हुआ, यह बात नही थी, क्योंकि उसने पुत्र के शोक के कारण, न कि भय के कारण, तुम्हे छोड़ दिया है, इसलिये हे शस्त्र, मैं भी तुम्हें छोड़ रहा हूँ । आपका कल्याण हो ॥१९॥

(यह कहकर छोड देता है)

(नेपथ्य मे)

हे राजा लोगों यहाँ खड़े आप लोग इस क्रूर द्वारा किये गये आचार्य भारद्वाज (द्रोण) के अपमान की कैसे उपेक्षा कर रहे है ?

म्रियत इति भावः ॥११८॥

गृहीतमिति । येनाचार्येण । [परिभवो विमानना तस्य भयाद् । नोचितमपि गृहीतमासीः । यतः शस्त्र द्विजातिभिर्ग्राह्यं धर्मो यत्रावरुध्यते इति स्मरणात् ।] यस्याचार्यस्य प्रभावात् । तव विषय. कश्चिन्नाभूदेवं खलु । सर्व एव विषयोऽभूदित्यर्थ' । तेन त्वं सुतशोकात्परित्यक्तमसि न तु भयात् । हे शस्त्र यतः अहमपि । विमोक्ष्ये त्यक्ष्यामि । अतो भवते स्वस्त्यस्तु । स्वस्तियोगे नमः स्वस्ति-इत्यादिना चतुर्थी ॥१९॥

अश्वत्थामा—(आकर्ण्य शनैः शनैः शस्त्रं स्पृशयन्) किं गुरोर्भारद्वाजस्य परिभवः ।

(पुनर्नेपथ्ये)

आचार्यस्य त्रिभुवनगुरोर्न्यस्तशस्त्रस्य शोकाद्-
द्रोणस्याजौ नयनसलिलक्षालितार्द्राननस्य ।
मौलौ पाणिं पलितधवले न्यस्य कृत्वा नृशंसं
धृष्टद्युम्नः स्वशिबिरमयं याति सर्वे सहध्वम् ॥२०॥

अश्वत्थामा—(सक्रोधं सकम्पं च कृपसूतौ दृष्ट्वा) किं नामेदम् ?

प्रत्यक्षमात्तधनुषां मनुजेश्वराणां
प्रायोपवेशसदृशं व्रतमास्थितस्य ।
तातस्य मे पलितमौलिनिरस्तकाशे
व्यापारितं शिरसि शस्त्रमशस्त्रपाणेः ॥२१॥

कृपः—वत्स एवं किल जनः कथयति ।

अश्वत्थामा—किं तातस्य दुरात्मना परिमृष्टममूर्धिरः ।

सूतः—(सभयम्) कुमार, आसीदय तस्य तेजोराशेर्दैवस्य नवः परिभवावतार ।

अश्वत्थामा—हा तात, हा पुत्रप्रिय । मम मन्दभागधेयस्य कृते शस्त्रपरित्यागात्तथाविधेन क्षुद्रेणात्मा परिभावितः । अथवा—

परित्यक्ते देहे रणशिरसि शोकान्धमनसा
शिरः श्वा काको वा द्रुपदतनयो वा परिमृशेत् ।

उत्सृजति त्यजति । भारद्वाजस्य द्रोणस्य । नृशंसेन पापवता । नृशंसो घातुकः क्रूरः पापः इत्यमरः ।

आचार्यस्येति । शोकात् न्यस्तं त्यक्तं [शस्त्रं येन तस्य । नयनसलिलैरश्रुभिः क्षालितमतएवार्द्रमाननं यस्य ।] पलितं जरसा शौक्ल्यम् इत्यमरः । नृशंसं विनाशम् । विनाशेऽपि नृशसः स्यात् इति हारावली ॥२०॥

प्रत्यक्षमिति । आत्तं गृहीतं [धनुर्यैस्तेषाम् । मनुजेश्वराणां] नृपाणां प्रत्यक्षं

अश्वत्थामा—(सुनकर धीरे-धीरे शस्त्र को छूते हुए) क्या ? गुरु भारद्वाज का अपमान ?

(पुनः नेपथ्य में)

युद्ध में शोक के कारण शस्त्र त्यागे हुए आँसुओं से घुले (अतः) गीले मुख वाले, तीनों लोकों के गुरु, आचार्य द्रोण के पलित (सफेद बालों) से धवल सिर पर हाथ रखकर क्रूर कर्म करके यह धृष्टद्युम्न अपने शिविर को जा रहा है। (और) तुम सब (इसे) सह रहे हो ॥२०॥

(क्रोधपूर्वक काँपते हुए, सूत और कृप को देखकर) क्या यह हुआ है ?

धनुर्धारी राजाओं के सामने उपवास सदृश व्रत लिये हुए और शस्त्रहीन हाथों वाले मेरे पिता के धवल केशों से काश को तिरस्कृत करने वाले सिर पर शस्त्र चलाया ? ॥२१॥

कृप—वत्स लोग ऐसा ही कह रहे हैं।

अश्वत्थामा – क्या दुष्ट ने पिता के सिर को छुआ ?

सूत—(डरते हुए) कुमार तेजोराशि देव का यह नूतन अपमान था।

अश्वत्थामा—हाय तात! हाय पुत्र-वत्सल ! मुझ भाग्यहीन के लिये शस्त्र-त्याग के कारण ऐसे क्षुद्र से अपना अपमान कराया। अथवा—

युद्ध में दुःख से अचेतन मन से देह त्याग देने पर सिर को कुत्ता या कौवा या द्रुपद-पुत्र (धृष्टद्युम्न) (चाहे कोई भी) छू सकता था। यह तो चमकते हुए

समक्षम् [प्रायोपवेशसदृशं व्रतमास्थितस्य अशस्त्रपाणेः मे तातस्य पलितमौलि-निरस्तकाशे शिरसि शस्त्रं व्यापारितम् इत्यन्वयः।] प्रायोपवेश उपवासार्थमुप-वेशनम्। तत्सदृशं च यथा स्यादेवम्। तत्रापि निष्क्रियेणोपविश्यते। [illegible] तथेति भावः। पलितो जराशुक्लो यो मौलिर्धम्मिल्लस्तेन निरस्तो निरः काशः काशकुसुमं येन तत्र। मौलिः किरीटे धम्मिल्ले इति विश्वः। [पलितमौलिनिमि-लिताक्षे इति पाठान्तरं पलितः मौलिर्यस्य तत्पलितमौलि च निमीलिते अक्षिणी यस्य तन्निमीलिताक्षं च तस्मिन्] ॥२१॥

परित्यक्त इति। मनसा त्वयेति शेषः। श्वा: कुक्कुरः। [illegible] दिव्यानि अस्त्राणि तेषामोघः।] अस्त्रौघ एव द्रविणं धनं [illegible]

स्फुरद्दिव्यास्त्रौघद्रविणमदमत्तस्य च रिपो-
र्ममैवायं पादः शिरसि निहितस्तस्य न करः ॥२२॥

आः दुरात्मन्पाञ्चालापसद,

तातं शस्त्रग्रहणविमुखं निश्चयेनोपलभ्य
त्यक्त्वा शङ्कां खलु विदधतः पाणिमस्योत्तमाङ्गे ।
अश्वत्थामा करधृतधनुः पाण्डुपाञ्चालसेना-
तूलोत्क्षेपप्रलयपवनः किं न यातः स्मृतिं ते ॥२३॥

युधिष्ठिर, युधिष्ठिर, अजातशत्रो, अमिथ्यावादिन्, धर्मपुत्र, सानुजस्य ते किमनेनापकृतम् । अथवा किमनेनालोकप्रकृतिजिह्मचेतसा । अर्जुन सात्यके, बाहुशालिन्वृकोदर, माधव, युक्तं नाम भवतां सुरासुरमनुजलोकैकधनुर्धरस्य द्विजन्मनः परिणतवयसः सर्वाचार्यस्य विशेषतो मम पितुरमुना द्रुपदकुलकलङ्केन मनुजपशुना स्पृश्यमानमुत्तमाङ्गमुपेक्षितम् । अथवा सर्वं एवैते पातकिनः । किमेतैः ।

कृतमनुमतं दृष्टं वा यैरिदं गुरुपातकं
मनुजपशुभिर्निर्मर्यादैर्भवद्भिरुदायुधैः ।
नरकरिपुणा सार्धं तेषां सभीमकिरीटिना-
मयमहमसृङ्मेदोमांसैः करोमि दिशां बलिम् ॥२४॥

मदो गर्वस्तेन मत्तस्य । अयं पितुः शिरसि करो निहितः । किंतु ममैव शिरसि पादो निहित इत्यन्वयः ॥२२॥

तातमिति । उपलभ्य ज्ञात्वा । शङ्कां शत्रुकृतमारणोद्दिशङ्काम् । खलु प्रसिद्धौ उत्तमाङ्गं शिरः शीर्षम् इत्यमरः । [विदधतो व्यापारयतः पाण्डूनां पाञ्चालानां च सेना एव तूलः तस्य उत्क्षेपे प्रलयपवनः कल्पान्तमारुतः लीलयैव तदुच्छेदकारी इत्यर्थः [अश्वत्थामा तव स्मृतिं किं न यातः ॥२३॥

अजातशत्रुणा किम्, अपि तु न किमपि । कीदृशेन । अलीकेनासत्येन

दिव्य शस्त्र-समूह रूपी धन के मद मे मत्त हुए शत्रु का पैर ही मेरे सिर पर रक्खा गया, उसके (पिता के) सिर पर हाथ नहीं ॥२२॥

ओह ! दुष्ट, अधम पाञ्चाल,

पिता को निश्चित रूप से शस्त्र-ग्रहण से पराङ्मुख जानकर, (इसलिये) भय छोड़कर इसके सिर पर हाथ डालते हुए तुझे क्या हाथ में धनुष धारण करने वाला और पाण्डु तथा पाञ्चाल सेना रूपी रुई को उड़ा देने में प्रलय-काल का पवन, अश्वत्थामा याद नहीं आया ॥२३॥

युधिष्ठिर ! युधिष्ठिर ! अजातशत्रु ! सत्यवादी ! धर्मपुत्र ! अनुज सहित तेरा इसने क्या बिगाड़ा था ? अथवा इस झूठे और स्वभाव में कुटिल चित्त वाले से क्या (अपेक्षा की जा सकती थी) ? अर्जुन ! सात्यकि ! बाहु-शाली भीम ! माधव ! क्या आप लोगों को इस द्रुपद कुल के कलङ्क, मनुष्य-पशु द्वारा छुए जाते, सुर, असुर और मनुष्य लोक मे अद्वितीय धनुर्धर, ब्राह्मण, वृद्ध, सब के गुरु और विशेषकर मेरे पिता के सिर की उपेक्षा करना उचित था ? अथवा ये सब के सब पातकी है। इनसे क्या (अपेक्षा ?)

जिन मर्यादाहीन शस्त्र धारण करने वाले मनुष्य रूप में वर्तमान पशु, आप लोगों ने यह महान् पातक किया है अथवा उसकी अनुमति दी है, अथवा उसे होते देखा है नरक रिपु (कृष्ण) के साथ-साथ भीम और अर्जुन सहित उन सबके रुधिर चर्बी और मांस से मैं दिशाओं को बलि दिये देता हूँ ॥२४॥

[प्रकृतिवत्] इतरजनवत्कुटिलं चेतो यस्य तेन । [अलीका या प्रकृतिस्तया जिह्मं चेतो यस्येति वा । सुरासुरमनुजाना लोकस्तेषु एकधनुर्धरस्तस्य ।]

कृतमिति । [यैः निर्गता मर्यादा येभ्यस्तैः, निर्मर्यादैः उद्‌गतानि आयुधानि येषा तैः उदायुधैः । प्रतिकर्तुं समर्थैरपीति यावत् । मनुजपशुभिः भवद्भिः इदं गुरुपातक कृतमनुमतं दृष्टं वा । नरकरिपुणा सार्धं सभीमकिरीटिनां तेषा असृङ्मेदोमांसैः अयमहं दिशां बलिं करोमि इत्यन्वयः ।] गुरु महच्च तत्पातक च नरकरिपुः कृष्ण. । असृक्‍रक्तं । मेदो मज्जा । बलिमुपहारम् । बलिः पूजोपहारयोः इति शाश्वतः ॥२४॥

कृप—वत्स, किं न संभाव्यते भारद्वाजतुल्ये बाहुशालिनि दिव्यास्त्रग्रामकोविदे भवति ।

अश्वत्थामा—भो भो, पाण्डवमत्स्यसोमकमागधाद्याः क्षत्रियापसदाः,

पितुर्मूर्ध्नि स्पृष्टे ज्वलदनलभास्वत्परशुना
कृतं यद्रामेण श्रुतिमुपगतं तन्न भवताम् ।
किमद्याश्वत्थामा तदरिरुधिरासारविघसं
न कर्म क्रोधान्ध प्रभवति विधातुं रणमुखे ॥२५॥

सूत, गच्छ त्वं सर्वोपकरणं साङ्ग्रामिकं सर्वायुधैरुपेतं महाहवलक्षणं नामास्मत्स्यन्दनमुपनय ।

सूत.—यदाज्ञापयति कुमारः । (इति निष्क्रान्तः)

कृपः—वत्स, अवश्यप्रतिकर्तव्येऽस्मिन्दारुणे परिभवाग्नौ सर्वेषामस्माकं कोऽन्यस्त्वामन्तरेण शक्तः प्रतिकर्तुम् । किंतु-

अश्वत्थामा—किमतः परम् ।

कृपः—सैनापत्येऽभिषिक्तं भवन्तमिच्छामि समरभुवमवतारयितुम् ।

अश्वत्थामा—मातुल, परतन्त्रमिदमकिंचित्करं च ।

कृपः—वत्स: न खलु परतन्त्रं नाकिंचित्करं च । पश्य—

भवेदभीष्ममद्रोणं धार्तराष्ट्रबलं कथम् ।
यदि तत्तुल्यकर्माऽत्र भवान्धुरि न युज्यते ॥२६॥

ग्राम संघः । कोविदः पण्डितः ।

पितुरिति । [पितुर्जमदग्नेर्मूर्ध्नि कार्तवीर्यस्य पुत्रैः स्पृष्टे सति] । यद् [ज्वलन् योऽनलस्तद्वद्भास्वान परशुर्यस्य तेन रामेण परशुरामेण कृतं क्षत्रियजनघातादिकं तद्भवतां किं श्रुतिपथं न गतम् । पितुर्मूर्ध्नि द्रुपदेन स्पृष्टे सति अश्वत्थामा किमद्यापि तत्कर्म विधातुं न प्रभवति अपि तु प्रभवत्येव । [अरिरुधिरस्यासार एव] विघसो भोजनविशेषः [यस्मिन् तत्] । अग्रूनं विघसो यज्ञशेषभोजनशेषयो इत्यमर ॥२५॥

कृप—वत्स, भारद्वाज के समान, बाहुशाली, दिव्य अस्त्र समूह में चतुर आप मे क्या सम्भव नही है ?

अश्वत्थामा—हे पाण्डव, मत्स्य, सोमक और मागध आदि अधम क्षत्रियों, पिता के सिर के छुये जाने पर जलती हुई अग्नि के समान चमकते हुये परशु वाले राम (परशुराम) ने जो कर्म किया था, क्या वह आप लोगों के कान मे नही पहुँचा है ? क्या आज क्रोध से अन्धा हुआ अश्वत्थामा युद्ध के मोर्चे पर उस कर्म को, जिसमे शत्रुओं के रुधिर की वर्षा ही विघस (पितरों को दिया जाने वाला अन्न) है, करने मे समर्थ नही है ॥२५॥

सूत, तुम जाओ और सब साधनों तथा युद्ध के अस्त्रों से युक्त हमारे 'महा-हवलक्षण' नाम के रथ को लाओ।

सूत—कुमार जो आज्ञा दें। (यह कहकर बाहर जाता है)

कृप—वत्स, इस अपमान रूपी अग्नि का, जिसका अवश्य ही प्रतीकार करना चाहिये, हम सब में तुम्हारे अतिरिक्त और कौन प्रतीकार कर सकता है ? किन्तु—

अश्वत्थामा—तो इससे अधिक क्या ?

कृप—सेनापति के पद पर अभिषिक्त हुये ही आपको युद्धभूमि में उतारना चाहता हूँ।

अश्वत्थामा—मातुल, यह दूसरे के अधीन है और महत्वपूर्ण भी नहीं है।

कृप—वत्स, (यह) न पराधीन है और न ही अमहत्वपूर्ण। देखो,

यदि उन (भीष्म और द्रोण) के समान कर्म करने वाले आपको यहाँ धुरी (सेना-सञ्चालन के पद) पर न लगाया जायेगा तो भीष्म और द्रोण से रहित धृतराष्ट्र के पुत्र की सेना कैसे रह सकेगी ॥२६॥

संग्रामिकैः [संग्रामाय प्रभवन्ति सांग्रामिकाणि। तस्मै प्रभवति सन्तापादिभ्यः इति ठञ्। निकारेति पाठे] निकारस्य परिभवस्य। निकारः स्यात्परिभवः इति विश्वः। सेनापतेर्भावः सैनापत्यम्।

भवेदिति। धार्तराष्ट्रबल कथं भवेत्कि भवेदित्यर्थः। [तयोः तुल्यं कर्म यस्य। वक्ष इति पाठे वक्षा पराक्रमावकाश- यस्य।] अत्र धुरि धुरायाम् ॥२६॥

कृतपरिकरस्य भवादृशस्य त्रैलोक्यमपि न क्षमं परिपन्थीभवितुं किं पुनरयुधिष्ठिरबलम् । तदेवं मन्ये परिकल्पिताभिषेकोपकरणं कौरवराजो न चिरात्त्वामेवाभ्यपेक्षमाणस्तिष्ठतीति ।

अश्वत्थामा—यद्येवं त्वरते मे परिभवानलदह्यमानमिदं चेतस्तत्प्रतीकारजलावगाहनाय । तदहं गत्वा तातवधविषण्णमानसं कुरुपतिं सैनापत्यस्वयंग्रहणप्रणयसमाश्वासनया मन्दसंतापं करोमि ।

कृप—वत्स, एवमिदम् । अतस्तमेवोद्देशं गच्छावः ।

(इति पराक्रमतः)

(ततः प्रविशतः कर्णदुर्योधनौ)

दुर्योधनः—अङ्गराज,

तेजस्वी रिपुहतबन्धुदुःखपारं
बाहुभ्यां व्रजति धृतायुधप्लवाभ्याम् ।
आचार्यः सुतनिधनं निशम्य संख्ये
किं शस्त्रग्रहसमये विशस्त्र आसीत् ॥२७॥

अथवा सूक्तमिदमभियुक्तैः प्रकृतिर्दुस्त्यजेति । यतः शोकान्धमनसा तेन विमुच्य क्षात्रधर्मकाकश्यं द्विजातिधर्मसुलभो मार्दवपरिग्रहः कृतः ।

कर्ण—राजन् कौरवेश्वर, न खल्विदमेवम् ।

दुर्योधनः कथं तर्हि ।

कर्ण—एवं किलास्याभिप्रायो यथा अश्वत्थामा मया पृथिवीराज्ये अभिषेक्तव्य इति । तस्याभावद् वृद्धस्य मे ब्राह्मण्ये वृथा शस्त्रग्रहणमिति तथा कृतवान् ।

दुर्योधनः—(सशिरःकम्पम्) एवमिदम् ।

परिकरः पुरस्कारः । परिपन्थिभवितुम् । प्रतियोद्धुमित्यर्थः । परिकल्पितानि अभिषेकस्य] उपकरणानि सामग्री [येन सैनापत्यस्य स्वयंग्रहणं तस्य प्रणयो याञ्चा तेन समाश्वासना सान्त्वनं तया ।

उद्देशं प्रदेशम् ।

तेजस्वीति पुरुषः पारं [दुःखसागरस्य परतीरं । धृतः आयुधमेव प्लवो

दृढ निश्चय किये हुए आप जैसे का तीनों लोक भी सामना नही कर सकते, फिर युधिष्ठिर की सेना तो क्या ? इसलिये मैं तो ऐसा समझता हूँ कि अभिषेक की सामग्री तैयार करके कौरव-राज अब तुम्हारी ही प्रतीक्षा कर रहा है ।

अश्वत्थामा—यदि ऐसा है, तो अपमान के अनल से जलता हुआ, यह मेरा मन भी प्रतिशोध के जल मे प्रवेश करने के लिये उतावला हो रहा है । इसलिए मैं चलकर पिता के वध से दुःखित चित्त वाले कुरुनाथ को स्वयं सेनापति-पद स्वीकार करने की प्रार्थना मे सान्त्वना देकर उसके सन्ताप को दूर करूं ।

कृप—वत्स, ऐसा ही होना चाहिए । इसलिए उस ही स्थान पर चलें ।

(दोनों घूमते हैं)

(तत्पश्चात् कर्ण और दुर्योधन प्रवेश करते है)

दुर्योधन—अङ्गराज,

तेजस्वी (पुरुष) आयुध रूपी नौका धारण की हुई भुजाओं से शत्रु द्वारा मारे गये प्रिय जन के शोक को पार किया करता है । आचार्य पुत्र की मृत्यु को सुनकर युद्ध मे शस्त्र-ग्रहण के समय शस्त्र-हीन क्यों हो गये ॥२७॥

अथवा सयाने लोगो ने ठीक कहा है—'स्वभाव नहीं छोड़ा जा सकता ।' क्योंकि शोक से आक्रान्त हृदय वाले उस (आचार्य) ने क्षात्र धर्म की कठोरता को छोड़कर ब्राह्मण-धर्म सुलभ मृदुलता अपना ली ।

कर्ण—राजन्, कौरवाधिपति, यह बात नही थी ।

दुर्योधन—तब—फिर क्यों ?

कर्ण—उसका आशय यह था—'मैं पृथ्वी के राज्य पर अश्वत्थामा को अभिषिक्त करूंगा ।' उसके न रहने पर मुझ वृद्ध ब्राह्मण का शस्त्र धारण करना व्यर्थ है' यह विचार कर उसने वैसा किया है ।

दुर्योधन—(सिर हिलाते हुए) ऐसा ही है ।

याभ्यां ताभ्यां] बाहुभ्यां व्रजतीत्यन्वयः । प्लव. कोलः । उडुपं तु प्लवः इत्यमरः । निशम्य श्रुत्वा । सख्ये संग्रामे ।

सूक्तं शोभनमुक्तमभियुक्तैर्नीतिज्ञैः । शोकेनान्ध युक्तायुक्तविवेकासमर्थं मनो यस्य तेन । क्षत्रस्यायं क्षात्रो धर्मस्तस्य तत्सम्बन्धि कार्कश्यं काठिन-

कर्ण.—एतदर्थं च कौरवपाण्डवपक्षपातप्रवृत्तमहासङ्ग्रामस्य राजकस्य परस्परक्षयमपेक्षमाणेन तेन प्रधानपुरुषवध उपेक्षा कृता ।

दुर्योधनः—उपपन्नमिदम् ।

कर्णः—अन्यच्च, राजन्, द्रुपदेनाप्यस्य बाल्यात्प्रभृत्यभिप्रायवेदिना न स्वराष्ट्रेवासो दत्त. ।

दुर्योधनः—साधु, अङ्गराज, साधु । निपुणमभिहितम् ।

कर्णः—न चायं ममैकस्याभिप्रायः । अन्येऽभियुक्ता अपि नैवेदमन्यथा मन्यन्ते ।

दुर्योधनः—एवमेतत् । कः सन्देह ।

दत्त्वाभयं सोऽतिरथो वध्यमानं किरीटिना ।
सिन्धुराजमुपेक्षेत नैवं चेत्कथमन्यथा ॥२८॥

कृपः—(विलोक्य) वत्स, एष दुर्योधनः सूतपुत्रेण सहास्यां न्यग्रोधच्छायामुपविष्टस्तिष्ठति तदुपसर्पाव. ।

(तथा कृत्वा)

उभौ—विजयतां कौरवेश्वरः ।

दुर्योधनः—(दृष्ट्वा) अये, कथं कृपोऽश्वत्थामा च । (आसनादवतीर्य कृपं प्रति) गुरो ! अभिवादये । (अश्वत्थामानमुद्दिश्य) आचार्यपुत्र,

एह्यस्मदर्थहततात परिष्वजस्व
क्लान्तैरिदं मम निरन्तरमङ्गमङ्गैः ।
स्पर्शस्तवैष भुजयोः सदृशः पितुस्ते
शोकेऽपि यो महति निर्वृतिमादधाति ॥२९॥

हृदयताम् ।] न खल्विति । इदमेव न वाच्यमित्यर्थः । "किल प्रसिद्धौ तथा शस्त्रत्यागम् [परस्परेण क्षयमपेक्षमाणेन । उपेक्षा कृता · उदासीनेन स्थितम् ।] बाल्यात्प्रभृति शैशवादारभ्य ।

दत्त्वेति । सोऽतिरथः महारथ. द्रोणोऽभयं दत्त्वा कथमन्यथार्जुनेन वध्यमानं जयद्रथमुपेक्षेत । चेदेवं नेत्यन्वयः ॥२८॥

कर्ण—और इसी कारण कौरवों तथा पाण्डवों के प्रति पक्षपात है कारण महायुद्ध मे प्रवृत्त हुए राज-समूह के परस्पर नाश की उपेक्षा हुए उसने प्रधान पुरुषों के वध की उपेक्षा की।

दुर्योधन—यह ठीक है।

कर्ण—और राजन् बचपन से ही इसके अभिप्राय को जानने वाले द्रुपद ने भी इसे राज्य मे वासस्थान नही दिया था।

दुर्योधन—ठीक, अङ्गराज, ठीक। (आपने) बुद्धि की बात कही है।

कर्ण—और यह एक मेरा ही विचार नही है। दूसरे चतुर लोग भी इसे अन्यथा नही समझते है।

दुर्योधन—ऐसा ही है। (इसमे) क्या सन्देह है ?

यदि ऐसा न होता तो वह महारथी अभय देकर अर्जुन द्वारा वध किये जाते हुए सिन्धुराज की अन्य किस कारण उपेक्षा करता ॥२८॥

कृप—(देखकर) वत्स, यह दुर्योधन सूत-पुत्र (कर्ण) के साथ वट-वृक्ष की छाया मे बैठा हुआ है। तो पास चलें।

(वैसा करके)

दोनो—कौरवों के अधिपति की जय हो।

दुर्योधन—(देखकर) अरे ! कैसे ! कृप और अश्वत्थामा। (आसन से उतरकर कृप से) आचार्य, मै प्रणाम करता हूँ। (अश्वत्थामा को लक्ष्य करके) आचार्यपुत्र,

हमारे प्रयोजन से मारे गये पिता वाले, आओ, (अपने) श्रान्त अङ्गो से मेरे इस शरीर का गाढ आलिङ्गन करो। तुम्हारी भुजाओं का यह स्पर्श तुम्हारे पिता (के स्पर्श) के समान है, जो महान् शोक में भी (हमे) शान्ति दे रहा है ॥२९॥

सूतपुत्रेण सारथिसुतेन कर्णेन। सूतः क्षत्ता च सारथिः ॥ इत्यमरः। न्यग्रोधो बहुपाद्वटः इत्यमरः। विजयतामित्यत्र विपराभ्यां जेः इति तङ् ॥

एहीति। एह्यागच्छ [श्लान्तैर्दुःखविक्लवैरङ्गैर्ममाङ्गम्। निर्गतमन्तरं तस्मिन् कर्मणि तद्यथा तथा। गाढमित्यर्थः। [परिष्वजस्वालिङ्ग] तनूरुहेषु लोमसु। [तव भुजयोः एषः स्पर्शः ते पितुः सदृशः। यः स्पर्शो महति शोकेऽपि निर्वृतिं शान्तिमादधाति करोतीत्यर्थः] ॥२९॥

(आलिङ्ग्य पार्श्वे उपवेशयति)

(अश्वत्थामा बाष्पमुत्सृजति)

कर्णः—द्रौणायने, अलमत्यर्थमात्मानं शोकानले प्रक्षिप्य ।

दुर्योधनः—आचार्यपुत्र, को विशेषआवयोरस्मिन्व्यसनमहार्णवे । पश्य—

तातस्तव प्रणयवान् स पितुः सखा मे
शस्त्रे यथा तव गुरु स तथा ममापि ।
किं तस्य देहनिधने कथयामि दुःखं
जानीहि तद् गुरुशुचा मनसा त्वमेव ॥३०॥

कृपः—वत्स, यथाह कुरुपतिस्तथैवैतत् ।

अश्वत्थामा—राजन्, एवं पक्षपातिनि त्वयि युक्तमेव शोकभारं लघूकर्तुम्। किन्तु—

मयि जीवति मत्तातः केशग्रहमवाप्तवान् ।
कथमन्ये करिष्यन्ति पुत्रेभ्यः पुत्रिणः स्पृहाम् ॥३१॥

कर्णः—द्रौणायन किमत्र क्रियते यदा तेनैव सर्वपरिभवत्राणहेतुना शस्त्रमुत्सृजता तादृशीमवस्थामात्मा नीतः ।

अश्वत्थामा—अङ्गराज, किमाह भवान् किमत्र क्रियत इति । श्रूयतां यत्क्रियते—

यो यः शस्त्रं बिभर्ति स्वभुजगुरुमदः पाण्डवीनां चमूनां
यो यः पाञ्चालगोत्रे शिशुरधिकवया गर्भशय्यां गतो वा ।

तात इति । तव तातो मे पितुः सखा मित्रमित्यन्वयः [तस्य देहनिधने । यशोरूपो देहस्तु तिष्ठत्येव । यन्मम दुःखं तत् किं कथयामि । अत्र यत्तत् शब्दावनुक्तावपि प्रतीयेते । सामर्थ्यात् । यदाह विश्वनाथः—क्वचिदनुपात्तयोर्द्वयो (यत्तदोः) अपि सामर्थ्यादवगमः । इति ।] तत्त्वमेव [गुर्वी गुरुः यस्य तेन गुरुशुचा तव मनसा] जानीहीत्यन्वयः । [यथा तव मनो गुरुशोकाकुलं तथा ममापीति जानीहीत्यर्थः ।] शुचा शोकेन ॥३०॥

(आलिङ्गन करके पार्श्व में बैठाता है)
(अश्वत्थामा आँसू बहाता है)

कर्ण—द्रोण के पुत्र, अपने को अत्यधिक शोक रूपी अग्नि में डालने से बस करो।

दुर्योधन—आचार्यपुत्र, इस विपत्ति के महासागर मे हम दोनों में क्या भेद है ? देखो—

यह तुम्हारे प्रणयी पिता मेरे पिता के मित्र थे। शस्त्र-विद्या मे वह जैसे तुम्हारे गुरु थे, वैसे ही मेरे भी। उनके शरीर का अन्त हो जाने पर (होने वाले) दुःख को क्या बतलाऊ ? महान् दुःख वाले (अपने) मन से तुम ही उसे समझ लो ॥३०॥

कृप—वत्स, कुरुपति जैसा कह रहे है, यह ठीक ही है।

अश्वत्थामा—राजन्, (हमारे प्रति) प्रेम रखने वाले आप इस प्रकार (हमारा) शोक-भार हल्का करना ठीक ही है। किन्तु—

मेरे जीवित रहते मेरे पिता ने केश-ग्रहण प्राप्त किया, तब अन्य पुत्र वाले पुत्रों की कामना कैसे करेंगे ॥३१॥

कर्ण—द्रौणायन, इसमे क्या किया जाय, जब सब को अपमान से बचाने में समर्थ उसने ही शस्त्र-त्याग करते हुए अपनी ऐसी दशा कराई है।

अश्वत्थामा—अङ्गराज, क्या कहा आपने 'इसमे क्या किया जाय।' जो किया जायेगा, सुनिये—

पाण्डवो की सेनाओ मे से अपने भुजबल के अतिदर्प वाला जो भी शस्त्र धारण करता है, पाञ्चाल कुल मे जो भी अधिक अवस्था वाला-या गर्भ रूपी शय्या मे भी स्थित शिशु है, जो भी उस कर्म का साक्षी है और जो भी मेरे

मयीति। पुत्रेभ्य. इत्यत्र स्पृहेरीप्सित. इति चतुर्थी ॥३१॥

यो य इति। पाण्डवीना पाण्डवसम्बन्धिनीना चमूनां सेनानाम्। मध्ये [स्वभुजयो। स्वभुजवीर्यस्येत्यर्थः। गुरुर्मदो यस्य तथाभूतः य. यः शस्त्रं बिभर्ति] अधिकवयास्तरुणो वृद्धश्च। तत्कर्मसाक्षी तानवधसाक्षाद्द्रष्टा साक्षाद्-द्रष्टरि संज्ञायाम् इति साक्षीति सिध्यति। [मयि रणे चरति युद्धकर्माचरिति

यो यस्तत्कर्मसाक्षी चरति मयि रणे यश्च प्रतीपः
क्रोधान्धस्तस्य तस्य स्वयमपि जगतामन्तकस्यान्तकोऽहम् ॥३२॥

अपि च, भो जामदग्न्यशिष्यकर्ण,

देशः सोऽयमरातिशोणितजलैर्यस्मिन्ह्रदाः पूरिताः
क्षत्रादेव तथाविधः परिभवस्तातस्य केशग्रहः ।
तान्येवाहितशस्त्रघस्मरगुरूण्यस्त्राणि भास्वन्ति मे
यद्रामेण कृतं तदेव कुरुते द्रौणायनिः क्रोधनः ॥३३॥

दुर्योधनः—आचार्यपुत्र, तस्य तथाविधस्यथानन्यसाधारणस्य ते वीरभावस्य किमन्यत्सदृशम् ।

कृपः—राजन्, सुमहान्खलु द्रोणपुत्रेण वोढुमध्यवसितः समरभारः । तदहमेवं मन्ये भवता कृतपरिकरोऽयमुच्छेत्तुं लोकत्रयमपि समर्थः किं पुनर्युधिष्ठिरबलम् । अतोऽभिषिच्यतां सैनापत्ये ।

दुर्योधनः—सुष्ठु युज्यमानमभिहितं युष्माभिः । किं तु प्रागप्रतिपन्नोऽयमर्थोऽङ्गराजस्य ।

कृपः—राजन्, असदृशपरिभवशोकसागरे निमज्जन्तमेनमङ्गराजस्यार्थेनैवोपेक्षितुं युक्तम् । अस्यापि तदेवारिकुलमनुशासनीयम् । अतः किमस्य पीडा न भविष्यति ।

अश्वत्थामा—राजन् कौरवेश्वर, किमद्यापि युक्तायुक्तविचारणया ।

यः यः] प्रतीपो विपरीतकारी [स्यात् । प्रतीपमिति पाठे यश्च यश्च रणे मयि प्रतीपं चरति इति योज्यम् ।] तस्य जगतामन्तकस्य विनाशकस्य अंतको यमो विनाशको वा ॥३२॥

जामदग्न्यः परशुरामः ।

देश इति । [सोयं कुरुक्षेत्रम् । शोणितं रक्तं [तदेव जलम् । पूरिताः परशुरामेणेति शेषः] । क्षत्रात् क्षत्रियकृतात्परिभवः तत्रैव जात इति शेषः ।

युद्ध-भूमि में संचरण करने पर विरुद्ध होगा, क्रोध से अन्धा हुआ मैं उन सब का—स्वयं जगत् के संहारक (यमराज) का भी नाश करने वाला होऊँगा ॥३२॥

और भी, हे जमदग्नि-पुत्र के शिष्य कर्ण,

यह वही देश है, जिसमे शत्रुओं के रुधिर रूपी जल से तालाब भर गये थे; पिता का केश-ग्रहण क्षत्रिय से ही होने वाला वैसा ही अपमान है; मेरे वे ही शत्रुओं के शस्त्रों के भक्षक और बलवान् चमकते हुए अस्त्र हैं; जो (पहले) परशुराम ने किया था, कुपित द्रोण-पुत्र (भी आज) वही करेगा ॥३३॥

दुर्योधन—आचार्यपुत्र, तेरे ऐसे प्रसिद्ध असाधारण पराक्रम के अनुरूप और क्या हो सकता है ?

कृप—राजन्, द्रोण-पुत्र ने युद्ध का महान् भार वहन करने का निश्चय किया है। इससे मैं समझता हूँ कि आप से पुरस्कृत होकर यह तीनो लोकों का भी विध्वस कर डालने मे समर्थ है, फिर युधिष्ठिर की सेना तो क्या है ? इसलिये इसे सेनापति-पद पर अभिषिक्त कर दिया जाय।

दुर्योधन—आपने ठीक युक्तियुक्त कहा है। परन्तु यह चीज तो पहले ही अङ्गराज (कर्ण) के लिये स्वीकृत कर ली है।

कृप—राजन्, अङ्गराज के कारण असाधारण अपमान से जनित शोक-सागर में डूबे हुए इसकी उपेक्षा करना उचित नहीं है। इसे भी उस ही शत्रु-कुल को दण्ड देना है। क्या इससे इसे पीडा नहीं होगी ?

अश्वत्थामा—राजन्, कौरवाधिपति, अब उचित-अनुचित का विचार करने से क्या (प्रयोजन रहा) ?

आहिता उपस्थिता ये (यद्वा अहिता.) शस्त्रवस्तेषा (यानि शस्त्राणि तेषां) घस्मराणि भक्षकाणि। अत एव गुरूणि भास्वन्ति दीप्यमानानि। रामेण परशुरामेण कृतं क्षत्रियनाशनम् ॥३३॥

सुमहानतिशयतिः। वोढुं धर्तुम्। [अध्यवसित. निश्चयपूर्वमङ्गीकृतः।] अयमर्थोऽभिषेकरूपः। [असदृशोऽननुरूपः। यद्वा नास्ति सदृशो यस्य अपूर्वः।]

प्रयत्नपरिबोधितः स्तुतिभिरद्य शेषे निशा-
मकेशवमपाण्डवं भुवनमद्य निःसोमकम् ।
इयं परिसमाप्यते रणकथाद्य दोःशालिना-
व्यपैतु नृपकाननातिगुरुरद्य भारो भुवः ॥३४॥

कर्णः—(विहस्य) वक्तुं सुकरमिदं दुष्करमध्यवसितुम् । बहवः कौरवबलेऽस्य कर्मण. शक्ता. ।

अश्वत्थामा—अङ्गराज, एवमिदम् । बहव. कौरवबलेऽत्र शक्ताः । किं तु दुःखोपहतः शोकावेगवशाद् ब्रवीमि न पुनर्वीरजनाधिक्षेपेण ।

कर्णः—मूढ, दुःखितस्याश्रुपात· कुपितस्य चायुधद्वितीयस्य सङ्ग्रामावतरणमुचितं नैवंविधा प्रलापाः ।

अश्वत्थामा—(सक्रोधम्) अरे रे राधागर्भभारभूत, सूतापसद, ममापि नामास्वत्थाम्नो दुःखितस्याश्रुभिः प्रतिक्रियामुपदिशसि न शस्त्रेण । पश्य—

निर्वीर्यं गुरुशापभाषितवशात्किं मे तवेवायुधं
सम्प्रत्येव भयाद्विहाय समरं प्राप्तोऽस्मि किं त्वं यथा ।
जातोऽहं स्तुतिवंशकीर्तनविदां किं सारथीनां कुले
क्षुद्रारातिकृताप्रियं प्रतिकरोम्यस्रेण नास्त्रेण यत् ॥३५॥

प्रयत्नैरयादि । [हे राजन्, अद्य त्वं निशां शेषे शयिष्यसे । वर्तमानसामीप्ये लट् । कथंभूतः । निःशेषोच्छिन्नशत्रुत्वाद्गाढनिद्रामग्नः सन्] । कीदृशः सन् । स्तुतिभिर्मागधादिकृतस्तवैरद्य प्रयत्नेन परिबोधितः प्रबोधितः तथा च त्वं स्तवादिनापि परिहृतभगिनीपतिशोक. समस्तां निशां व्याप्य शयनं विधेहीति भाव. शेषे इति शीङ् स्वप्ने लटि मध्यमपुरुषैकवचने साधु । निशाम् इत्यत्र कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे इति द्वितीया । अद्य पुनर्भुवनमेतादृशमस्तु । कीदृशम् । केशवशून्यं पाण्डवशून्यं सोमवंशशून्यं च । दोःशालिनां बाहुबलशालिनां वीराणामपि रणकथा युद्धवार्ता च पाठान्तरे दोःशालिना] मया परिसमाप्यते । अद्य भुवो भारोऽपैतु दूरं यातु । कीदृशः । नृपा एव काननानि वनानि तैरतिगुरु. । उर्जित इत्यर्थः । दोषा भुजा भुजः इत्यमरः । अत्र तोटकं नाम गर्भसन्ध्यङ्गम् ।

आज रात्रि मे (ऐसे सुख से) सोओगे कि (प्रातः) मङ्गल-स्तुतियों से प्रयत्न से जागोगे। आज संसार केशव, पाण्डवों तथा सोमक-वंशियों से रहित हो जायेगा। आज मुझ भुजशाली द्वारा यह युद्ध की चर्चा समाप्त कर दी जाएगी। आज राजाओं रूपी वनों के कारण अत्यधिक भारी पृथ्वी का भार नष्ट हो जायेगा ॥२४॥

कर्ण—(जोर से हंसकर) यह कहना सरल है, लेकिन पूरा करना बड़ा कठिन है। कौरव-सेना में इस कार्य मे समर्थ बहुत है।

अश्वत्थामा—अङ्गराज, यह सच है। कौरव सेना में इस कार्य में बहुत से समर्थ हैं। किन्तु दुःख से अभिभूत हुआ मैं शोक के आवेग के कारण ही ऐसा कह रहा हूँ, न कि वीर पुरुषों की निन्दा करने के लिये।

कर्ण—मूर्ख, दुःखी पुरुष को आंसू बहाना और कुपित को शस्त्र लेकर संग्राम-भूमि में उतर जाना उचित होता है, इस तरह की बकवाद नहीं।

अश्वत्थामा—(क्रोध से) अरे रे! राधा के गर्भ के भारभूत! अधम सूत! मुझ अश्वत्थामा को भी दुःखित हुए को आसुओं द्वारा प्रतिकार का उपदेश देता है, न कि शस्त्र से। देख—

क्या मेरे शस्त्र तेरे सम न गुरु के शाप के प्रभाव से बलहीन हैं; क्या मैं अभी तेरे समान [illegible] कारण युद्ध-भूमि छोड़कर आया हूं, क्या मैं स्तुति और वंशकीर्तन करने वाले सूतों के कुल में उत्पन्न हुआ हूं? जो नीच शत्रु द्वारा किये गये अप्रिय का आंसुओं से प्रतिकार [illegible] न कि अस्त्रों से ॥३५॥

मुक्तम्। संरब्ध तोटकं वचः इति तल्लक्षणात् ॥३४॥

वीरजनाधिक्षेपेण [वीरजननिन्दनेच्छया।] ननु रे स्पर्धायामरे पदम् इति भरतः। गर्भस्य गर्भे वा भारभूतः। राधा नाम सूतपत्नी तस्याः।

निर्वीर्यमिति। [गुरोः परशुरामस्य शापमापितस्य वशात्]। कर्णः किल बालकः स्वीयक्षत्रियजातिं गोपयित्वास्त्रविद्याशिक्षार्थं परशुरामस्थानं गतः। तेनास्त्रविद्या तस्मै दत्ता। ततः कर्णोऽयं क्षत्रिय इति तेन ज्ञातम्। अथ तवास्त्रविद्या वीर्यवती न भवतु मम च्छलनादिति परशुरामस्तं शशाप—इति पुराणम्। तवेव यथा तवेत्यर्थः। स्तुतिं च वंशकीर्तनं च [विदन्तीति तेषां] यद्वा। स्तुतिरूपं यद्वंशकीर्तनम्। [यद् येन क्षुद्रश्चासौ अरातिश्च तेन कृतं यदप्रियं तत्] प्रतिकरोमि प्रतीकारविषयं करोमि। अस्त्रेण नेत्रजलेन ॥३५॥

कर्णः—(सक्रोधम्) अरे रे वाचाट, वृथाशस्त्रग्रहणदुर्विदग्ध बटो ।

निर्वीर्यं वा सवीर्यं वा मया नोत्सृष्टमायुधम् ।
यथा पाञ्चालभीतेन पिता ते बाहुशालिना ॥३६॥

अपि च—

सूतो वा सूतपुत्रो वा यो वा को वा भवाम्यहम् ।
दैवायत्तं कुले जन्म मदायत्तं तु पौरुषम् ॥३७॥

अश्वत्थामा—(सक्रोधम्) अरे रे रथकारकुलकलङ्क राधागर्भभारभूत, अरे आयुधानभिज्ञ, तातमप्यधिक्षिपसि । अथवा—

स भीरुः शूरो वा प्रथितभुजसारस्त्रिभुवने
कृतं यत्तेनाजौ प्रतिदिनमियं वेत्ति वसुधा ।
परित्यक्तं शस्त्रं कथमिति स सत्यव्रतधरः
पृथासूनुः साक्षी त्वमसि रणभीरो क्व नु तदा ॥३८॥

कर्णः—(विहस्य) एवं भीरुरहम् । त्वं पुनर्विक्रमैकरसं स्वपितरमनुस्मृत्य किं करिष्यसीति महान्मे संशयो जातः । अपि च रे मूढ,

यदि शस्त्रमुज्झितमशस्त्रपाणयो
न निवारयन्ति किमरीनुदायुधान् ।
यदनेन मौलिदलनेऽप्युदामितं
सुचिरं स्त्रियेव नृपचक्रसंनिधौ ॥३९॥

निर्वीर्यं वेति । उत्सृष्टं त्यक्तम् ॥३६॥

सूत इति । सूतः सारथिः । स्यो वेति त्यच्छब्दस्य प्रयोगः । स छान्दसोऽपि क्वचिद्भाषायां प्रयुज्यते । सो वा इत्यपि पाठः ॥३७॥

[रथंकरोतीति रथकारः । कर्मण्यण् ।]

स भीरुरिति । त्रिभुवने प्रथितं ख्यातं [भुजयोः सारो बलं यस्य तथा] । आजौ युद्धे । प्रतिदिन तेन यत्कृतं तद्वसुधा वेत्तीत्यन्वयः । तेन शस्त्रं कथं

कर्ण—(क्रोध से) अरे रे बकवादी, व्यर्थ ही शास्त्र धारण करने के अभिमानी, ब्राह्मण के लड़के,

चाहे बलहीन हो, या बलवान् हो मैंने पाञ्चाल से डरे हुए तेरे भुजशाली पिता के समान शस्त्र त्याग नही किया ॥३६॥

और भी,

मैं चाहे सारथि होऊं चाहे सारथि-पुत्र होऊं या चाहे अन्य कोई होऊं। किसी कुल में जन्म तो भाग्य के आधीन है, मेरे अधीन तो पुरुषकार है ॥३७॥

अश्वत्थामा—(क्रोध से) अरे रे! रथकार के कुल के कलङ्क राधा के गर्भ के भारभूत, अरे शस्त्रो के प्रयोग से अपरिचित, तू मेरे पिता पर भी आक्षेप कर रहा है। अथवा—

वह डरपोक था या शूर था लेकिन तीनों लोको में प्रसिद्ध भुजबल वाला था; जो उसने प्रतिदिन युद्ध में किया है, उसे यह पृथ्वी जानती है; उसने शस्त्र क्यों छोड़ा, इसमें वह सत्यवादी पृथा का पुत्र साक्षी है; लेकिन, हे युद्ध से डरने वाले, तू उस समय कहाँ था ॥३८॥

कर्ण—(ज़ोर से हंसकर), हाँ, मैं ऐसा डरपोक हूँ। लेकिन तू एकमात्र पराक्रम मे आनन्द लेने वाले अपने पिता को [illegible] करके क्या कर डालेगा, इसमे मुझे बड़ा सन्देह है। और भी, अरे मूढ़,

यदि शस्त्र छोड भी दिया था, तो क्या शस्त्र से रहित [खाली] हाथ वाले लोग शस्त्र उठाये शत्रुओ को रोकते नही हैं, जो वह राजसमूह के समीप मे चिरकाल तक स्त्री के समान मौलि-दलन के प्रति उदास बैठा रहा ॥३९॥

परित्यक्त तत्र स [सत्यमेव व्रतं सत्यव्रतं तस्य धरः पृथासूनुः] युधिष्ठिरः साक्षी ॥३८॥

यदीति [शस्त्रपाणयो न भवन्ति इति। अशस्त्रपाणयस्त्यक्तास्त्राः। उदायुधानुद्यतास्त्रान्। किं न निवारयन्ति। किं तु निवारयन्त्येव। अनेन द्रोणेन। दलने खण्डने। उदासितमुदासीनीभूतम्। स्त्रियेवेति यथा स्त्रियोदास्यते इत्यर्थः। चक्रं सैन्यरथाङ्गयोः इति विश्वः ॥३९॥

अश्वत्थामा—[सक्रोधं सकम्पं च] दुरात्मन् राजवल्लभ, प्रगल्भ सूतापसद, असबद्धप्रलापिन्,

कथमपि न निषिद्धो दुःखिना भीरुणा वा
द्रुपदतनयपाणिस्तेन पित्रा ममाद्य।
तव भुजबलदर्पाध्मायमानस्य वामः
शिरसि चरण एष न्यस्यते वारयैनम् ॥४०॥

(इति तथा कर्तुमुत्तिष्ठति)।

कृपदुर्योधनौ—गुरुपुत्र, मर्षय मर्षय। [इति निवारयतः]।

[अश्वत्थामा चरणप्रहारं नाटयति]

कर्णः—(सक्रोधमुत्थाय खड्गमाकृष्य) अरे दुरात्मन्, वाचाल ब्रह्मबन्धो, आत्मश्लाघ

जात्या काममवध्योऽसि चरणं त्विममुद्धृतम्।
अनेन लूनं खड्गेन पतितं द्रक्ष्यसि क्षितौ ॥४१॥

अश्वत्थामा—अरे मूढ, किं नाम जात्या काममवध्योऽहम्। इयं सा जातिस्त्यक्ता। (इति यज्ञोपवीतं छिनत्ति। पुनश्च सक्रोधम्)।

अद्य मिथ्याप्रतिज्ञोऽसौ किरीटी क्रियते मया।
शस्त्रं गृहाण वा त्यक्त्वा मौलौ वा रचयाञ्जलिम् ॥४२॥

कथमपीति। तव शिरस्येव वामश्चरणो वामपादो मया न्यस्यते इत्यन्वयः [भुजयोर्बलं तस्य दर्पस्तेन।] आध्मायमानस्याध्मातस्य [न दक्षिणः पाणिः किंतु वाम. पादः दीयते] ॥४६॥

वाचाल बहुभाषक। ब्रह्मबन्धो अग्राह्यनामन्। [ब्राह्मणाधम] ब्रह्मबन्धुरधिक्षेपे निर्देश्येऽपि निगद्यते इत्यमरः।

जात्येति। [अकामानुमतौ कामम् इत्यमरः। जात्या ब्राह्मणस्यावध्यत्वात् तदुक्तं भागवते-वपन द्रविणादानं स्थानान्निर्यापण तथा। एष हि ब्रह्मबन्धूना

अश्वत्थामा—(क्रोध से कांपते हुए) दुष्ट, राजा के मुँह लगे, उच्छृङ्खल, अधम सारथि, ऊटपटांग बकने वाले,

आज मेरे पिता ने, दुःखी ने या डरपोक ने, चाहे किसी भी कारण द्रुपद के पुत्र के हाथ को नहीं रोका। भुजाओं के बल के अभिमान से फूले हुए तेरे सिर पर यह मेरा बायां चरण रक्खा जा रहा है, इसे रोक ले ॥४०॥

(यह कहकर वैसा करने के लिए उठता है)

कृप और दुर्योधन—आचार्यपुत्र, क्षमा करो। (दोनो रोकते हैं)।

(अश्वत्थामा पाद से प्रहार का नाट्य करता है)।

कर्ण—(क्रोध से उठकर और तलवार खींचकर) अरे दुष्ट, बकवादी, नीच ब्राह्मण, अपनी शेखी मारने वाले,

यद्यपि तू (ब्राह्मण) जाति के कारण वध्य नहीं है, लेकिन तू उठे हुए (अपने) इस पैर को (मेरी) इस तलवार से कटने पर पृथ्वी पर पड़ा हुआ देखेगा ॥४१॥

अश्वत्थामा—मूर्ख, क्या कहा—'मैं जाति के कारण अवध्य हूँ। ले, यह, जाति छोड़ दी।' (यह कहकर यज्ञोपवीत काटता है और फिर क्रोध से),

आज मैं (तुझे मारकर) अर्जुन को असत्य सन्ध किये देता हूँ। या तो शस्त्र उठा ले या फिर (शस्त्र) छोड़कर हाथ जोडकर सिर पर रख ॥४२॥

वधो नान्योऽस्ति दैहिक' ॥] चरण लूनं सक्षितौ। पतितं द्रक्ष्यसीत्यन्वयः। पदङ्घ्रिश्चरणोऽस्त्रियाम् इत्यमर. ॥४१॥

अद्येति। [असूयितार द्वेष्टार प्रवक्तार विकत्थनम्। भीमसेन नियोगात्ते हन्ताहं कर्णमाहवे ॥ अर्जुन. प्रतिजानीते भीमस्य प्रियकाम्यया। कर्ण कर्णानुगांश्चैव रणे हन्तास्मि पत्रिभिः ॥ इति सभापर्वणि अर्जुनेन कर्णवधः प्रतिज्ञातः। तदनुरोधादाह अद्य मयासौ किरीटी] मिथ्याप्रतिज्ञो [मिथ्या असत्या प्रतिज्ञा यस्य] मया तव वधात्तेन च तदकरणादिति भावः। [त्यक्त्वा शस्त्रमिति शेषः।] ॥४२॥

(उभावपि खड्गमाकृष्यान्योन्यं प्रहर्तुमुद्यतौ । कृपदुर्योधनौ निवारयतः)

दुर्योधन —सखे, आचार्यपुत्र शस्त्रग्रहणेनालम् ।

कृप —वत्स, सूतपुत्र, शस्त्रग्रहणेनालम् ।

अश्वत्थामा—मातुल, मातुल, किं निवारयसि । अयमपि तातनिन्दाप्रगल्भः सूतापसदो धृष्टद्युम्नपक्षपात्येव ।

कर्ण—राजन्, न खल्वहं निवारयितव्यः,

उपेक्षितानां मन्दानां धीरसत्त्वैरवज्ञया ।
अत्रासितानां क्रोधान्धैर्भवत्येषा विकत्थना ॥४३॥

अश्वत्थामा—राजन्, मुञ्च मुञ्चैनम् । आसादयतु मद्भुजान्तरनिष्पेषसुलभमसूनामवसादनम् । अन्यच्च, राजन्, स्नेहेन वा कार्येण वा यस्त्वमेनं तताधिक्षेपकारिणं दुरात्मानं मत्तः परिरक्षितुमिच्छसि तदुभयमपि वृथैव । पश्य—

पापप्रियस्तव कथं गुणिनः सहायः
सूतान्वयः शशधरान्वयसंभवस्य ।
हन्ता किरीटिनमहं नृप मुञ्च कुर्यां
क्रोधादकर्णमपृथात्मजमद्य लोकम् ॥४४॥

कर्णः—(खड्गमुद्यम्य) अरे वाचाट, ब्राह्मणाधम, अयं न भवसि । राजन्, मुञ्च, मुञ्च । न खल्वहं वारयितव्यः । (हन्तुमिच्छति) ।

(दुर्योधनकृपौ निवारयतः)

[तातस्य निन्दायां प्रगल्भः]

उपेक्षितानामिति । अवज्ञया (प्रलपत्वयं क्षुद्रो नास्माकं कापि क्षतिरित्यवहेलया ।) धीरसत्त्वैः सुभटैरुपेक्षितानामित्यन्वयः । [क्रोधान्धैः कोपमूर्छितैरत्रासितानामशासितानां] मन्दानामेषा विकत्थना भवति । अतोऽत्र मया नोपेक्षा कर्तव्येति भावः । अत्रासितानां गेहवासिनाम् ॥४३॥

निष्पेषो यन्त्रणं [तेन सुलभं सुप्रापम् । अवसानं विनाशम्] अस्मत्तो मत्सकाशात् ।

(दोनों तलवार खींचकर एक-दूसरे पर प्रहार करने को उद्यत होते हैं। कृप और दुर्योधन रोकते हैं।)

दुर्योधन—मित्र आचार्यपुत्र, शस्त्र-ग्रहण रहने दीजिये।

कृप—पुत्र, सूतपुत्र, शस्त्र-ग्रहण रहने दीजिये।

अश्वत्थामा—मातुल, मातुल, आप क्यों रोकते हैं ? पिता की निन्दा करने में ढीठ यह अधम सूत भी धृष्टद्युम्न का पक्षपाती ही है।

कर्ण—राजन्, मुझे न रोकिये,

अविचाली हृदय, वाले पुरुषों द्वारा तिरस्कार-भाव से उपेक्षा किये गये मूर्खों की क्रोध में अभिभूत हुए पुरुषों द्वारा भयभीत न किये जाने पर ऐसी ही आत्मश्लाघा (डींग) हुआ करती है॥४३॥

अश्वत्थामा—राजन्, छोड़ दीजिये 'इसे' छोड़ दीजिये। यह मेरी भुजाओं के बीच में कुचले जाने से सुलभ प्राण नाश प्राप्त करले। और राजन् स्नेह के कारण अथवा प्रयोजन के कारण जो आप पिता के निन्दक इस दुष्ट को मुझसे रक्षा करना चाहते है, वह दोनों ही व्यर्थ है।

गुणी और चन्द्र वंश में उत्पन्न हुए आपका पाप से प्रेम करने वाला और सारथि-कुल में उत्पन्न यह कैसे सहायक हो सकता है ? अर्जुन को मैं मार डालूंगा। हे राजा, छोड़ दो। क्रोध के कारण मैं आज संसार को कर्ण और पृथा के पुत्र [अर्जुन] से रहित कर दूंगा॥४४॥

(यह कहकर प्रहार करना चाहता है।)

कर्ण—[तलवार उठाता है] अरे बकवादी, नीच ब्राह्मण, [अब] यह नहीं रहेगा। छोड़ो, छोड़ो। मुझे न रोको। [मारना चाहता है]।

(दुर्योधन और कृप रोकते हैं)

पापप्रिय इति। अयं पापस्तव कथं सखेत्यन्वयः। कीदृशः। प्रियः प्रिय-सुहृदित्यर्थः। अन्वयोः वश। अहं किरीटिनं हन्ता हनिष्यामि। ततो हे नृप मां मुञ्च। अहं लोक कर्णरहितमर्जुनरहितं च कुर्वां करिष्ये॥४४॥

दुर्योधनः—कर्ण गुरुपुत्र, कोऽयमद्य युवयोर्व्यामोहः ।

कृपः—वत्स, अन्यदेव प्रस्तुतमन्यत्रावेग इति कोऽयं व्यामोहः । स्वबलव्यसनं चेदमस्मिन्काले राजकुलस्यास्य युष्मत एवं भवतीति वामः पन्था ।

अश्वत्थामा—मातुल, न सम्यतेऽस्य चटुप्रलापिनो रथकारकुलकलङ्कस्य दर्पः शातयितुम् ।

कृपः—वत्स, अकालः खलु स्वबलप्रधानविरोधस्य ।

अश्वत्थामा—मातुल, यद्येवम् ।

अयं पापो यावन्न निधनमुपेयादरिशरैः
परित्यक्तं तावत्प्रियमपि मयास्त्रं रणमुखे ।
बलानां नाथेऽस्मिन्परिकुपितभीमार्जुनभये
समुत्पन्ने राजा प्रियसखबलं वेत्तु समरे ॥४५॥

(इति खड्गमुत्सृजति) ।

कर्णः—(विहस्य) कुलक्रमागतमेवैतद्भवादृशां यदस्त्रपरित्यागो नाम ।

अश्वत्थामा—ननु रे, अपरित्यक्तमपि भवादृशैरायुधं चिरपरित्यक्तमेव निष्फलत्वात् ।

कर्णः—अरे मूढ,

धृतायुधो यावदहं तावदन्यैः किमायुधैः ।
यद्वा न सिद्धमस्त्रेण मम तत्केन सेत्स्यति ॥४६॥

व्यामोहो मतिविभ्रमः । कर्तव्याकर्तव्यविवेकशून्यतेत्यर्थः । अन्यद् द्रोणपरिभवप्रतिकारणम् । अन्यत्र स्वार्थविनाशहेतौ द्वन्द्वे आवेगः साग्रहा प्रवृत्तिः । वामः पन्था, अनीतिमार्गाश्रयणम् । असमीक्ष्यकारितेत्यर्थः । रथकारः सारथि शातयितुं तनूकर्तुम् । [स्वबलप्रधान सेनापतिः कर्णः । सेनापतित्वेन वृतत्वात्] ।

[अयमिति । उपेयाद्गच्छेत् । प्रियः सखा प्रियसखस्तस्य बलम् । अस्य प्रभावः कियत्कार्यावह इति जानात्वित्यर्थः । सुखममुम् इति पाठे अमुं कर्णम्] ॥४५॥

धृतायुध इति । ममास्त्रेण यन्न सिद्धमित्यन्वयः । इह श्लोके दम्भ आरभटी वृत्तिः । कपटनानृतदम्भेषु वृत्तिरारभटी मता इति भरतः । [प्रयत्नपरिबोधितः

दुर्योधन—कर्ण, आचार्यपुत्र, तुम दोनों को आज यह क्या पागलपन (उन्माद) हो गया है।

कृप—पुत्र, प्रस्तुत कुछ अन्य था, और यह आवेश किसी अन्य पर है। यह कैसा मति-विभ्रम है। और ऐसे समय पर इस राजवंश की अपनी शक्ति का क्षय तुम से ही हो रहा है, यह कैसा उल्टा मार्ग है।

अश्वत्थामा—मातुल, तो इस कटु प्रलाप करने वाले सारथि-कुल के कलङ्क के अभिमान को शिथिल करने का अवसर नहीं मिलेगा।

कृप—वत्स, अब अपनी सेना के प्रधान का विरोध करने का अवसर नहीं है।

अश्वत्थामा—यदि ऐसा है तो—

जब तक यह पापी (कर्ण) शत्रु के बाणों से मृत्यु को प्राप्त न हो जायेगा, तब तक मैंने युद्ध-भूमि में प्रिय होते हुए भी शस्त्र का परित्याग कर दिया। इसके सेनापति हो जाने पर क्रुद्ध हुए भीम और अर्जुन से भय उत्पन्न होने पर राजा अपने प्रिय मित्र के बल को जान लेगा ॥४५॥

(यह कहकर तलवार छोड़ देता है)

कर्ण—(जोर से हँसकर) शस्त्र-त्याग तो आप जैसों के लिए कुल की परम्परा से प्राप्त है।

अश्वत्थामा—अरे, आप जैसों के द्वारा न छोड़ने पर भी निष्फल होने के कारण अस्त्र छोड़ा हुआ ही है।

कर्ण—अरे मूर्ख,

जब तक मैंने आयुध धारण किया हुआ है, तब तक अन्य आयुधों से क्या (प्रयोजन)? अथवा, जो (कार्य) मेरे शस्त्र से सिद्ध नहीं हुआ, वह और किस से सिद्ध होगा ॥४६॥

इत्यादिना धृतायुध इत्यन्तेनान्योन्य कर्णाश्वत्थाम्नोः संरब्धवचसा सेनाभेद-कारिणा पाण्डवविजयप्राप्त्याशान्वितं तोटकमिति दशरूपकम्। सरब्धं तोटकं वच इति तल्लक्षणम् ॥४६॥

कर्पणमेव महापातकमस्य विद्यते कर्पणेन वा महापातकी। सौबलो (शकुनिः)।

(नेपथ्ये)

आः दुरात्मन्, द्रौपदीकेशाम्बराकर्षणमहापातकिन्, धार्तराष्ट्रापसद, चिरस्य खलु कालस्य मत्संमुखमागतोऽसि । कुरुपशो, क्वेदानीं गम्यते । अपि च । भो भो राधेयदुर्योधनसौबलप्रभृतयः पाण्डवविद्वेषिणश्चापपाणयो मानधनाः शृण्वन्तु भवन्तः—

स्पृष्टा येन शिरोरुहे नृपशुना पाञ्चालराजात्मजा
येनास्याः परिधानमप्यपहृतं राज्ञां गुरूणां पुरः ।
यस्योरःस्थलशोणितासवमहं पातुं प्रतिज्ञातवा-
न्सोऽयं मद्भुजपञ्जरे निपतितः संरक्ष्यतां कौरवाः ॥४७॥

(सर्वे आकर्णयन्ति)

अश्वत्थामा—(सोत्प्रासम्) अङ्गराज, सेनापते, जामदग्न्यशिष्य, द्रोणोपहासिन्, भुजबलपरिरक्षितसकललोक । (धृतायुधः इति पठित्वा) इदं तदासन्नतरमेव संवृत्तम् । रक्षैनं सांप्रतं भीमाद् दुःशासनम् ।

कर्णः—आः, का शक्तिर्वृकोदरस्य मयि जीवति दुःशासनस्य छायामप्याक्रमितुम् । युवराज, न भेतव्यं । न भेतव्यम् । अयमहमागतोऽस्मि । (इति निष्क्रान्तः) ।

अश्वत्थामा—राजन्कौरवनाथ, अभीष्मद्रोणं संप्रति कौरवबलमालोकयन्तौ भीमार्जुनौ राधेयेनैवंविधेनान्येन वा न शक्येते निवारयितुम् । अतः स्वयमेव भ्रातुः प्रतीकारपरो भव ।

दुर्योधनः—आः शक्तिरस्ति दुरात्मनः पवनतनयस्य 'वत्स वा मयि जीवति शस्त्रपाणौ वत्सस्य छायामप्याक्रमितुम् । वत्स, न भेतव्यं न भेतव्यम् । कः कोऽत्र भोः । रथमुपनय । (इति निष्क्रान्तः) ।

स्पृष्टेति । आसवो मद्यम् । भुजपञ्जरे बाहुमध्ये । कथं कौरवा इति । कच्छादिपाठान्मनुष्यतत्स्थयोरिति वुञ्प्रत्ययः । अत्रामनुष्यत्वेन विवक्षणान्नवुञ् । ततः तस्येदम् इत्यण् । जनपदविवक्षायां वाण् ॥४७॥

सोत्प्रासम् समनाकुस्मितम् इत्यमरः । बाढं निश्चितम् । आलोकयन्तौ

(नेपथ्य में)

ओ दुष्ट, द्रौपदी के केश और वस्त्र खीचने का महापातक करने वाले, अधम धृतराष्ट्र के पुत्र, आज बहुत समय बाद मेरे सामने आया है। ऐ नीच पशु, अब कहाँ जायेगा ? और भी हे राधापुत्र (कर्ण) दुर्योधन के सौबल (शकुनि) आदि मानी, धनुर्धारी, पाण्डवो के शत्रुओ, आप सब लोग सुने—

जिस नर-पशु ने पाञ्चाल के राजा की पुत्री के केश छुए थे; जिसने राजाओ और बडे जनो के सामने इसके वस्त्रो को खींचा था; मैंने जिसके वक्ष.स्थल से रुधिर रूपी आसव के पान की प्रतिज्ञा की थी, मेरी भुजाओ के पिंजरे मे पडे हुए उस इस कौरव की रक्षा करो ॥४७॥

(सब सुनते है)

अश्वत्थामा—(व्यङ्ग्य के साथ) अङ्गराज, सेनापति परशुराम के शिष्य, द्रोण का उपहास करने वाले अपने बाहुबल से सकल ससार की रक्षा करने वाले, (धृतायुधः इत्यादि ३/४६ श्लोक का पाठ करके) यह तो बहुत जल्दी ही हो गया। अब भीम से इस दु शासन की रक्षा करो।

कर्ण—आह ! मेरे जीवित रहते भीम की क्या शक्ति है कि वह दु शासन की छाया भी छू सके। युवराज, डरो नही, डरो नही। मैं यह आया। (यह कहकर निकल जाता है)।

अश्वत्थामा—राजन्, कौरवनाथ, अब भीष्म और द्रोण से ही न कौरव-सेना को मथते हुए भीम और अर्जुन को कर्ण अथवा ऐसा ही कोई अन्य नहीं रोक सकता है। इसलिये आप स्वयं ही भाई के (भय के) निवारण का उपाय करें।

दुर्योधन—आह ! हाथ मे शस्त्र लिये मेरे जीवित रहते भीम या किसी अन्य की क्या शक्ति है कि वत्स की छाया का भी अतिक्रमण कर सके। अन्य. डरो नही, डरो नही। अरे यहाँ कौन है ? रथ लाओ। (यह कहकर निकल जाता है)।

उन्मथ्नन्तौ। सममेकदैव। अहं विपहे सोढुं पारयामि। [illegible]

(नेपथ्ये कलकलः)

अश्वत्थामा—(अग्रतोऽवलोक्य) मातुल, हा धिक्कष्टम् । एष खलु धातुः प्रतिज्ञामङ्गभीरुः किरीटी सम दुर्योधनराधेयो शरवर्षैर्यारंरभिद्रवति । सर्वथा पीतं दुःशासनशोणितं भीमेन । न खलु विग्रहे दुर्योधनानुजस्यैनां विपत्तिमिवलोकयितुम् । अनृतमनुमतं नाम । मातुल, शस्त्रं शस्त्रम् ।

सत्यादप्यनृतं श्रेयो धिक्स्वर्गं नरकोऽस्तु मे ।
भीमाद् दुःशासनं त्रातुं त्यक्तमत्यक्तमायुधम् ॥४८॥

(इति खड्गं ग्रहीतुमिच्छति)

(नेपथ्ये)

महात्मन्, भारद्वाजसूनो, न खलु सत्यवचनमनुल्लङ्घितपूर्वमुल्लङ्घयितुमर्हसि ।

कृपः—वत्स, अशरीरिणी भारती भवन्तमनृतादभिरक्षति ।

अश्वत्थामा—कथमियममानुषी वाग्मामनुमनुते सङ्ग्रामावतरणं मम ! भोः कष्टम् । आः पक्षपातिनो देवा अपि पाण्डवानाम् । सर्वथा पीतं दुःशासनशोणितं भीमेन । भोः, कष्टं कष्टम् ।

दुःशासनस्य रुधिरे पीयमानेऽप्युदासितम् ।
दुर्योधनस्य कर्तास्मि किमन्यत्प्रियमाहवे ॥४९॥

मातुल, राधेयक्रोधवशादनार्यमस्माभिराचरितम् । अतस्त्वमपि तावदस्य राज्ञः पार्श्ववर्ती भव ।

कृपः—गच्छाम्यहमत्र प्रतिविधातुम् । भवानपि शिबिरसंनिवेशमेव प्रतिष्ठताम् ।

(परिक्रम्य निष्क्रान्तौ)

॥ इति तृतीयोऽङ्कः ॥

सत्यादिति । अनृतमसत्यम् । स्वर्गमिति धिग्योगे द्वितीया । भीमादिति भीत्रार्थानां भयहेतुः इति पञ्चमी । अत्यक्तं भयेति शेषः ॥४८॥

भारती सरस्वती । [अनृतादसत्याचरणात्] ।

दुःशासनस्येति । उदासितम् [उदासीनेन स्थितम्] । मयेति शेषः । किमन्यत्प्रियं दुर्योधनस्याहं कर्ता करिष्ये ॥४९॥

अनार्यमनर्हम् ।

(नेपथ्य में कलकल ध्वनि होती है)

अश्वत्थामा—(सामने देखकर) मातुल, हाय धिक्कार है ! बड़े दुःख की बात है ! भाई की प्रतिज्ञा टूटने से डरने वाला यह अर्जुन, कर्ण और दुर्योधन पर एक साथ न रोके जा सकने वाली बाणों की वर्षा करके आक्रमण कर रहा है। भीम ने दुःशासन का रुधिर बिल्कुल पी ही लिया। मैं दुर्योधन के अनुज की इस विपत्ति को नहीं देख सकता। मुझे झूठ भी स्वीकार है। मातुल, शस्त्र ! शस्त्र ! !

सत्य से असत्य अधिक अच्छा है; स्वर्ग को धिक्कार है; भले ही मुझे नरक मिले; भीम से दुःशासन की रक्षा के लिये त्याग देने पर भी (मैंने) अस्त्र नहीं त्यागा है ॥४८॥

(यह कहकर तलवार लेना चाहता है)

(नेपथ्य में)

महात्मा, भारद्वाज-पुत्र, पहले कभी न लाँघे गये सत्य वचन का तुम्हें उल्लङ्घन नहीं करना चाहिए।

कृप—वत्स, अशरीरी (अदृश्य) वाणी आपको असत्य से बचा रही है।

अश्वत्थामा—कैसे ? यह दिव्य वाणी मुझे संग्राम में उतरने की अनुमति नहीं दे रही ! ओह, दुःख है ! आह, देव भी पाण्डवों के पक्षपाती हैं। भीम ने दुःशासन का रुधिर बिल्कुल पी ही लिया। आह बड़ा दुःख है।

(जब) दुःशासन के रक्त के पिये जाने पर भी (मैं) उदासीन रहा, तो मैं युद्ध में दुर्योधन का अन्य क्या प्रिय करूंगा ॥४९॥

मातुल, राधापुत्र के प्रति क्रोध के आवेश में हमने अनुचित कर डाला। इसलिये (अब) आप भी राजा के समीप में रहें।

कृप—मैं इसका प्रतिकार करने जाता हूँ। आप भी (अपने) पड़ाव में ही चलिये।

(दोनों घूमकर निकल जाते हैं)

तृतीय अङ्क समाप्त

असूत यं रत्नधरो गुणीशो नानागुणाढ्या दमयन्तिकापि।
जगद्धरं तस्य कृतावयासीदङ्कस्तृतीयो वरटिप्पनेऽत्र ॥

* इति तृतीयोऽङ्कः *

चतुर्थोऽङ्कः

(ततः प्रविशति प्रहारमूर्च्छित रथस्थ दुर्योधनमपहरन् सूत.)

(सूतः ससंभ्रमं परिक्रामति ।)

(नेपथ्ये)

भो भोः, बाहुबलावलेपप्रवर्तितमहासमरदोहदा., कौरवपक्षपातपणीकृतप्राणद्रविणसंचया नरपतयः, संस्तभ्यन्तां निहतदु शासनपीतावशेषशोणितस्नपितबीभत्सवेषवृकोदरदर्शनभयपरिस्खलत्प्रहरणानि रणात्प्रद्रवन्ति बलानि ।

सूतः–(विलोक्य) कथमेव धवलचपलचामरचुम्बितकनककमण्डलुना शिखराबद्धवैजयन्तीसूचितेन हतगजवाजिनरकलेवरसहस्रसंमर्दविषमोद्घातकृतकलकलकिङ्कणीजालमालिना रथेन शरवर्षस्तम्भितपरबलपराक्रमप्रसरः प्रद्रुतमात्मबलमाश्वासयन्कृपः किरीटिनाभियुक्तमङ्गराजमनुसरति । हन्त, जातमस्मद्बलानामवलम्बनम् ।

(नेपथ्ये कलकलानन्तरम्)

भो भोः, अस्मद्दर्शनभयस्खलितकार्मुककृपाणतोमरशक्तय. कौरवचमूभटाः, पाण्डवपक्षपातिनश्च योधाः, न भेतव्य न भेतव्यम् । अयमहं निहतदु.शासन-

---

अवलेप. स्मृतो गर्वे इति विश्वः । दोहदो दोहद इति प्रसिद्धः । [प्रवर्तितं महासमरमेव दोहदो येषाम् ।] प्राणा एव द्रविणमिति रूपकम् । [पणीकृतः प्राणद्रविणसंचयो यै. ।] संस्तभ्यन्तां स्थिरीक्रियन्ताम् । [पीतावशेषेण शोणितेन स्नपितः अत एव बीभत्सो वेपो यस्य तस्य वृकोदरस्य दर्शनाद्भयं तेन परिस्खलन्ति प्रहरणानि येषां तानि ।] बीभत्सो भयानकः । प्रहरणमस्त्रम् । चपलं चञ्चलम् । चुम्बितः संबद्धः शिखरमग्रम् । वैजयन्ती पताका । कलेवर शरीरम् । [कलेवराणां सहस्राणि तेषां संमर्द. निबिडावस्थानं संघट्टो वा तेन विषमो यः उद्घातोऽभिघातजन्यः क्षोभस्तेन कृतः कलकलो यस्य तादृग्यत् किंकिणीजालं क्षुद्रघण्टिकासमूहस्तस्य माला विद्यतेऽस्य तेन मालते शोभत इति वा तेन हृष्ट हर्षे । कृपाण. खड्गः ।] तोमरोऽस्त्रभेदः । [निहतः यः दु.शासनः

चतुर्थ अङ्क

(तत्पश्चात् प्रहार से मूर्च्छित और रथ में स्थित दुर्योधन को युद्ध-क्षेत्र से दूर ले जाता हुआ सारथि प्रवेश करता है)

(सारथि घबराहट के साथ घूमता है)

(नेपथ्य में)

भुज-बल के दर्प के महासमर की अभिलाषा करने वाले, कौरवों के प्रति पक्षपात के कारण प्राणरूपी धन-राशि को दांव पर लगाने वाले, हे राजा लोगो, रण-क्षेत्र से भागती हुई सेनाओं को, जिनके शत्रु मारे गये दुःशासन के पीने से बचे रुधिर में स्नान करने से बीभत्स वेष वाले भीम को देखकर भय के कारण गिर रहे है, रोको, रोको।

सूत—(देखकर) कैसे ! श्वेत चञ्चल चामर से चुम्बित स्वर्ण-कलश वाले शिखर पर लगी ध्वजा से पहचाने गये और मरे हुए सहस्रों हाथियो, घोड़ों तथा मनुष्यों के शरीरों की भीड़ से ऊँची नीची भूमि पर प्रतिघात से कल-कल मधुर ध्वनि करने वाले छोटे छोटे घुंघरुओं के समूह की माला वाले रथ में स्थित, बाणों की वर्षा से शत्रु-सेना के पराक्रम की गति को रोक देने वाले, अपनी भागती हुई सेना को सान्त्वना देते हुए कृपाचार्य अर्जुन द्वारा आक्रमण किये गये कर्ण की ओर जा रहे हैं। आहा ! (अब) हमारी सेनाओं का सहारा हो गया।

(नेपथ्य में कलकल ध्वनि के पश्चात्)

हमें देखकर भय से गिरे हुए धनुष, तलवार तोमर और शक्ति वाले, हे कौरव-सेना के वीरो और पाण्डवों के पक्षपाती योद्धाओं, डरो नहीं, डरो नहीं मारे गये दुःशासन के पीन वक्षःस्थल का रुधिर रूपी आसव पीने के नशे से

तस्य पीवरमुरःस्थलं तस्य यत्क्षतजं रक्तं तदेवासवस्तस्य पानेन यो मदस्तेनो-द्धतः ;] पीवरं मांसलम्। [रभसः वेगस्तेन गन्तुं शील यस्य स रभसगामी। सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये इति णिनिः। स्तोकमवशिष्ट. प्रतिज्ञामहोत्सवो...

पीवरोरःस्थलक्षतजासवपानमदोद्धतो रभसगामी स्तोकावशिष्टप्रतिज्ञामहोत्सवः कौरवराजस्य द्यूतनिर्जितो दासः पार्थमध्यमो भीमसेनः सर्वान्भवतः साक्षीकरोमि। श्रूयताम्—

> राज्ञो मानधनस्य कार्मुकभृतो दुर्योधनस्याग्रतः
> प्रत्यक्षं कुरुबान्धवस्य मिषतः कर्णस्य शल्यस्य च ।
> पीतं तस्य मयाद्य पाण्डववधूकेशाम्बराकर्षिणः
> कोष्णं जीवत एव तीक्ष्णकरजक्षुण्णादसृग्वक्षसः ॥१॥

सूतः—(श्रुत्वा सभयम्) अये आसन्न एव दुरात्मा कौरवराजपुत्रमहावनोत्पातमारुतो मारुतिः । तदनुपलब्धसंज्ञश्च तावदत्र महाराजः । भवतु । दूरमपहरामि स्यन्दनम् । कदाचिद् दुःशासन इवास्मिन्नप्ययमनार्योऽनार्यमाचरिष्यति । (त्वरिततरं परिक्रम्यावलोक्य च) अये, अयमसौ सरसीसरोजविलोलनसुरभिशीतलमातरिश्वसंवाहितसान्द्रकिसलयो न्यग्रोधपादपः । उचिता विश्रामभूरियं समरव्यापारखिन्नस्य वीरजनस्य । अत्र स्थितश्चायाचिततालवृन्तेन हरिचन्दनच्छटाशीतलेनाप्रयत्नसुरभिणा दशापरिणामयोग्येन सरसीसमीरणेनामुना गतक्लमो भविष्यति महाराजः । लूनकेतुश्चायं रथोऽनिवारित एव प्रवेक्ष्यति छायाम् । (इति प्रवेशं रूपयित्वा) कः कोऽत्र भोः । (समन्तादवलोक्य) कथं न कश्चिदत्र परिजनः । नूनं तथाविधस्य वृकोदरस्य दर्शनादेवंविधस्य च स्वामिनस्त्रासेन

यस्य । पृथायाः पुत्राः पार्थास्तेषु मध्यमः ।

राज्ञ इति । [मिषतः पश्यतः] मृषतः सहिष्णोः । कोष्णमीषदुष्णम् । कोष्णं कवोष्णं मन्दोष्णम् इत्यमरः । तस्य दुःशासनस्य । [कराज्जायन्ते इति करजानि नखानि तैः क्षुण्णात् ।] वक्षसो हृदयात् । असृड् मया पीतमित्यन्वयः करजो नखः ॥१॥

[कौरवराजस्य पुत्राः कौरवाश्च ते राजपुत्रा वा त एवं महावनं तस्योत्पातमारुतः प्रभञ्जनः मारुतिर्भीमः । सरसी सरः तस्याः सरः सरोजानां कमलाना विलोलनं विलोडनं परिमलनमित्यर्थः । तेन सुरभिश्चासौ शीतलश्च यो मातरिश्वा [वायुः] तेन संवाहितश्चालिताः सान्द्राः किसलया यस्य ।] न्यग्रोधो

मत्त, वेगपूर्ण गति वाला, थोड़ी ही शेष बची प्रतिज्ञा रूपी महोत्सव वाला, कौरवों के राजा का जूए में जीता हुआ दास, पृथा के पुत्रों में मंझला, मैं भीमसेन आप सब लोगों को साक्षी करता हूँ। सुनिये—

मान को ही धन समझने वाले, धनुर्धारी राजा दुर्योधन के सामने, कुरुओं के मित्रों की उपस्थिति में और कर्ण तथा शल्य के देखते-देखते, आज मैंने पाण्डवों की वधू के केश एवं वस्त्रों को खींचने वाले, उस जीवित ही (दु.शासन) के पैने नखों से विदीर्ण वक्ष स्थल से गरम रुधिर का पान किया है ॥१॥

सूत—(सुनकर भय से) अरे ! कौरव राजकुमारों रूपी महान् वन के लिये उत्पात-वायु दुष्ट भीम (मरुत का पुत्र) समीप ही है और यहाँ अभी महाराजा की चेतना नही लौटी है। अच्छा, रथ को बहुत दूर ले जाता हूँ। कभी वह दुष्ट दुःशासन के समान इनके साथ भी दुष्कृत्य करे। (और तेजी से घूमकर और देखकर) अरे ! यहाँ (सामने) यह जलाशय के कमलों को छूने से सुगन्धित और शीतल वायु द्वारा हिलाये जाते हुए घने पल्लवों वाला वट-वृक्ष है। यह युद्ध-कर्म से श्रान्त वीर पुरुष के योग्य विश्राम स्थल है। इस जलाशय के वायु से, जो बिना माँगे (प्राप्त) पंखे के समान है, जो लाल चन्दन की राशि के समान शीतल है, जो बिना प्रयास के ही सुगन्धित है और जो वर्तमान दशा में उचित है, यहाँ स्थित महाराज श्रम-विहीन हो जायेंगे। कटी हुई ध्वजा वाला यह रथ बाधा के बिना ही छाया मे चला जायेगा। (प्रवेश का नाट्य करके) अरे ! यहाँ कोई है ? (चारो ओर देखकर) यहाँ कोई सेवक क्यों नही है ? अवश्य ही, उस प्रकार (रुधिर में लिपटे) भीम को और इस प्रकार (मूर्छित) महाराज को देखकर भय के कारण पड़ाव में ही

वहुपाद्वट. इत्यमर.। अयाचिततालवृन्तं स्वयमुपस्थितव्यजनम्। हरिचन्दनं चन्दनभेदः। [तस्य च्छटावच्छीतलेन। दशा मूर्च्छावस्था तस्याः परिणाम. परिवर्तः। निवर्तनमिति यावत्। तस्य योगेन। परिणामो विपाक.। [अनिवारितः। अनिरुद्धः।] प्रवेक्ष्यति प्रवेशं करिष्यति। छत्रमित्याद्यानीयतामिति शेषः।

शिबिरसंनिवेशमेव प्रविष्टः। कष्टं भोः कष्टम्।

दत्त्वा द्रोणेन पार्थादभयमपि न संरक्षितः सिन्धुराजः
क्रूरं दुःशासनेऽस्मिन्हरिण इव कृतं भीमसेनेन कर्म।
दुःसाध्यामप्यरीणां लघुमिव समरे पूरयित्वा प्रतिज्ञां
नाहं मन्ये सकामं कुरुकुलविमुखं दैवमेतावतापि ॥२॥

(राजानमवलोक्य) कथमद्यापि न चेतनां लभते महाराजः। भोः कष्टम्। (निःश्वस्य)

मदकलितकरेणुभज्यमाने विपिन इव प्रकटैकशालशेषे।
हतसकलकुमारके कुलेऽस्मिस्त्वमपि विधेरवलोकितः कटाक्षैः ॥३॥

ननु भो हतविधे, भरतकुलविमुख,

अक्षतस्य गदापाणेरनारूढस्य संशयम्।
एषापि भीमसेनस्य प्रतिज्ञा पूर्यते त्वया ॥४॥

दुर्योधन—(शनैरुपलब्धसंज्ञः) आः शक्तिरस्ति दुरात्मनो वृकोदरहतकस्य मयि जीवति दुर्योधने प्रतिज्ञां पूरयितुम्। वत्स दुःशासन, न भेतव्यं न भेतव्यम्। अयमहमागतोऽस्मि। ननु सूत, प्रापय रथं तमेवोद्देशं यत्र वत्सो मे दुःशासनः।

सूत—आयुष्मन्, अक्षमाः संप्रति वाहास्ते रथमुद्वोढुम् (अपवार्य) मनोरथं च।

[दत्त्वेति। पार्थादभयं दत्त्वापि द्रोणेन सिन्धुराजो न रक्षित इत्यन्वयः। भीमसेनेन प्रतिज्ञां पूरयित्वा कर्म कृतमित्यन्वयः। समरे अरीणां दुःसाध्यां दुःखसाध्याम् अपि प्रतिज्ञां लघुमिव पूरयित्वा कुरुकुलविमुखं दैवं एतावतापि सकामं न मन्ये इत्यन्वयः।] तृणमिव कर्मातिशीघ्रं कृतमित्यर्थः। लघुम् इति पाठे प्रतिज्ञाविशेषणम्। वस्तुतो गुर्वीमपि लघ्वीमिवेत्यर्थः। एतावतापि दैवं कुरुकुलविमुखं नाहं मन्ये। अपि त्वपरमपि करिष्यतीति भावः। कुरुकुलनिधने इति पाठे कुरुकुलनाशे सकामं पूर्णमनोरथं दैवं नाहं मन्य इत्यर्थः ॥२॥

मदेति। मदेन मत्ततया कलितः सबद्धः करेणुर्हस्ती [तेन भज्यमाने]।

चले गये है। बडे दुःख की बात है।

अर्जुन से अभय देकर सिन्धु-राज (जयद्रथ) की रक्षा न कर सका; भीमसेन ने इस दुःशासन के प्रति हरण के समान क्रूर कर्म किया। मैं समझता हूँ कि कुरु-कुल का प्रतिकूल दुर्दैव युद्ध मे शत्रुओं की असाध्य प्रतिज्ञा को भी क्षुद्र के समान पूरी करा कर अभी इतने से सन्तुष्ट नही हुआ है ॥२॥

(राजा को देखकर) कैसे अब भी महाराज होश मे नही आ रहे हैं ? ओह ! दुःख है। (गहरा सास लेकर)

उस वन के समान, जो मदयुक्त हाथी से तोडा जा रहा है और जिसमें केवल एक बचा हुआ साल का पेड़ ही दीख पड़ रहा है, इस कुल में, जिसके सब कुमार मार दिये गये है, तुझे भी दैव की तिरछी दृष्टि ने देख लिया है ॥३॥

हे भरत कुल से पराङ्मुख, अधम भाग्य,

बिना घायल हुए और बिना संशय मे पडे हुए ही, गदाधारी भीमसेन की वह प्रतिज्ञा भी तुम्हारे द्वारा पूरी की जा रही है ॥४॥

दुर्योधन (धीरे-धीरे चेतना प्राप्त करके) आह ! दुर्योधन के जीवित रहते दुष्ट भीमसेन मे क्या शक्ति है ? वत्स दुःशासन, न डरो, न डरो। मैं यहाँ आ पहुँचा। सारथी, मेरे रथ को उस ही जगह ले चलो, जहाँ मेरा वत्स दुःशासन है।

सूत—आयुष्मन्, अब घोड़े आपके रथ का वहन करने मे असमर्थ है। (एक ओर के होकर और मनोरथ का भी)।

प्रकटः स्फुटः. एकः शालः शङ्कुतरुर्वृक्षमात्रं वा शेषोऽवशेषो यत्र तस्मिन्। शालः शङ्कुतरुर्मतः इति विश्व.। अनोकहः कुटः शालः इत्यमरः। हे राजस्त्वमपि ॥३॥

अक्षतस्येति। [संशय दुर्योधनस्य गदायुद्धनैपुण्यात्कदाचिदात्मनः पराजयः स्यादिति शङ्काम्] अनारूढस्य अगतस्य ॥४॥

स्वैरं मन्दं यथा स्यादेव। वाहोऽश्वः। वाजिवाहार्वगन्धर्व इत्याद्यमरः

दुर्योधन —(रथादवतीर्य सगर्वं साकूतं च) कृतं स्यन्दनगमनकालातिपातेन।

सूत:—(सवैलक्ष्यं सकरुणं च) मर्षयतु, मर्षयत्वायुष्मान्।

दुर्योधन —धिक् सूत, किं रथेन। केवलमरातिविमर्दसंघट्टसंचारी दुर्योधनः खल्वहम्। तद् गदामात्रसहाय. समरभुवमवतरामि।

सूत.—आयुष्मन्, एवमेतत्। कः सन्देहः ?

दुर्योधन —यद्येवं किमेवं भाषसे। पश्य—

बालस्य मे प्रकृतिदुर्ललितस्य पापः
पापं व्यवस्यति समक्षमुदायुधोऽसौ।
अस्मिन्निवारयसि किं व्यवसायिनं मां
क्रोधो न नाम करुणा न च तेऽस्ति लज्जा ॥५॥

सूत.—(सकरुणं पादयोर्निपत्य) एतद्विज्ञापयामि। आयुष्मन्, संपूर्णप्रतिज्ञेन निवृत्तेन भवितव्यमिदानीं दुरात्मना वृकोदरहतकेन। एतत् एवं ब्रवीमि।

दुर्योधन.—(सहसा भूमौ पतन्) हा वत्स दुःशासन, हा मदाज्ञाविरोधितपाण्डव हा विक्रमैकरस, हा मदङ्कदुर्ललित, हा अरातिकुलगजघटामृगेन्द्र, हा युवराज, क्वासि। प्रयच्छ मे प्रतिवचनम्। (इति निःश्वस्य मोहमुपगतः)

सूतः—राजन्, समाश्वसिहि समाश्वसिहि।

दुर्योधनः—(संज्ञां लब्ध्वा निःश्वस्य)

युक्तो यथेष्टमुपभोगसुखेषु नैव
त्वं लालितोऽपि हि मया न वृथाग्रजेन।

मनोरथं च। मनोरथमप्युद्वोढुमक्षमा। इति शेषः। [साकूतं साभिप्रायम्। अरातीनां विमर्दो मैरन्तर्येणावस्थानं तेन संघट्टो यस्य तथा संचरितुं शीलमस्य]

बालस्येति। [प्रकृतिदुर्ललितस्य स्वभावचपलस्य।] पापं नाशरूपम्। नाम संभावनायाम्। क्रोधस्ते नास्ति। करुणापि। लज्जापि न। इत्यन्वयः। करुणापि नेत्यत्र नकारस्यावृत्तिः। यद्वा क्रोधो न नापि करुणा इति पाठः ॥५॥

अरातीनां कुलं समूह एव गजघटा तस्याः सिंहः।

दुर्योधन—(रथ से उतरकर गर्व और व्यङ्ग्य के साथ) रथ में चल कर समय नष्ट करने की आवश्यकता नहीं है।

सूत—(लज्जा और करुणा से) क्षमा कीजिये, आयुष्मन् क्षमा कीजिये।

दुर्योधन—ओह ! सूत, रथ से क्या होगा ? मैं केवल शत्रुओं की भीड़ से टकराकर चलने वाला दुर्योधन हूँ। इसलिये केवलमात्र गदा साथ लेकर युद्ध-भूमि में उतरता हूँ।

सूत—आयुष्मन्, ऐसा ही है। इसमें क्या सन्देह है ?

दुर्योधन—यदि ऐसा है तो फिर इस तरह क्यों कह रहे हो ? देखो—

आयुध उठाये वह पापी (भीमसेन) सामने स्वभाव से हठी मेरे वत्स पर दुष्कर्म करने का प्रयत्न कर रहा है, (तब) इस विषय में व्यवसाय (प्रयत्न) करने वाले मुझे तुम क्यों रोक रहे हो ? तुम्हें क्रोध, करुणा और लज्जा नहीं आती ? ॥५॥

सूत—(करुणापूर्वक पैरों में पड़कर) आयुष्मन्, मेरा यह निवेदन है कि वह दुष्ट, नीच भीमसेन प्रतिज्ञा पूर्ण करके विवृत्त हो चुका होगा। इसलिये ऐसा कह रहा हूँ।

दुर्योधन—(वेग से भूमि पर गिरते हुए) हाय, वत्स दुःशासन ! हाय मेरी आज्ञा से पाण्डवों को विरुद्ध करने वाले ! हाय पराक्रम में एकमात्र आनन्द लेने वाले ! हाय मेरे अङ्क के आग्रही ! हाय, शत्रु-समूह रूप हाथियों के झुंड के लिये सिंह समान ! हाय, युवराज ! तुम कहाँ हो ? मुझे प्रत्युत्तर दो। (यह कहकर लम्बा साँस लेकर मूर्च्छित हो जाता है)।

सूत—राजन्, धैर्य रखिये, धैर्य रखिये।

दुर्योधन—(चेतना पाकर और गहरा साँस लेकर)।

व्यर्थ ही बड़े भाई (बने हुए) मैंने न तो (तुम्हें) यथेच्छ उपभोग के सुखों में छोड़ा, और न ही (तुम्हें यथेच्छ) प्रेम किया। परन्तु, हे वत्स, मैं तुम्हारी इस

मुक्त इति। मुक्तो योजितः हिरवधारणे। मया नैव त्वं न लालितो विलासं नीतः।, कीदृशेन मया। वृथा [निष्फलं लालनादिकर्माकरणादग्रे

अस्यास्तु वत्स तव हेतुरहं विपत्ते—
यंल्कारितोऽस्यविनयं न च रक्षितोऽसि ॥६॥
(इति पतति)

सूतः—आयुष्मन्, समाश्वसिहि समाश्वसिहि ।

दुर्योधनः—धिक्सूत, किमनुष्ठितं भवता

रक्षणीयेन सततं बालेनाज्ञानुवर्तिना ।
दुःशासनेन भ्रात्राहमुपहारेण रक्षितः ॥७॥

सूत.—महाराज, मर्मभेदिभिरिषुतोमरशक्तिप्रासवर्षैर्महारथानामपहृतचेतनत्वान्निश्चेष्टः कृतो महाराज इत्यपहृतो मया रथ. ।

दुर्योधनः—सूत, विरूपं कृतवानसि ।

तस्यैव पाण्डवपशोरनुजद्विषो मे
क्षोदैर्गदाशनिकृतैर्न विबोधितोऽस्मि ।
तामेव नाधिशयितो रुधिरार्द्रशय्यां
दौःशासनी यदहमाशु वृकोदरो वा ॥८॥

(नि.श्वस्य न भो विलोक्य) ननु भो हतविधे, कृपाविरहित, भरतकुलविमुख,

अपि नामभवेन्मृत्युर्न च हन्ता वृकोदरः ।

सूतः—शान्तं पापं शान्तं पापम् । महाराज किमिदम् ।

दुर्योधन—

जायतेऽसौ तेन ।] वृथाग्रजेन निष्फलज्येष्ठेन । [यद्यस्मात्कारणात्] ॥६॥

रक्षणीयेनेति । रक्षणीयेन रक्षणार्हेण । दु.शासनेनोपहारेण [दु.शासनरूपोपदादानेनेत्यर्थः ।] रक्षितस्त्वयेति शेषः ॥७॥

[महारथाना महारथकृतै. । मर्माणि भेत्तु शीलं येषा तैः मर्मभेदिभिः । इषुतोमरादिवर्षैः । निश्चेष्टः प्रतीकाराक्षम इत्यर्थ. । विरूपमयोग्यम् ।]

तस्यैवेति [यद् यस्मात् मे अनुज द्वेष्टीति अनुजद्विट् तस्य । पाण्डवेषु

विपत्ति का कारण बन गया, क्योंकि मैंने तुमसे मर्यादा-हीन आचरण तो कराया पर तुम्हारी रक्षा नहीं की ॥६॥

(यह कहकर फिर गिर पड़ता है)।

सूत—आयुष्मन्, धैर्य रखिये, धैर्य रखिये।

दुर्योधन—सूत, धिक्कार है। आपने क्या कर दिया?

रक्षा किये जाने योग्य, हमेशा आज्ञा-पालक बालक, भाई दु:शासन की बलि देकर (हमें) बचाया ॥७॥

सूत—महाराज, महारथियों की मर्म-भेदी बाण, तोमर, शक्ति और भालों की वर्षा ने महाराज की चेतना अपहरण करके निश्चेष्ट कर दिया था, इसलिये मैं रथ को दूर ले आया।

दुर्योधन—सूत, तुमने अनुचित किया—

कि मैं मेरे छोटे भाई के शत्रु उस पशु-तुल्य पाण्डव की गदा रूपी वज्र द्वारा किये गये प्रहारों से न जगाया गया, अथवा, जो मैं या भीम दु:शासन की उस ही रुधिर से गीली शय्या पर नहीं सोया ॥८॥

(लम्बा साँस लेकर आकाश की ओर देखकर) ओ निर्दय, भरत-कुल पराङ्मुख, दुर्भाग्य,

क्या यह सम्भव है कि (अब) मेरी मृत्यु हो जाये, परन्तु मारने वाला वृकोदर (भीम) न हो।

सूत—पाप शान्त हो। महाराज, यह क्या?

दुर्योधन—

अनुचितकर्मत्वात्पशुरिव पाण्डवपशु तस्य गदा एव अशनि वज्रं गदाशनिस्तेन कृतैः क्षोदैः पेषणैः प्रहारैरिति यावत्। विबोधितोऽस्मि प्रत्याहृतचेतनोऽस्मि। दौःशासनीं दुःशासनसंबन्धिनीम्। तामेव शय्यां नाधिशयितोऽहं तत्रैव न शयितः। अधिशीङ्स्थासां कर्म इत्याधारे कर्म। वृकोदरो वा नाधिशयितस्तामेव शय्याम्। [तस्माद्विरूपं कृतवानसीति पूर्वेण सम्बन्धः] ॥८॥

अपि नामेति। नाम संभावनायाम्। मृत्युरपि मे भवेन्न च वृकोदरो हन्ता

घातिताशेषबन्धोर्मे किं राज्येन जयेन वा ॥६॥

(ततः प्रविशति शरप्रहारव्रणबद्धपट्टिकालंकृतकायः सुन्दरकः)

सुन्दरकः—आर्या, अपि नामास्मिन्नुद्देशे सारथिद्वितीयो दृष्टो युष्माभिर्महाराजदुर्योधनो न वेत्ति। (निरूप्य) कथं न कोऽपि मन्त्रयते। भवतु। एतेषां बद्धपरिकराणां पुरुषाणां समूहो दृश्यते। अत्र गत्वा प्रक्ष्यामि। (परिक्रम्य विलोक्य च) कथमेते खलु स्वस्वामिनो गाढप्रहाराहतस्य घनसन्नाहजालदुर्भेद्यमुखैः कङ्कवदनैर्द्दयाच्छल्यान्युद्धरन्ति। तन्न खल्वेते जानन्ति। भवतु। अन्यतो विचेष्यामि (अग्रतोऽवलोक्य। किंचित्परिक्रम्य) इमे खल्वपरे प्रभूततराः संगता वीरमनुष्या दृश्यन्ते। तदत्र गत्वा प्रक्ष्यामि। (उपगम्य) हंहो जानीथ यूयं कस्मिन्नुद्देशे कुरुनाथो वर्तत इति (दृष्ट्वा) कथमेतेऽपि मां प्रेक्ष्याधिकतरं रुदन्ति। तन्न खल्वेतेऽपि जानन्ति। हा अतिकरुणं खल्वत्र वर्तते। एषा वीरमाता समरविनिहतं पुत्रकं श्रुत्वा रक्तांशुकनिवसनया समग्रभूषणया वध्वा सहानुम्रियते। (सश्लाघम्) साधु, वीरमातः, साधु। अन्यस्मिन्नपि जन्मान्तरे अनिहतपुत्रका भविष्यसि। भवतु। अन्यतो विचेष्यामि। (अन्यतो विलोक्य) अयमपरो बहुप्रहारनिहतकायोऽकृतव्रणबन्ध एव योधसमूह इमं शून्यासनं तुरङ्गममुपालभ्य रोदिति। नूनमेतेषामत्रैव स्वामी व्यापादितः। तन्न खल्वेतेऽपि जानन्ति। भवतु। अन्यतो गत्वा प्रक्ष्यामि। (सर्वतो विलोक्य) कथं सर्वे

भवेदिति प्रार्थनायां लिङ्। [मरणं ममेष्टं किंतु न वृकोदरहस्तादिति भावः] ॥६॥

व्रणेषु क्षतेषु बद्धा या पट्टिका पाटी इति प्रसिद्धा तयालङ्कृतकायः। आर्याः अपि नामेति प्रश्ने। अस्मिन्नुद्देशे प्रदेशे दृष्टो न हि वा। कथं वा प्रेक्ष्याधिकतरं रुदन्ति। तन्नखल्वेतेऽपि जानन्ति। भवतु। अन्यतो गत्वा पृच्छामि। एतेषां बद्धपरिमण्डलानां पुरुषाणां समूहो दृश्यते भवतु। अत्र गत्वा पृच्छामि। कथमेते खलु स्वामिनो गाढप्रहारहतस्य घनसन्नाहजालदुर्ग्राह्यमुखैः [घनः ।घः संनाहः कवचस्तस्य जालं तेन दुर्भेद्यं मुखं येषां तैः कङ्कुवदनैः शस्त्रविशेषैः।] एते बहुतराः संमिलिता वीरमनुष्या दृश्यन्ते। हा हा अतिकरुणं खल्वत्र वर्तते। कथमेषा वीरमाता समरविनिहतं पुत्रं प्रेक्ष्य रक्ताशुकयुगनेपथ्यया सर्वाङ्गभूषणया

(क्योंकि अब) मुझे, जिसके सब के सब बन्धु मार डाले गये है, राज्य से या विजय से क्या (लाभ है) ॥९॥

(तत्पश्चात् बाणों के प्रहार से हुए घावो पर बँधी पट्टियो से सुशोभित शरीर वाला सुन्दरक प्रवेश करता है)

सुन्दरक—आर्य लोगों, क्या आप लोगों ने इस जगह सारथि-सहित महाराज दुर्योधन को (कहीं) देखा है या नहीं ? (ध्यान मे देखकर) कैसे ? कोई भी नही बोल रहा है ? अच्छा, यह कमर कसे हुये लोगों का समूह दिखलाई दे रहा है। यहां चलकर पूछूँगा। (घूमकर और देखकर) कैसे ? ये सब गाढ प्रहारों से हत हुये अपने-अपने स्वामी के वक्ष स्थल से चिमटियो द्वारा जिनके मुख दृढ कवच के जाल से भी नही टूट सकते हैं, काँटे निकाल रहे है तब यह नहीं जानते होगे। अच्छा, अन्यत्र खोजता हूँ। (आगे देखकर और कुछ चलकर) ये और दूसरे और भी अधिक एकत्र हुये वीर पुरुष दीख रहे हैं। तो यहाँ चलकर पूछता हूँ। (समीप जाकर) क्यों, आप लोग जानते हैं कि कौरव-राज किस जगह है ? (देखकर) कैसे ? यह भी मुझे देखकर और अधिक रोने लगे ! तब यह भी नही जानते। ओह ! यहां तो बड़ा ही करुणाजनक (दृश्य) है। यह वीर पुरुष की माता युद्ध में मारे गये पुत्र की बात सुनकर लाल रेशमी वस्त्रों से ढकी हुई और सम्पूर्ण आभूषण धारण किये वधू के साथ अनुसरण कर रही है। (प्रशंसा के साथ) धन्य हो वीर-माता, धन्य हो। अगले जन्म मे न मारे गये पुत्र वाली होगी। अच्छा, अन्यत्र खोजूँगा। (दूसरी ओर देखकर) यह योद्धाओं का दूसरा समूह है, जो अनेक प्रहारो से शरीर के घायल होने पर घावों को बाँधे बिना ही इस खाली काठी वाले घोड़े को उपालम्भ देकर रो रहा है। अवश्य इनका स्वामी यही मार दिया गया है। तब यह भी नही जानते है। अच्छा, दूसरी जगह चलकर पूछता हूँ। (चारो ओर देखकर)

वध्वा सममनुम्रियते। अयि वीरमातः मा त्वमन्यस्मिन्नपि जन्मान्तरे विनिहतपुत्रका भविष्यसि। [अन्यत् जन्म जन्मान्तर तस्मिन् । प्रस्तुतजन्मान्तरादपरस्मिन्नित्यर्थः।] अयमपरो बहुप्रहारव्रणितकायोऽकृतव्रणबन्ध एवं योधसमूह इमं

एषावस्थानुरूपं व्यसनमनुभवन्भागधेयविमुखतया पर्याकुलो जनः । तत्किमत्र प्रक्ष्यामि । कं वोपालप्स्ये । भवतु । स्वयमेवात्र विचेष्यामि । (परिक्रम्य) भवतु दैवमिदानीमुपालप्स्ये । हहो दैव, एकादशानामक्षौहिणीनां नायो, ज्येष्ठो भ्रातृशतस्य भर्ता गाङ्गेयद्रोणाङ्गराजशल्यकृपकृतवर्माश्वत्थामप्रमुखस्य राजचक्रस्य, सकलपृथ्वीमण्डलैकनाथो महाराजदुर्योधनोऽप्यन्विष्यते । अन्विष्यमाणोऽपि न ज्ञायते कस्मिन्नुद्देशे वर्तत इति । (विचिन्त्य निःश्वस्य च) अथवा किमत्र दैवमुपालभे । तस्य खल्विदं निर्भर्त्सितविदुरवचनबीजस्यावधीरितपितामहहितोपदेशाङ्कुरस्य शकुनिप्रोत्साहनाविर्विरूढमूलस्य जतुगृहद्यूतविषशाखिनः संभृतचिरकालसम्बद्धवैरालवालस्य पाञ्चालीकेशग्रहणकुसुमस्य फलं परिणमति (अन्यतो विलोक्य) यथायमपि विविधरत्नप्रभासंवलितसूर्यकिरणप्रसूतशक्रचापसहस्रसपूरितदशदिशामुखो धूमकेतुवशो रथो दृश्यते तथाहं तर्कयाम्यवश्यमेतेन महाराजदुर्योधनस्य विश्रामोद्देशेन भवितव्यमिति । यावन्निरूपयामि (उपगम्य दृष्ट्वा निःश्वस्य च) कथमेकादशानामक्षौहिणीनां नायको भूत्वा महाराजो दुर्योधनः प्राकृतपुरुष इवाश्लाघनीयायां भूमावुपविष्टस्तिष्ठति । अथवा तस्य खल्विदं पाञ्चालीकेशग्रह कुसुमस्य फलं परिणमति ।

[अज्जा अवि णाम इमस्सिं उद्देसे सारहिदुइओ दिट्ठो तुम्हेहिं महाराअदुज्जोहणो ण वेत्ति । कहं ण को वि मन्तेदि । होदु । एदाण बद्धपरिअराणपुरिसाणं समूहो दीसइ । एत्थ गदुअ पुच्छिस्सम् । कहं एदे क्खु स्वसामिणो गाढप्पहारहदस्स घणसण्णाहजालदुब्भेज्जमुहेहिं कङ्कवदणेहिं हिअआदो सल्लाइं उद्धरन्ति । ता ण क्खु एदे जाणन्ति । होदु । अण्णदो विचिणइस्सम् । इमे क्खु अवरे पहूददरा सगदा वीरमणुस्सा दीसन्ति । ता एत्थ गदुअ पुच्छिस्सम् हंहो जाणह तुम्हे कस्सिं उद्देसे कुरुणाहो वट्टइत्ति । कहं एदे वि मं पेक्खिअ अहिअदरं रोअन्दि । ता ण हु एदे वि जाणन्ति हा अदिकरुणं क्खु एत्थ वट्टइ । एसा वीलमादा समरविणिहदं पुत्तअं सुणिअ रत्तंसुअणिवसणाए समग्गभूसणाए वहूए सह अणुमरदि साहु वीरमादे साहु । अण्णस्सिं वि जम्मन्तरे अणिहदपुत्तआ

शून्यासन तुरङ्गमपुपालक्ष्य [निन्दित्वा] रोदिति । नूनमेतेषा स्वामीह समरे हतः । तन्न खल्वप्येते जानन्ति । सर्व एव कालावस्थानुरूपमनुभवन्भागधेयविषम-

कैसे सब ही लोग भाग्य के विपरीत होने के कारण अपनी अवस्था के अनुरूप विपत्ति भोगते हुये व्याकुल हो रहे हैं। इसलिये यहाँ किससे पूछूं या किसे उपालम्भ दूं ? अच्छा, यहाँ मैं स्वय ही पता लगाऊंगा। (घूमकर) अच्छा, अब मुझे भाग्य को ही उपालम्भ देना चाहिये। वाह रे भाग्य, ग्यारह अक्षौहिणी सेनाओं के ईश्वर, सौ भाईयो मे सबसे बड़े, भीष्म, द्रोण, कर्ण, शल्य, कृप, कृतवर्मा और अश्वत्थामा प्रमुख राज-समूह के स्वामी, सम्पूर्ण पृथ्वी मण्डल के एकच्छत्र अधिपति महाराज दुर्योधन को भी खोजा जा रहा है ! और खोजने पर भी पता नही लग रहा कि किस जगह है। (सोचकर और लम्बा साँस लेकर) अथवा इसके लिये भाग्य को भी क्या दोष दूं ? क्योंकि यह तो उस लाक्षागृह-द्यूत-विष रूप वृक्ष का फल है, तिरस्कृत विदुर का वचन जिसका बीज है, अवहेलना किया गया पितामह का हितकारी उपदेश जिसका अकुर है, शकुनि के प्रोत्साहन आदि से जिसकी जड मजबूत हुई है, उत्पन्न हुआ और चिरकाल मे बधा हुआ वैर जिसका थाँवला है और द्रौपदी का केश-ग्रहण जिसका कुसुम है। (दूसरी ओर देखकर) जैसे कि यहाँ एक कटे हुए ध्वजदण्ड वाला रथ दीख रहा है, जो अनेक प्रकार के रत्नो की कान्ति से मिश्रित सूर्य की किरणों से उत्पन्न सहस्रो इन्द्र-धनुषों द्वारा दसो दिशाओ के भागों को भर रहा है, इससे अनुमान करता हूँ कि यही महाराज दुर्योधन का विश्राम-स्थल होगा। तब ध्यान से देखता हूँ (समीप जाकर देखकर और लम्बा साँस लेकर) कैसे ग्यारह हजार अक्षौहिणी सेनाओ का स्वामी होकर महाराज दुर्योधन सामान्य पुरुष के समान यहाँ अप्रशस्त भूमि पर बैठा हुआ है। अथवा यह द्रौपदी के केश-ग्रहण रूपी कुसुम का फल पक रहा है।

शीलतया बाष्पपर्याकुलो जनो दृश्यते । [अवस्थानुरूप स्वस्वावस्थासदृशम् । [तत्किमिदानीमत्र पृच्छामि । कं वोपालम्भे । भवतु । दैवमुपालभे । यतस्य खल्वेतदिति निर्भर्त्सित तिरस्कृतं यद्विदुरवाक्य तत् । विदुरवाक्यनिर्भर्त्सनमित्यर्थः बीज यस्य तयोक्तस्य । अवधीरित. पितामहस्य हित. उपदेश एवाङ्कुरो यस्तस्य तस्य । जतुनं. गृह जतुगृह च द्यूत च विष भीमाय विषदानं चैव शाखा विद्यन्ते अस्य तस्य । संभूतं च तच्चिरकाल सवृद्ध यद्वैर तदेवालवाल जलावापप्रदेशो यस्य]

हुविस्ससि । होदु अण्णदो विचिणइस्सम् । अअं अवरो बहुप्पहारणिहदकाओ अकिदव्वणप्पडिआरो एव्व जोहसमूहो इमं सुण्णासणं तुलङ्गमं उवालहिअ रोइदि। णूणं एदाणं एत्थ एव्व सामी वावादिदो । ता ण क्खु एदे वि जाणन्दि होदु । अण्णदो गदुअ पुच्छिस्सम् । कहं सव्वो एव्व अवरयाणरूवं व्वसणं अणुभवन्तो भाअवेअविसुरदाए पज्जाउलो जणो । ता कं एत्थ पुच्छिस्सम् । कं वा उवालहिस्सम् । होदु । सअं एव्व एत्थ विचिणइस्सम् । होदु । देव्वं दाणीं उवालहिस्सम् हंहो देव्व एआदसाणं अक्खोहिणीण णाहो जेट्ठो भादुसदस्स भत्ता गङ्गेअदोणङ्गराअसल्लकिवकीदवम्मअस्सत्थामप्पमुहस्स राअचक्कस्स सअलस्स पुहवीमण्डलेक्कणाहो महाराजदुज्जोहणो वि अण्णेसीअदि । अण्णेसोअन्तो वि ण जाणीअदि कस्सिं उद्देसे वट्टइ त्ति । अहं वा किं एत्थ देव्वं उवालहामि । तस्स क्खु एदं णिअअचिन्तअविउरवअणवीअस्स अवहीरिदपिदामहहिदोवदेसङ्कुरस्स सउणिप्पोच्छाहणादिविरूढमूलस्स जदुगेहजूदविससाहिणो संभूदचिरआलसंबद्धवेरालवालस्सपञ्चालीकेसग्गहणकुसुमस्स फलं परिणमदि । जहा एत्थ एसो विविहरअणप्पहासंवलिदसूरकिरणप्पसूदसक्कचावसहस्ससंपूरिददसदिसामुहो सूणकेदुवंसो रहो दीसइ ता अहं तक्केमि अवस्सं एदिणा महाराअदुज्जोहणस्स विस्सामुद्देसेण होदव्वम् याव निरूपेमि । कधं एआदसाणं अक्खोहिणीणं णाअक्को अविअ महाराओ दुज्जोहणो पइपुरिसो विअ असलाहणीए भूमिए उवविट्ठो चिट्ठदि । अध वा तस्स क्खु एदं पञ्चालीकेसग्गहकुसुमस्स फलं परिणमदि ।]

(उपसृत्य सूतं संज्ञया पृच्छति)

सूतः—(दृष्ट्वा) अये, कथं सङ्ग्रामात्सुन्दरकः प्राप्तः ।

सुन्दरकः—(उपगम्य) जयतु जयतु महाराजः । [जअदु जअदु महाराओ ।]

दुर्योधनः—(विलोक्य) अये सुन्दरक । सुन्दरक, कच्चित्कुशलमङ्गराजस्य ।

सुन्दरकः—देव, कुशलं शरीरमात्रेण । [देव कुशलं सरीरमेत्तेण ।]

दुर्योधनः—(ससंभ्रमम्) सुन्दरक, किं किरीटिनास्य निहता धौरेया हतः सारथिर्भग्नो वा रथः ।

सुन्दरकः—देव, न भग्नो रथः । अस्य मनोरथोऽपि । [देव ण भग्गो रहो । से मणोरहो वि ।]

संभूतस्य ।···अम्भो यथा चैप विविधरत्नप्रभाभास्वरसंगलितसूरकिरण···(विवि

(समीप जाकर सारथि से संकेत द्वारा पूछता है)

सूत—(देखकर) अरे क्या ? युद्ध-भूमि से सुन्दरक आया है ?

सुन्दरक—(समीप जाकर) जय हो, महाराज की जय हो।

दुर्योधन—(देखकर) अरे सुन्दरक है ! सुन्दरक, अङ्गराज कुशल से हैं ?]

सुन्दरक—देव केवल देहमात्र से कुशल हैं।

दुर्योधन—(घबराहट) सुन्दरक, क्या अर्जुन ने इसके घोड़े मार डाले, सारथि मार दिया या रथ तोड़ दिया ?

सुन्दरक—देव, रथ ही नहीं तोड़ दिया, प्रत्युत इसका मनोरथ भी।

धानां रत्नानां प्रभा विविधा या रत्नप्रभाः ताभिः संवलिता मिश्रिता ये सूर्य-किरणास्तैः प्रसूतं शक्रचापसहस्रं तेन सपूरितानि दशाना दिशां मुखानि येन सः।] दिङ्मुखो "तया तर्कयामि"'रथोद्देशेन भवितव्यम्। भवतु। उपसर्पामि कथमेष देव एकादशानामक्षौहिणीनां नाथो महाराजदुर्योधनोऽश्लाघनीयः प्राकृतपुरुष इव भूमावुपविष्टस्तिष्ठति। नूनं तस्य खल्वेतत्पाञ्चालीकेशग्रह-कुसुमस्य फल परिणमति। अत्र परिमण्डलं मण्डली। कङ्कवदन संदंशिका। रणबन्धः इति पाठं रणबन्धः सङ्ग्रामानुबन्धः। नेपथ्य प्रसाधनम्। नेपथ्यं प्रतिकर्म प्रसाधनम् इत्यमरः। वध्वा पुत्रवध्वा। भागधेयं भागरूपनामभ्यो धेय' इति धेयप्रत्ययः। शीलतया कालावस्थानुरूपमित्यन्वयः। विदुरो मन्त्री। पितामहो भीष्मः। आलवालं थलम् इति प्रसिद्धम्। अम्मो शब्दो देशी ज्ञातार्थो हर्षार्थो वा। भास्वरः परप्रकाशकः। संवलितः संवद्धो यः सूरकिरण आदित्यतेजः। उत्तमरत्नतेजोभिरिन्द्रधनुरारभ्यत इति रत्नपरीक्षा। उद्देशः प्रदेश.। प्राकृतः पामरः। स्वागतं कुशलम्। सारथे कुतः स्वागतम्। निवेदय मामागमनं देवस्य। जयति देवः। कच्चित्कामप्रवेदने इत्यमरः। तेन कथमेरयर्थः। देव कुशलं स्वामिन. शरीरमात्रकेणैव। धौरेया अश्वाः। धुरं महन्तीत्यर्थे धुरो यड्ढकौ इति ढकि धौरेय इति साधु॥ देव न हि

दुर्योधनः—(सरोषम्) किमविस्पष्टकथितैराकुलमपि पर्याकुलयसि मे हृदयम् । तदशेषतो विस्पष्टं कथ्यताम् ।

सुन्दरकः—यद्देव आज्ञापयति । अपे देवस्य मुकुटमणिप्रभावेणापनीता मे रणप्रहारवेदना । (इति साटोपं परिक्रम्य) शृणोतु देवः । अस्तीदानीं कुमारदुःशासनवध—(इत्यर्धोक्ते मुखमाच्छाद्य मूर्च्छां नाटयति ।) [जं देवो आणवेदि । अए देवस्स मउडमणिप्पहावेण अवणीदा मे रणप्पहारवेअणा । सुणादु देवो । अत्थि दाणी कुमालदुस्सासणवह ।]

सूतः—सुन्दरक, कथय । कथितमेव दैवेन ।

दुर्योधनः—कथ्यताम् । श्रुतमस्माभिः ।

सुन्दरकः—शृणोतु देवः । अद्य तावत्कुमारदुःशासनवधामर्षितेन स्वामिमाङ्गराजेन कुटिलभ्रुकुटीभङ्गभीषणनिटिलपट्टेनाविज्ञातसंधानमोक्षशिलीमुखसंघातवर्षिणा अभियुक्तः स दुराचारो मध्यमपाण्डवो भीमसेनहतकः । [सुणादु देवो । अज्ज दाव कुमालदुस्सासण वहामरिसिदेण सामिणा अङ्गराएण कुडिलभिउडीभङ्गभीसणणिडलवट्टेण अविण्णादसंधाणमोक्खसिलीमुहसंघादवरिसिणा अभिजुत्तो सो दुराआरो मज्झमपण्डवो भीमसेणहतओ ।]

उभौ—ततस्ततः ।

सुन्दरकः—ततो देव, उभयबलमिलद्दीप्यमानकरितुरगपदातिसमुद्भूतधूलिनिकरेण पर्यस्तगजघटासंघातेन च विस्तीर्यमाणेनान्धकारेणान्धीकृतमुभयबलम् । न खलु गगनतलं लक्ष्यते । [तदो देव, उहअबलमिलन्तदीप्पन्तकरितुरअपदादिसमुब्भूदधूलिणिअरेण पल्लत्थगअघडासंघादेण अ वित्थरन्तरेण अन्धआरेण अन्धीकिदं उहअबलम् । ण हु गअणतलं लक्खीअदि ।

उभौ—ततस्ततः ।

रथो भग्नोऽस्यामास्माकं स्वामिनो मनोरथ. । कथितैः कथनैः नपुंसके भावे क्त [मुखमाच्छाद्य अप्रियकथनजातलज्जावशादिति भावः ।] यद्देवं आज्ञापयति । अपनीय दूरीकृत्य । दिष्ट्या महाराजस्य मुकुटमहामणिप्रभावेणापगता मे बाणव्रणवेदना । शृणोतु देवः शृणोतु सारथिश्च । श्रुतः स्वामिना दुःशासनवधः ।

सुन्दरकः—ततो देव, दूराकृष्टधनुर्गुणास्फोटनटङ्कारेण गम्भीरभीषणेन ज्ञायते गर्जितं प्रलयजलधरेणेति। [तदो देव, दूराकट्टिअधणुग्गुणाप्फोडणटङ्कारेण गम्भीरभीमणेन जाणीअदि गज्जिदं पदअजलहरेणेति।]

दुर्योधनः—ततस्ततः।

सुन्दरकः—ततो देव, द्वयोरपि तयोरन्योन्यसिंहनादगर्जितपिशुनं विविधपरिमुक्तप्रहरणाहतकवचसंगलितज्वलनविद्युच्छटाभासुरं गम्भीरस्तनितचापजलधरं प्रसरच्छरधारासहस्रवर्षि जातं समरदुर्दिनम्।

[तदो देव दोहिणं वि ताणं अण्णोण्णसिंहणादगज्जिदपिसुणं विविहपरिमुक्कप्पहरणाहदकवअसंगलिदजलणविज्जुच्छडाभासुरं गम्भीरत्थणिअचावजलहरं प्पसरन्तसरधारासहस्सवरिसं जादं समरदुद्दिणम्।]

दुर्योधनः—ततस्ततः।

सुन्दरकः—ततश्च देव, एतस्मिन्नन्तरे ज्येष्ठस्य भ्रातुः पराभवशङ्किना धनंजयेन वज्रनिर्घातनिर्घोषविषमरसितध्वजाग्रस्थितमहावानरः तुरङ्गमसंवाहनव्यापृतवासुदेवशङ्खचक्रासिगदालाञ्छितचतुर्बाहुदण्डदुर्दर्शन आपूरितपाञ्चजन्यदेवदत्ततारररसितप्रतिरवभरितदशदिशामुखकुहरो धावितस्तमुद्देशं रथवरः।

[तदो अ देव, एदस्सिं अन्तरे जेट्ठस्स भादुणो पराभवसङ्किणा धणंजएण वज्जणिग्घादणिग्घोसविसमरसिदधअग्गट्ठिदमहावाणरो तुरङ्गमसंवाहणावापिदवासुदेवसङ्खचक्कासिगदालञ्छिदचउब्बाहुदण्डदुद्दसणो आपूरिअपञ्चजण्णदेअदत्ततारररसिदप्पडिरवभरिददसामुहकुहरो धाविदो त उद्देसं रहवरो।]

दुर्योधनः—ततस्ततः।

पान्धी०। प्रनष्टं गगनाङ्गनम्। कुत्रापि किमपि न दृश्यते। [दूराकृष्टधनुर्गुणस्य यदास्फोटनं तेन यः टंकारस्तेन।] गम्भीरभीषणेन अन्योन्यस्य सिंहनाद एव गर्जितं तत्पिशुनं यस्य। पिशुनो खलसूचको इत्यमरः। विविधानि यानि परिमुक्तानि प्रहरणानि तैराहतं यत्कवचं तस्मात्संगलितः स्फुरितो यो ज्वलनः स एव विद्युच्छटा तया भासुरम्। गम्भीरं स्तनितं गर्जितं यस्यासौ चाप एव जलधरः यस्मिन्। प्रसरन्त शरा एव धारास्तासां सहस्राणि वर्षितुं शील यस्य तत्तथोक्तम्। धारासंपात आसारः। मेघच्छन्नेऽह्नि दुर्दिनम्। इति चामरः।]

सुन्दरक—देव, तत्पश्चात् गम्भीर और भयङ्कर, दूर तक खींची हुई धनुष की डोरी के छोड़ने की टकार से प्रतीत होता था कि, मानो, प्रलयकाल का मेघ गरज रहा था।

दुर्योधन—इसके बाद क्या हुआ ?

सुन्दरक—देव, इसके पश्चात् उन दोनों का युद्ध रूपी दुर्दिन हुआ, परस्पर सिंहनाद रूपी गर्जन जिसका सूचक था, जो अनेक प्रकार के छोड़े हुये आयुधों से टकराये कवचों से निकली हुई ज्वाला रूपी विद्युत की चमक से चमक रहा था, जिसमें गम्भीर गर्जन वाली धनुष ही मेघ था और जो तीव्र गति से चलते हुये सहस्रों तीर रूपी (जल) धाराओं को बरसा रहा था।

दुर्योधन—इसके बाद ?

सुन्दरक—देव, इसके बाद इसी बीच बड़े भाई के पराजय की आशंका करने वाला धनञ्जय (अर्जुन) ने अपना उत्तम रथ, जिसके ध्वज के अग्र-भाग पर वज्र की कड़क के शब्द के समान भीषण ध्वनि करने वाला महाकपि (हनुमान) स्थित था, जो घोड़ों को हाँकने में लगे हुये वसुदेव-पुत्र (कृष्ण) की शङ्ख, चक्र, असि और गदा से लाञ्छित चारो भुजाओं से दुर्निरीक्ष्य था, जिसने बजाये गये (कृष्ण के) पाञ्चजन्य और (अर्जुन के) देवदत्त नामक शंखों के तीव्र शब्द की प्रतिध्वनि से दसों दिशाओं के मुख रूपी गुहाओं को भर दिया था, उसी स्थल की ओर दौड़ाया।

दुर्योधन—इसके बाद ?

परिभवशङ्किना ध्वजयष्टिस्थित···प्रतिरवोद्भरितदशदिङ्मुखकुहरः प्रापितस्तमेवोद्देशं धनंजयस्यैव रथवरः। अत्र वज्रस्य निर्घातवद् उद्घोषः उच्चैःशब्दस्तद्द्विपमं रसितं यस्य स तथा। ध्वजाग्रस्थितः महावानरो यस्य। तुरङ्गमाणां संवाहने व्यापृतः वासुदेव तस्य शङ्खश्च चक्रं च असिश्च गदा च ताभिः लाञ्छिता ये चत्वारः बाहुदण्डास्तैर्दुर्दर्शनः दुष्प्रेक्ष्यः। आपूरितौ यौ पाञ्चजन्यदेवदत्तौ तयोस्ताररसितस्य यः प्रतिरवस्तेन भरितानि दशदिशामुखकुहराणि येन स तथा।] शङ्खो लक्ष्मीपते पाञ्चजन्यः इत्यमरः। देवदत्तोऽर्जुनशङ्खः। तार उच्चः।

सुन्दरकः—ततो देव, दूराकृष्टधनुर्गुणाच्छोटनटङ्कारेण गम्भीरभीषणेन ज्ञायते गर्जितं प्रलयजलधरेणेति । [तदो देव, दूराकट्टिअधणुग्गुणाच्छोडणटङ्कारेण गम्भीरभीसणेन जाणीअदि गज्जिदं पदअजलहरेणेति ।]

दुर्योधनः—ततस्ततः ।

सुन्दरकः—ततो देव, द्वयोरपि तयोरन्योन्यसिंहनादगर्जितपिशुनं विविधपरिमुक्तप्रहरणाहतकवचसंगलितज्वलनविद्युच्छटाभासुरं गम्भीरस्तनितचापजलधरं प्रसरच्छरधारासहस्रवर्षि जातं समरदुर्दिनम् ।

[ततो देव दोह्णिं वि ताणं अण्णोण्णसिंहणादगज्जिदपिसुणं विविहपरिमुक्कप्पहरणाहदकवअसंगलिदजलणविज्जुच्छडाभासुरं गम्भीरत्थणिअचावजलहरं प्पसरन्तसरधारासहस्सवरिसं जादं समरदुद्दिणम् ।]

दुर्योधनः—ततस्ततः ।

सुन्दरकः—ततश्च देव, एतस्मिन्नन्तरे ज्येष्ठस्य भ्रातुः पराभवशङ्किना धनंजयेन वज्रनिर्घातनिर्घोषविषमरसितध्वजाग्रस्थितमहावानरः तुरङ्गमसंवाहनव्यापृतवासुदेवशाङ्गचक्रासिगदालाञ्छितचतुर्बाहुदण्डदुर्दर्शनः आपूरितपाञ्चजन्यदेवदत्ततारत्वरसितप्रतिरवभरितदशदिशामुखकुहरो धावितस्तमुद्देशं रथवरः ।

[तदो अ देव, एदस्सिं अन्तरे जेट्ठस्स भादुणो पराभवसङ्किणा धणंजएण वज्जणिग्घादणिग्घोसविसमरसिदधअग्गट्ठिदमहावाणरो तुरङ्गमसंवाहणावावुदवासुदेवसङ्खचक्कासिगदालञ्छिदचउब्बाहुदण्डदुद्दसणो आपूरिअपञ्चजण्णदेअदत्ततारसिदप्पडिरवभरिददसामुहकुहरो धाविदो तं उद्देसं रहवरो ।]

दुर्योधनः—ततस्ततः ।

गाण्डीव० । प्रनष्टं गगनाङ्गनम् । कुत्रापि किमपि न दृश्यते । [दूराकृष्टधनुर्गुणस्य यदाच्छोटनं तेन यः टंकारस्तेन ।] गम्भीरभीषणेन अन्योन्यस्य सिंहनाद एव गर्जितं तत्पिशुनं यस्य । पिशुनौ खलसूचकौ इत्यमरः । विविधानि यानि परिमुक्तानि प्रहरणानि तैराहतं यत्कवचं तस्मात्संगलितः स्फुरितो यो ज्वलनः स एव विद्युच्छटा तया भासुरम् । गम्भीरं स्तनितं गर्जितं यस्यासौ चाप एव जलधरः यस्मिन् । प्रसरन्तः शरा एव धारास्तासां सहस्राणि वर्षितुं शीलं यस्य तत्तथोक्तम् । धारासंपात आसारः । मेघच्छन्नेऽह्नि दुर्दिनम् । इति चामरः ।]

सुन्दरक—देव, तत्पश्चात् गम्भीर और भयङ्कर, दूर तक खींची हुई धनुष की डोरी के छोड़ने की टंकार से प्रतीत होता था कि, मानो, प्रलयकाल का मेघ गरज रहा था।

दुर्योधन—इसके बाद क्या हुआ ?

सुन्दरक—देव, इसके पश्चात् उन दोनों का युद्ध रूपी दुर्दिन हुआ, परस्पर सिंहनाद रूपी गर्जन जिसका सूचक था, जो अनेक प्रकार के छोड़े हुये आयुधों से टकराये कवचों से निकली हुई ज्वाला रूपी विद्युत की चमक से चमक रहा था, जिसमें गम्भीर गर्जन वाली धनुष ही मेघ था और जो तीव्र गति से चलते हुये सहस्रों तीर रूपी (जल) धाराओं को बरसा रहा था।

दुर्योधन—इसके बाद ?

सुन्दरक—देव, इसके बाद इसी बीच बड़े भाई के पराजय की आशंका करने वाला धनञ्जय (अर्जुन) ने अपना उत्तम रथ, जिसके ध्वज के अग्र-भाग पर वज्र की गड़क के शब्द के समान भीषण ध्वनि करने वाला महाकपि (हनुमान) स्थित था, जो घोड़ों को हाँकने में लगे हुये वसुदेव-पुत्र (कृष्ण) की शङ्ख, चक्र, असि और गदा से लाञ्छित चारों भुजाओं से दुर्निरीक्ष्य था, जिसने बजाये गये (कृष्ण के) पाञ्चजन्य और (अर्जुन के) देवदत्त नामक शंखों के तीव्र शब्द की प्रतिध्वनि से दसों दिशाओं के मुख रूपी गुहाओं को भर दिया था, उसी स्थल की ओर दौड़ाया।

दुर्योधन—इसके बाद ?

परिभवशङ्किना ध्वजयष्टिस्थित···प्रतिरवोद्धुरितदशदिङ्मुखकुहरः प्रापितस्तमेवोद्देशं धनंजयरथैव रथवरः। अत्र वज्रस्य निर्घातवद्य उद्घोष. उच्चैशब्दस्तद्वद्विषमं रसितं यस्य स तथा। ध्वजाग्रस्थितः महावानरो यस्य। तुरङ्गमाणां संवाहने व्यापृतः वासुदेव तस्य शङ्खश्च चक्रं च असिश्च गदा च ताभिः लाञ्छिता ये चत्वारः बाहुदण्डास्तैर्दुर्दर्शनः दुष्प्रेक्ष्यः। आपूरितौ यौ पाञ्चजन्यदेवदत्तौ तयोस्ताररसितस्य यः प्रतिरवस्तेन भरितानि दशदिशामुखकुहराणि येन स तथा।] शङ्खो लक्ष्मीपते पाञ्चजन्यः इत्यमरः। देवदत्तोऽर्जुनशङ्खः। तार उच्चः।

सुन्दरकः—ततो भीमसेनधनंजयाभ्यामभियुक्तं पितरं प्रेक्ष्य ससंभ्रमं विगलितमवधूय रत्नशीर्षकमाकर्णाकृष्टकठिनकोदण्डजीवः दक्षिणहस्तोत्क्षिप्तशर-पुङ्खविघट्टनत्वरितसारथिस्तं देशमुपगतः कुमारवृषसेनः ।

[तदो भीमसेणधणंजएहिं अभिजुत्तं पिदरं पेक्खिअ ससंभमं विअलिअं अवधूणिअ रअणसीसअं आकण्णाकट्टिदकठिणकोदण्डजीओ दाहिणहत्थुक्खित्तसर-पुंखविघट्टणतुवराइदसारहीओ तं देसं उवगदो कुमालविससेणो ।]

दुर्योधनः—(सावष्टम्भम्) ततस्ततः ।

सुन्दरकः—ततश्च देव, तेनागच्छतैव कुमारवृषसेनेन विदलितासिलतास्या-मलस्निग्धपुङ्खैः कठिनकङ्कपत्रैः कृतवर्णैः शाणशिलानिशितश्यामलशल्यबन्धैः कुसुमित इव तदमुहूर्तेन शिलीमुखैः प्रच्छादितो धनंजयस्य रथवरः ।

[तदो अ देव तेण आअच्छन्तेण एव्व कुमालविससेणेण विदलिदासिलदा-सामलसिणिद्धपुङ्खेहिं कठिणकङ्कवत्तेहिं किसणवण्णेहिं साणसिलाणिसिदसा-मलसल्लबन्धेहिं कुसुमिदो विअ तक्खणमुहुत्तएण सिलीमुहेहिं पच्छादिदो धणंजअस्स रहवरो ।]

उभौ—(सहर्षम्) ततस्ततः ।

सुन्दरकः—ततो देव, तीक्ष्णविक्षिप्तनिशितभल्लबाणवर्षिणा धनंजयेनैवाभिहस्य भणितम्—अरे वृषसेन, पितुरपि तावत्ते न युक्तं मम कुपितस्याभिमुखं स्थातुम् । किं पुनर्भवतो बालस्य । तद्गच्छ । अपरैः कुमारैः सहायुध्यस्वेति । एवं वाचं निशम्य गुरुजनाधिक्षेपेणोद्दीपितकोपोपरक्तमुखमण्डलविजृम्भितभ्रुकुटीभङ्ग-भीषणेन चापधारिणा कुमारवृषसेनेनापि मर्मभेदकैः परुषविरसैः श्रुतिपथकृत-प्रणयैर्निर्भर्त्सितो गाण्डीवी बाणैर्न पुनर्दुष्टवचनैः । तदो देव तिक्खविक्खित्तणि-

---

भरितेति तारकादित्वादितच् । [रत्नशीर्षकं रत्नमयशिरस्त्राणम् । आकर्णमाकृष्टा कठिनस्य कोदण्डस्य जीवा येन । दक्षिणहस्तेन उत्क्षिप्ता ये शरास्तेषां पुङ्खैः यद्विघट्टनं तेन त्वरितः सारथिर्यस्य तथाभूतः ।] ससंभ्रमामुक्तविगलितमवधूय''' अत्रामुक्तः । परिहितः । शीर्षकं टोप्पर इति ख्यातम् । शीर्षकं शीर्षण्यं च शिरस्त्रे इत्यमरः । जीवा पतञ्चिका । [विदलिता विशाटिता या असिलता तद्वत् श्यामलाः स्निग्धाश्च पुंखा येषां तैः । कठिनानि कंकस्य कंकस्येव वा पत्राणि पुंखा येषां तैः । शाणशिलायां निकषपाषाणे निशिताः श्यामलाः शल्यबन्धा येषां तैः । शिली-

सुन्दरक—तब भीमसेन और अर्जुन द्वारा आक्रान्त पिता को देखकर जल्दी में गिरे हुये रत्नजटित मुकुट की उपेक्षा करके कठोर धनुष की डोर को कान तक खींचता हुआ और दाहिने हाथ से निकाले गये बाण के पिछले भाग से सारथि को उकसाता हुआ कुमार वृषसेन उस जगह पहुँच गया।

दुर्योधन—(संभलकर) तब क्या हुआ ?

सुन्दरक—देव, तब कुमार वृषसेन ने आते ही टूटी हुई तलवार के समान श्याम और स्निग्ध पूंछ वाले कठोर कङ्क-पक्ष वाले काले वर्ण वाले और शान पर पैने किये हुए श्यामल फलक वाले बाणों से मुहूर्त भर में अर्जुन के उत्तम रथ को (ऐसे) ढक दिया, मानो पुष्पों से लदा हुआ वृक्ष हो।

दोनों—(हर्षपूर्वक) इसके बाद ?

सुन्दरक—देव, इसके पश्चात् तीव्र फेंके गये पैने भल्ल नामक बाणों की वर्षा करने वाले अर्जुन ने मुस्कराते हुये कहा—'अरे वृषसेन, मुझ क्रुद्ध के सामने तुम्हारे पिता को भी खड़ा होना उचित नहीं है, फिर तुम बालक का तो क्या ? इसलिए जाओ, अन्य कुमारों के साथ युद्ध करो। इस प्रकार के वचन सुनकर पिता की निन्दा से भड़के हुये क्रोध से लाल मुख-मण्डल पर प्रकट हुये भ्रुकुटि-भङ्ग से भीषण, धनुर्धारी, कुमार वृषसेन ने भी मर्मभेदी, कठोर तथा भीषण एवं श्रुति-पथ से प्रेम करने वाले (अर्थात् कान तक खींच कर छोड़े गये) बाणों से अर्जुन की ताडना की, न कि बुरे वचनों से।

मुखैः बाणैः भ्रमरैश्च।] ततो देव स्वागतेनैव कुमारवृषसेनेन महदाश्चर्यं कृतम्। वैडूर्यशिलाश्यामलसुस्निग्धशल्यबन्धैः कठिनकङ्कपक्षकृष्णाननैः शिलानिशित-मांसलोज्ज्वलैर्यथा कुसुमितस्तरुवरः शिलीमुखैस्तथा प्रच्छादितो धनंजयस्य रथवरः। अत्र वैडूर्यशिला मणिविशेषः। शल्यबन्धो बाणभेदः। कङ्कः कङ्कारी इति प्रसिद्धः पक्षी। शिलायां यन्निशित निघर्षण तेन मांसलैः स्निग्धैरत एवोज्ज्वलितैः। शिलीमुखो बाणभृङ्गौ इत्यमरः। तीक्ष्णं यथा तथा विक्षिप्ता ये निशिता भल्लसंज्ञा बाणास्तान् वर्षितुं शीलं यस्य तेन। तीक्ष्णमोक्षनिक्षिप्त निशितशरसंपाताभिघातजातमन्युना धनञ्जयेन…परिकुपितस्य पुरतः स्थातुम्। तद् गच्छ रे गच्छ। अपरैः कुमारकैः सह गत्वा योधय इति। गुरुजनाधिक्षेप-

सिदभल्लञाणवरिसिणा धणंजएण ईसि विहसिअ भणिदम्—अरे रे विससेण पिदुणो वि दाव दे ण जुत्तं मह कुविदस्स अभिमुहं ठादुम् । किं उण भवदो बालस्स । ता गच्छ । अवरेहिं कुमारेहिं सह आधोधेहित्ति । एव्वं वाअं णिसमिअ गुरुअणाहिक्खेवेण उद्दीविअकोवोरत्तमुहमण्डलविअम्भिअभिउडीभङ्गभीसणेण धावधारिणा कुमालविससेणवि मम्मभेदएहिं परुसविसमेहिं सुदिवहकिदप्पणएहिं णिब्भच्छिदो गण्डीवी वाणेहिं ण उण दुट्ठवअणेहिं ।]

दुर्योधनः—साधु, वृषसेन, साधु । सुन्दरक, ततस्ततः ।

सुन्दरकः—ततो देव निशितशराभिघातवेदनोपजातमन्युना किरीटिना चण्डगाण्डीवजीवाशब्दनिर्जितवज्रनिर्घातघोषेण बाणनिपातनप्रतिषिद्धदर्शनप्रसरेण प्रस्तुतं शिक्षाबलानुरूपं किमप्याश्चर्यम् । [तदो देव णिसिदसराभिघादवेअणोपआदमण्णुणा किरीटिणा चण्डगण्डीवजीआसद्दणिज्जिदणिग्घादघोसेण बाणणिवडणपडिसिद्धदंसणप्पसरेण पत्थुदं सिक्खाबलाणुरूवं किं वि अच्चरीअम् ।]

दुर्योधनः—(साकूतम्) ततस्तत. ।

सुन्दरकः—ततश्च देव, तथाहशं प्रेक्ष्य शयोः समर व्यापारचतुरत्वमविभाविततूणीरमुखधनुर्गुणगमनागमनशरसंधानमोक्षपटुलकरतलेन कुमारवृषसेनेनापि सविशेषं प्रस्तुतं समरकर्म । [तदो अ देव तं तारिसं पेक्खिअ सत्तुणो समरव्वावारचउवत्तणं अविभाविअतूणीरमुहधणुग्गुणगमणागमणसरसंधाणमोक्खचडुलकरअलेण कुमालविससेणेण वि सविसेसं पत्थुदं समरकम्म ।]

दुर्योधनः—ततस्ततः—

सुन्दरकः—ततो देव अत्रान्तरे विमुक्तसमरव्यापारो मुहूर्तं विश्रमितवैरानुबन्धो द्वयोरपि कुरुराजपाण्डवबलयोः 'साधु कुमारवृषसेन, साधु, इति कृतकलकलो वीरलोकोऽवलोकयितुं प्रवृत्त. । [तदो देव एत्थन्तरे विमुक्कसमरव्वावारो मुहुत्तविस्समिदवेराणुबन्धो दोणं वि कुरुराअपण्डवबलाणं साहु कुमालविससेण साहु त्ति किदकलअलो वीरअलो वीरलोओ अवलोइदुं पउत्तो ।]

जनितकोपोरक्तमुखमण्डलभ्रूकुटीविजृम्भितनेपथ्यधारिणा कुमारवृषसेनेन मर्मभेदकरैः सुतवधकृतअणर्यैर्निर्भत्सितः । अत्र विजृम्भितं कृतम् सुतवधेऽर्जुनसुतस्वाभिमन्योर्वधे । निर्भर्त्सितो धर्षितः । [गुरुजनस्य पितुः अधिक्षेपेण निन्दया उद्दीपितः

दुर्योधन—शाबाश, वृषसेन, शाबाश। सुन्दरक, इसके बाद ?

सुन्दरक—देव, तब तीक्ष्ण बाणों के प्रहार से हुई पीड़ा क्रुद्ध हुए, प्रचण्ड गाण्डीव धनुष की प्रत्यञ्चा की ध्वनि से बिजली की कड़क के शब्द को जीतने वाले, बाणों की वर्षा से दृष्टि को रुद्ध कर देने वाले अर्जुन ने शिक्षा और पराक्रम के अनुरूप अद्भुत (कर्म) प्रस्तुत किया।

दुर्योधन—(जोर देते हुए) उसके बाद क्या हुआ ?

सुन्दरक—देव, और उसके बाद शत्रु के युद्ध-कर्म में ऐसे चातुर्य को देखकर कुमार वृषसेन ने भी, जिनका हाथ तरकश के मुख और धनुष की प्रत्यञ्चा पर आने-जाने, बाण चढ़ाने और छोड़ने में इतना फुर्तीला था कि(क्रियायें) दिखलाई नही पड़ती थी और अधिक (अद्भुत) पराक्रम दिखलाया।

दुर्योधन—इसके बाद ?

सुन्दरक—देव, तब इसी बीच युद्ध-कर्म छोड़कर, मुहूर्तभर के लिये वैर के सिलसिले को शान्त करके, कौरव और पाण्डव दोनो ही सेनाओं के वीर लोग 'शाबाश, कुमार वृषसेन , शाबाश' इस प्रकार तुमुल ध्वनि करते हुए (उसके युद्ध-कौशल को) देखने लगे।

कोप तेनोपरक्तं यन्मुखमण्डलं तत्र विजृम्भितो यः भ्रुकुटीभङ्गस्तेन भीषणस्तेन श्रुतिपथे कर्णमार्गे कृतः प्रणय अनुराग यैः। आकर्णमाकृष्य मुच्यमानैः बाणै. कर्णपथगामिभिश्च वचनैरिति भावः। निशितशराभिघातैर्या वेदना पीडा तया उपजातो मन्युर्यस्य चण्डं च तद्गाण्डीवं च तस्य जीवाया शब्देन निर्जित. वज्रस्य निर्घोषस्य च ध्वनिः येन तथाभूतेन। शिक्षाया बलस्य च अनुरूपम् ।] ०शराभिघातजातमन्युना विज्ञातबाणनिपतनप्रतिषिद्धदर्शनप्रसरेण। प्रस्तुत कृतम्। शिक्षास्त्राभ्यास। तीक्ष्णमोक्ष ...प्रस्तुतः समरकर्मारम्भः। अप्रविभावितोऽप्रकाशित तूणीरं तोन इति ख्यातम्। चटुलं मनोज्ञ कुशल वा अविभावितान्यलक्षितानि यानि तूणीरमुखधनुर्गुणयोः गमनागमनानि च शरसंधानं मोक्षश्च तेषु चटुल मनोज्ञतया संचारि करतलं यस्य।] प्रस्तुत आरब्धः आरम्भः उपक्रम। समरकर्मान्त इति पाठे समर एव कर्मान्त कौशल इति प्रसिद्धः। [मुहूर्त विश्रमित वैरस्यानुबन्धः वैरानुबन्ध. विरोधानुवृत्तिर्येन स तथोक्तः।] द्वयोरपि तयोः कुरुपाण्डवराजबलयोः। अत्र विश्रमित उपशान्तः

दुर्योधनः—(सविस्मयम्) ततस्ततः ।

सुन्दरकः—ततश्च देव, अवधीरितसकलधानुष्कचक्रपराक्रमशालिनः सुतस्य तथाविधेन समरकर्मारम्भेण हर्षरोषकरुणासंकटे वर्तमानस्य स्वामिनोऽङ्गराजस्य निपतिता शरपद्धतिर्भीमसेने वाष्पपर्याकुला दृष्टिः कुमारवृषसेने । [तदो अ देव अवहीरिदसअलधाणुक्कचक्कपराक्कमसालिणो सुदस्स तहाविहेण समलकम्मालम्भेण हरिसरोसकरुणासंकडे वट्टमाणस्स सामिणो अङ्गराअस्स णिवडिआ सरपद्धइ भीमसेणे वाप्फपज्जाउला दिट्टी कुमालविससेणे ।]

दुर्योधनः—(सभयम्) ततस्ततः ।

सुन्दरकः—ततश्च देव, उभयबलप्रवृत्तसाधुकारामर्षितेन शरवर्षप्रज्ज्वलितेन गाण्डीविना तुरगेषु सारथावपि रथवरे धनुष्यपि जीवयामपि नरेन्द्रलाञ्छने सितातपत्रेऽपि च व्यापारितः समं शिलीमुखासारः । [तदो अ देव, उभअबलप्पउत्तसाहुकारामरिसिदेण सरवरिसपज्जलिदेन गण्डीविणा तुरगेसु सारहिं पि रहवरे धणु पि जीआइं पि णलिन्दलञ्छणे सिदादवत्ते वि अ व्वापारिदो सम सिलीमुहासारो ।]

दुर्योधनः—(सभयम्) ततस्ततः ।

सुन्दरकः—ततो देव, विरथो लूनगुणकोदण्डः परिभ्रमणव्यापारमात्रप्रतिषिद्धशरसपातो मण्डलैर्विचरितुं प्रवृत्तः कुमारः । [तदो देव विरहो लूणगुणकोदण्डो परिब्भमणव्वावारमेत्तप्पडिसिद्धसरसपादो मण्डलेहिं विअरिदुं पउत्तो कुमालो ।]

दुर्योधनः—(साशङ्कम्) ततस्ततः ।

सुन्दरकः—ततो देव, सुतरथविध्वंसनामर्षोद्दीपितेन स्वामिनाङ्गराजेनागणितभीमसेनाभियोगेन परिमुक्तो धनंजयस्योपरि शिलीमुखासारः । कुमारोऽपि परिजनोपनीतमन्यं रथमारुह्य पुनरपि प्रवृत्तो धनंजयेन सहायोद्धुम् । [तदो देव, सुदरहविद्धंसणामरिसुद्दीविदेण सामिणा अङ्गराएण अगणिअभीमसेणाभिजोएण परिमुक्को धणजअस्स उवरि सिलीमुहारो कुमालो वि परिजणोवणीद अण्ण रहं आरुहिअ पुणोवि पउत्तो धणजएण सह आओधेदुम् ।]

अवधीरितं तिरस्कृतं सकलधानुष्काणां चक्रं येन तादृशेन पराक्रमेण शालते

दुर्योधन—(आश्चर्य से) इसके बाद ?

सुन्दरक—देव, और तब सब धनुर्धारियों के मण्डल को तिरस्कृत करने वाले पराक्रम से सम्पन्न पुत्र के ऐसे युद्ध-पराक्रम में एक साथ आनन्द क्रोध और करुणा की अवस्था में पड़े हुए स्वामी अङ्गराज (कर्ण) की बाण-परम्परा भीमसेन पर और आँसुओं से भरी दृष्टि कुमार वृषसेन पर पड़ी ?

दुर्योधन—(भयपूर्वक) इसके बाद ?

सुन्दरक—देव, तब दोनो सेनाओं द्वारा किये गये साधुवाद से क्रुद्ध और बाणवृष्टि से उत्तेजित हुए अर्जुन ने घोड़ों, सारथि, उत्तम रथ, धनुष, डोरी और राजचिह्न धवल छत्र पर एक साथ बाणों की वृष्टि की ।

दुर्योधन—(भय के साथ) इसके बाद ?

सुन्दरक—देव, तब रथ-हीन और कटी हुई डोरी तथा धनुष वाला और चक्कर काटने मात्र से बाण वृष्टि को रोकता हुआ कुमार वृषसेन मण्डल बना कर घूमने लगा ।

दुर्योधन—(आशङ्का पूर्वक) तत्पश्चात् ।

सुन्दरक—देव, तब पुत्र के रथ के नाश से उत्पन्न क्रोध में उत्तेजित हुये स्वामी अङ्गराज ने भीमसेन के आक्रमण की चिन्ता न करके धनञ्जय अर्जुन के ऊपर बाणों की वर्षा की । कुमार भी सेवक द्वारा लाये हुये दूसरे रथ पर चढ़कर फिर अर्जुन के साथ युद्ध करने लगा ।

शोभते असौ तस्य । तथाविध समरकर्मण आरम्भस्तेन । संकटे मिश्रीभावे ।]

सकटे । अत्र धानुष्को धनुर्धर. । धनु प्रहरणमस्येत्यर्थे ठक् । तस्य इसुसुक्तान्तात् इति क ।] सुतविक्रमदर्शनेन हर्ष । शत्रुपराक्रमदर्शनेन रोष: । बालस्य महाबलेन युद्धात्करुणमिति रसत्रयमत्र । पद्धति: पक्ति । उभयाभ्या बाणाभ्या विमुक्त य: साधुकार साधुवाद: तेन अमर्षित. जातक्रोध: तेन । वृषसेनकृतशरवर्षेण प्रज्वलितेन दीप्तेन । जीवायां ज्यायाम् । मौर्वी जीवा गुणी गव्या' इति हैम: । अत्र लाञ्छने चिन्हे । सितातपत्रे श्वेतच्छत्र । सममेक दैव । ततो कुमारवृषसेन. । [विनष्टो रथो यस्य स विरथ । लून: गुण कोदण्डं च यस्य स तथोक्त । परिभ्रमणव्यापार एव ० मात्रं तेन प्रतिषिद्ध निवारित: शरसंपातो

उभौ—साधु, वृषसेन, साधु । ततस्ततः ।

मुन्दरकः—ततो देव, भणितं च कुमारेण—'रे रे ताताधिक्षेपमुखर मध्यमपाण्डव, मम शरास्तव शरीरमुज्झित्वान्यस्मिन्न निपतन्ति' इति भणित्वा शरसहस्रैः पाण्डवशरीरं प्रच्छाद्य सिंहनादेन गर्जितुं प्रवृत्तः । [भणिदं च कुमालेण रे रे तादाहिक्खेवमुहल मज्झमपण्डव, मह सरा तुह सरीरं उज्झिअ अण्णस्सिं ण णिवडन्ति । त्ति भणिअ सरसहस्सेहिं पण्डवसरीरं पच्छादिअ सिंहणादेण गज्जिदु पउत्तो ।]

दुर्योधनः—(सविस्मयम्) अहो बालस्य पराक्रमो मुग्धस्वभावोऽपि ततस्ततः ।

मुन्दरकः—ततश्च देव, तं शरसपातं समवधूय निशितशराभिघातजातमन्युना किरीटिना गृहीता रथोत्सङ्गात्क्वणत्कनककिङ्किणीजालझङ्कारविराविणी मेघोपरोधविमुक्तनभस्तलनिर्मला निशितश्यामलस्निग्धमुखी विविधरत्नप्रभाभासुरभीषणरमणीयदर्शना शक्तिः सोपहासं विमुक्ता च कुमाराभिमुखी । [तदो अ देव तं सरसंपादं समवधूणिअ णिसिदसराभिघादजादमण्णुणा किरीटिणा गहिदा रहुच्छङ्गादो क्वणन्तकणअकिङ्किणीजालझङ्कारविराइणी मेहोवरोहविमुक्कणहत्थलणिम्मला णिसिदसामलसिणीद्धमुही विविहरअणप्पहाभासुरभीसणरमणिज्जदंसणा सत्ती सोवहासं विमुक्का अ कुमालाहिमुही ।]

दुर्योधनः—(सविषादम्) अहह । ततस्ततः ।

मुन्दरकः—ततश्च देव, प्रज्वलन्तीं शक्तिं प्रेक्ष्य विगलितमङ्गराजस्य हस्तात्सशरं धनुर्हृदयाद्वीरसुलभ उत्साहो नयनाद्बाष्पसलिलं वदनाद्रसितम् । हसितं च धनंजयेन, सिंहनादं विनादितं वृकोदरेण, दुष्कर दुष्करमित्याक्रन्दितं कुरुबलेन । [ततो अ देव, पज्जलन्ती सत्ति पेक्खिअ विअलिअं अङ्गराअस्स हत्थादो ससरं धणु हिआदो वीरसुलहो उच्छाहो णअणादो बाप्पसलिलं वअणादो रसिदं । हसिदं अ धणंजएण सिंहणादं विणादिदं विओदलेण दुक्कलं दुक्कलं त्ति आक्कन्दिदं कुरुबलेण ।]

येन ।] परिभ्रमणमात्रव्यापारो मण्डलाग्रेण विचरितुं प्रवृत्तः अत्र मण्डलाग्रेण खड्गेन । कौक्षेयको मण्डलाग्रः करवालः कृपाणवत् इत्यमरः । सुतरपविध्वंस-

दोनों—वाह, वृषसेन, वाह। इसके बाद ?

सुन्दरक—देव, तब कुमार ने कहा—'अरे (मेरे) पिता की निन्दा में वाचाल, मध्यम पाण्डव, मेरे बाण तेरे शरीर को छोड़कर अन्य पर नहीं पड़ते हैं।' यह कहकर (कुमार) सहस्त्रों बाणों से पाण्डव के शरीर को आच्छन्न करके सिंहनाद करने लगा।

दुर्योधन—(आश्चर्य से) बालक का पराक्रम और मुग्ध स्वभाव बड़ा आश्चर्यकारी है। इसके बाद ?

सुन्दरक—देव, तब उस बाण-प्रहार को रोककर तीक्ष्ण बाणों के लगने से क्रुद्ध हुये अर्जुन ने रथ के मध्य भाग से बजती हुई सुवर्णमयी घण्टियों के समूह की झंकार के शब्द वाली; मेघों के घेरे से छूटे हुये आकाशतल के समान निर्मल, तीक्ष्ण, श्याम, एवं स्निग्ध मुख वाली, अनेक प्रकार के रत्नों की कान्ति से चमकती हुई और भयङ्कर तथा सुन्दर दिखलाई पड़ने वाली एक शक्ति उठाई और हंसकर कुमार की ओर छोड़ दी।

दुर्योधन—(दुःख के साथ) आह ! इसके बाद ?

सुन्दरक—और, देव, इसके बाद जलती हुई शक्ति को देखकर अङ्गराज के हाथ से बाण-सहित धनुष, हृदय से वीर-सुलभ उत्साह आंखों से आंसू और मुख से चीत्कार निकल पड़ा। अर्जुन हंसा, भीम ने सिंहनाद किया और

नामर्पितेन। अगणितः भीमसेनस्यः अभियोगः येन।] भणितं च कुमारवृषसेनेन अरे रे ताताधिक्षेपकारक मुखरमध्यमपाण्डव न मम शरासारास्तव शरीरमुज्झित्वान्यस्मिन्निपतन्ति इति भणित्वा शरशतसहस्त्रैः पाण्डवशरीरं प्रच्छाद्य सिंहनादं विचरितुं प्रवृत्तम्। अत्र प्रच्छाद्य व्याप्य। विचरितु कर्तुम्। प्रवृत्तं वृषसेनेनेति शेषः। [निशिताश्च ते शराश्च तेषामभिघातस्तेन जातः मन्युः क्रोधो यस्य तेन। क्वणन्त्यो याः किङ्किण्यः क्षुद्रघण्टिकास्तासां जालानि तेषां झङ्कारं विरौतीति विराविणी।] ०जालहुंकारराविणी महामेघोप० [विविधरत्नानां प्रभाभिः भासुरा चासौ भीषणं रमणीयं च दर्शनं यस्याः तादृशी च।] विविधरत्नप्रभाघटितशीषभीषणरमणीयदर्शना महाशक्तिर्विमुक्ता कुमाराभिमुखी। अत्र क्वणच्छन्दायमानम्। भीषणता विचित्ररूपतया। रमणीयता

दुर्योधनः—(सविषादम्) ततस्ततः ।

सुन्दरकः—ततो देव, कुमारवृषसेनेनाकर्णं कृष्टनिशितक्षुरप्रेणचिरं निर्ध्यायार्धपथ एव भागीरथीव भगवता विषमलोचनेन त्रिधा कृता शक्तिः ।

[तदा देव कुमालविससेणेण आकण्णाकिट्ठणिसिदखुरप्पेहिं चिरं णिज्झाइअ अद्धपहे एव्व भाईरही विअ भअवदा विसमलोअणेण तिधा किदा सत्ती ।]

दुर्योधनः—साधु, वृषसेन, साधु । ततस्ततः ।

सुन्दरकः—ततश्च देव, एतस्मिन्नन्तरे कृतकलकलमुखरेण वीरलोकसाधुवादेनान्तरितः समरतूर्यरवः । सिद्धचारणगणविमुक्तकुसुमप्रकरेण प्रच्छादितं समराङ्गणम् ।

[तदो अ देव एदस्सि अन्तले किदकलकलमुहरेण वीरलोअसाहुवादेण अन्तरिदो समरतूररवो । सिद्धचालणगणविमुक्ककुसुमपअरेण मच्छादिदं समलाङ्गणम् ।]

दुर्योधनः—अहो बालस्य पराक्रमः । ततस्ततः ।

सुन्दरकः—ततश्च देव, भणितं स्वामिनाङ्गराजेन—'भो वृकोदर, असमाप्तस्तव ममापि समरव्यापारः । तदनुमन्यस्व मां मुहूर्तम् । प्रेक्षावहे तावद्वत्सस्य तव भ्रातुश्च धनुर्वेदशिक्षानिपुणत्वम् । तवाप्येतत्प्रेक्षणीयम्'—इति ।

[तदो अ देव भणिदं सामिणा अङ्गराएण-भो विकोदल असमत्तो तुह मह वि समलव्वावारो । ता अणुमण्ण म मुहुत्तअम् । पेक्खामहे दाव वस्सस्स तुह भादुणो अ धणुव्वेदसिक्खाणिउणत्तणम् । तुह वि एदं पेक्खणिज्जं त्ति ।]

दुर्योधनः—ततस्ततः ।

सुन्दरकः—ततो देव, विरतौ रणव्यापारनिर्बन्धान्मुहूर्तं प्रशमितवैरौ द्वावपि प्रेक्षकौ जातौ भीमसेनाङ्गराजौ ।

[ततो देव विरदाआ रणव्वारणिव्वन्धादो मुहुत्तअं पसमिदवेरा देवे वि पेक्खआ जादा भीमसेणाङ्गराआ ।]

स्वभावादेव । ता तादृशी प्रज्वलन्ती··· । रसितं च सिंहनादं वृकोदरेण । दुःकरं दुःकरमिति कृत्वाक्रन्दितं कुर्वलेन । अत्र रसितं शाब्दिनम् । सिंहस्येव नादो यथा स्यात्तथा । कुमारेणाकर्णपूरितैर्निशितक्षुरप्रबाणैर्दूरं निर्ध्यायार्धपथ एवागच्छन्ती

कौरव सेना ने 'बुरा हुआ, बुरा हुआ' यह कहकर करुण-क्रन्दन किया।

दुर्योधन—(विषादपूर्वक) इसके बाद ?

सुन्दरक—देव तब कुमार वृषसेन ने देर तक लक्ष्य साधकर कान तक खीचे गये तीक्ष्ण क्षुरप्र नामक बाणों से बीच रास्ते में ही शक्ति के, भगवान् त्रिलोचन ने गगा के जैसे, तीन टुकड़े कर दिये।

दुर्योधन—शाबाश, वृषसेन, शाबाश। इसके बाद ?

सुन्दरक—महाराज, और तब इसी बीच कल-कल ध्वनि से बढ़े हुये वीरों के साधुवाद ने युद्ध के बाजे के शब्द को छिपा दिया और सिद्ध तथा चारणों द्वारा आकाश से बरसाये गये पुष्पों की राशि ने युद्ध-भूमि को ढक दिया।

दुर्योधन—ओह ! बालक का पराक्रम बडा अद्भुत था। इसके बाद ?

सुन्दरक—महाराज, तब स्वामी अगराज ने कहा—'हे वृकोदर, मेरा और तेरा युद्ध अभी समाप्त नही हुआ है, इसलिये मुहूर्तभर के लिये अनुमति दे कि जब तक पुत्र और तेरे भाई के धनुर्वेद की शिक्षा के चातुर्य को देख ले। तेरे लिये भी यह दर्शनीय है।'

दुर्योधन—इसके बाद ?

सुन्दरक—महाराज, तब वे दोनो युद्ध-कर्म के आग्रह से विरत हो गये और मुहूर्त-भर के लिये वैर को शान्त करके भीमसेन और अंगराज दर्शक बन गये।

भागीरथी···। [क्षुरप्रैः शरविशेषैः। अर्धं पन्थाः अर्धपथस्तस्मिन्। निध्याय दृष्ट्वा। विषमलोचनेनेत्यत्र भारतम्—तां दधार हरो राजन् गङ्गां गगनमेखलाम्। सा बभूव विसर्पन्ती त्रिधा राजन् समुद्रगा। वन० अ० १०६.] अत्र निध्यायं विचिन्त्य। भागीरथी गङ्गा विषमलोचनेन हरेण। गङ्गापि हरेण त्रिपथगा कृतेति भावः। कलमुखरेण। [पाठान्तरे कृतः यः कलकलस्तेन मुखरो वृद्धिगतः।, ०प्रमुक्तकुसुमप्रकरेण संच्छादितं समराङ्गणम्। भणितं च तदनुमन्यस्व क्षणमात्रमेव। प्रेक्षावस्तावत्तव भ्राता समं मम पुत्रस्य धनुर्वेदशिक्षाचतुरत्वम्। तवाप्येतत्प्रेक्षणीयम् इति। विश्रमित उपशान्तः। प्रेक्षको दृष्टा।

दुर्योधनः—(साभिप्रायम्) ततस्ततः ।

सुन्दरकः—ततश्च देव, एतस्मिन्नन्तरे शक्तिखण्डनामर्षितेन गाण्डीविना भणितम्—अरे रे दुर्योधनप्रमुखाः—(इत्यर्धोक्ते लज्जां नाटयति) ।

[तदो अ देव एदस्सि अन्तरे सत्तिखण्डणामरिसिदेण गण्डीविणा भणिअम्—अरे रे दुज्जोहणप्पमुहा—]

दुर्योधनः—सुन्दरक, कथ्यताम् । परवचनमेतत् ।

सुन्दरकः—शृणोतु देवः । 'अरे दुर्योधनप्रमुखाः कुरुबलसेनाप्रभवः, अरे अविनयनौकर्णधार कर्ण, युष्माभिर्मम परोक्षं बहुभिर्महारथैः परिवृत्यैकाकी मम पुत्रकोऽभिमन्युर्व्यापादितः । अहं पुनर्युष्माकं प्रेक्षमाणानामेवैतं कुमारं वृषसेनं स्मर्तव्यशेषं करोमि', इति भणित्वा सगर्वमास्फालितमनेन वज्रनिर्घातनिर्घोषभीषणजीवारवं गाण्डीवम् । स्वामिनापि सज्जीकृतं कालपृष्ठम् ।

[सुणादु देवो । अरे दुज्जोहणप्पमुहा कुरुबलसेणापहुणो अरे अविणअणोकण्णधार कण्ण तुम्हेहिं मह परोक्खं बहुहिं महारहेहिं परिवारिअ एआई मम पुत्तओ अहिमण्णु व्वावादिदो । अहं उण तुह्माणं पेक्खन्ताणं एव्व एदं कुमालं विससेणं सुमरिदव्वसेसं करोमि । त्ति भणिअ सगव्वं आप्फालिदं णेण वज्जणिग्घादणिग्घोसभीसणजीआरवं गण्डीवम् । सामिणा वि सज्जीकिदं कालपुट्ठम् ।]

दुर्योधनः—(सावहित्थम्) ततस्ततः ।

सुन्दरकः—ततश्च देव, प्रतिषिद्धभीमसेनसमरकर्मारम्भेण गाण्डीविना विरचिते अङ्गराजवृषसेनरथकूलङ्कषे द्वे बाणनद्यौ । ताभ्यामपि द्वाभ्यामन्योन्यस्नेहदर्शितशिक्षाविशेषाभ्यामभियुक्तः स दुराचारो मध्यमपाण्डवः ।

[तदो अ देव पडिसिद्धभीमसेणसमलकम्मालम्भेण गण्डीविना विरइदा अङ्गराअविससेणरहकूलंकसाओ दुवे बाणणदीओ । तेहिं वि दुवेहिं अण्णोण्णासिणेहदंसिदसिक्खाविसेसेहिं अभिजुत्तो सो दुराआरो मज्झमपण्डवो ।]

दुर्योधनप्रमुखा कुरुयोधाः [कर्णधारस्तु नाविकः । इत्यमरः ।] युष्माभिर्बहुभिर्महारथैर्मिलित्वा मया शून्ये मम पुत्रोऽभिमन्युर्बाल एकाकी व्यापादितः । अहं पुनर्युष्माकं प्रेक्षकाणामेवैतं कुमारं वृषसेनं स्मर्तव्यशेषं करोमि । तद् म्रियता

दुर्योधन—(अभिप्राय के साथ) इसके आगे क्या हुआ ?

सुन्दरक—देव, तब इसी बीच शक्ति के टुकड़े कर देने पर क्रुद्ध हुये गाण्डीवधारी अर्जुन ने कहा—'अरे ! ओ दुर्योधन-प्रमुख''',(यह आधा कहकर लज्जा का नाट्य करता है)।

दुर्योधन—सुन्दरक, कह डालो। यह तो शत्रु का वचन है।

सुन्दरक—महाराज सुनिये। 'अरे ओ दुर्योधन प्रमुख कौरवसेना के सेनापतियो, अरे सदाचार रूपी नौका के कर्णधार कर्ण, मेरे पीछे तुम बहुत से महारथियों, ने घेरकर अकेले मेरे पुत्र अभिमन्यु को मारा था। लेकिन मैं तुम लोगों के देखते २ ही इस कुमार वृषसेन को स्मृति-शेष कर रहा हूँ।' यह कहकर इसने गर्व के साथ वज्र-पात ध्वनि के समान भीषण डोरी की ध्वनि वाले गाण्डीव धनुष को टंकार दी। स्वामी ने भी अपने कालपृष्ठ नामक धनुष को संभाला।

दुर्योधन—(मुख के भाव को छिपाकर) इसके बाद ?

सुन्दरक—देव, तब भीमसेन को युद्ध करने से मनाह करके अंगराज और वृषसेन के रथ रूपी तट को काटने वाली दो बाण रूपी नदी बनाई। उन दोनों ने भी एक-दूसरे के प्रति प्रेम के कारण (धनुर्वेद की) शिक्षा के नैपुण्य को प्रदर्शित करते हुए उस कुकर्मी अधम पाण्डव पर आक्रमण किया।

ध्रियताम् इत्यास्फालितं तेन वज्रनिर्घातोद्घोषगम्भीर भीषणजीवारवं गाण्डीवम्। सदाचारविनय एव नौरिति रूपकम्। प्रेक्षकाणामित्यनादरे षष्ठी। तेन भवतः प्रेक्षकाननादृत्येत्यर्थः। स्मर्तव्यः स्मरणार्हः शेषोऽवसानं यस्य तम्। तथा च स्मरणमात्रावशिष्टमित्यर्थः। कालपृष्ठं कर्णस्य धनुः। राधासुतोऽर्कतनयः कालपृष्ठं तु तद्धनुः। इति हैमः]।

सावहित्यमित्यत्र अवहित्था आकारगोपनम्। अनुपलक्ष्यमाणहृद्गतभाव-मित्यर्थः।

[०रथौ एव कूले कषतः इति।] अत्र कूलं कषतीत्यर्थे सर्वकूलाभ्रकरीषेषु कषः इति खच्प्रत्ययः। खित्यनव्ययस्य इति मुम्।

दुर्योधन —ततस्ततः ।

सुन्दरकः—ततश्च देव, गाण्डीविना ताररसितजीवानिर्घोषमात्रविज्ञातबाण-वर्षेण तथाचरित पत्रिभिर्यथा नमस्तलं न स्वामी न रथो न धरणी न कुमारो न केतुवंशो न बलानि न सारथिर्न न दिशो न वीरलोकश्च लक्ष्यते ।

[तदो अ देव गण्डीविणा ताररसिदजीआणग्घोसमेत्तविण्णादवाणवरिसेण तह आअरिदं पत्तिहिं जह ण णहत्तल ण सामी न रहो ण धरणी ण कुमालो ण केदुवंसो ण बलाई ण सारही ण तुरङ्गमा ण दिशाओं ण वीरलोओ अक्खीअदि ।]

दुर्योधनः—(सविस्मयम्) ततस्ततः ।

सुन्दरकः—ततश्च देव, अतिक्रान्ते शरवर्षे क्षणमात्रमेव सहर्षसिंहनादे पाण्डवसैन्ये सविषादमुक्ताक्रन्दे कौरवबले समुत्थितो महाकलकलः 'हा हतः कुमारवृषसेन ' इति ।

[तदो अ देव अदिक्कन्ते सरवरिसे क्खणमेत्त एव सहरिससिंहणादे पाण्डव-सेण्णे सविसादमुक्काक्कन्दे कोरवबले समुत्थिदो महन्तो कलअलो हा हदो कुमालविससेणोत्ति ।]

दुर्योधनः—(सबाष्परोधम्) ततस्ततः ।

सुन्दरकः—ततो देव, प्रेक्षे कुमार हतसारथितुरङ्गं लूनातपत्रचापचामर-केतुवंशं स्वर्गभ्रष्टमिव सुरकुमारमेकेनैव हृदयमर्मभेदिना शिलीमुखेन भिन्नदेहं रथमध्ये पर्यस्तम् ।

[तदो देव पेक्खामि कुमाल हतसारहितुलङ्गं लूणादवत्तचावचामरकेदु-वंसं सग्गब्भट्टं विअ सुलकुमाल एक्केण ज्जेव हिअअमम्मभेदिणा सिलिमुहेण भिण्णदेहं रहमज्झे पल्लत्थं ।]

दुर्योधन.—(सास्रम्) अहह, कुमार वृषसेन । अलमतः परं श्रुत्वा । हा वत्स, हा मदङ्कदुर्ललित, हा मदाज्ञाकर, हा गदायुद्धप्रियशिष्य, हा शौर्यसागर, हा राधेयकुलप्ररोह, हा प्रियदर्शन, हा दुःशासननिर्विशेष, हा सर्वगुरुवत्सल, प्रयच्छ मे प्रतिवचनम् ।

[तारं रसिता निनादिता या जीवा गुण· तस्या निर्घोष एव निर्घोषमात्रं तेन विज्ञातो बाणवर्षो यस्य तेन]. । गाण्डीवताररसितमांसलनिर्घोषेणाविज्ञात-बाणवर्षेण···न तेषां रथा न खलु किमपि लक्ष्यते । पाण्डवबले विमुक्तसिंहनादे

दुर्योधन—इसके बाद ?

सुन्दरक—देव, तब अर्जुन ने जिसका बाणों को बरसाना केवल प्रचण्ड ध्वनि वाली डोरी के घोष मात्र से जाना जा रहा था, बाणों से ऐसा (अद्‌भुत कर्म) किया कि न आकाश दिखलाई देता था, न स्वामी, न रथ, न पृथ्वी, न कुमार, न ध्वज-दण्ड, न सेनायें, न सारथि, न घोड़े, न दिशायें और न वीर योद्धा ही।

दुर्योधन—(आश्चर्य से) इसके बाद ?

सुन्दरक—देव, इसके बाद क्षण भर में बाणों की वृष्टि के शान्त होने पर पाण्डव सेनाओं के हर्ष से सिंह-नाद और कौरव सेनाओं के करुण-क्रन्दन करने पर महान् कोलाहल-ध्वनि हुई—'हाय कुमार वृषसेन मारा गया ! हाय मारा गया !'

दुर्योधन—(आँसुओं को रोककर) इसके बाद ?

सुन्दरक—देव, तब मैंने हृदय के मर्मस्थल को छेदने वाले एकमात्र बाण से बिंधे हुए शरीर वाले कुमार को, जिसका सारथि और घोड़े मार दिये गये थे, जिसका छत्र धनुष, चामर और ध्वज-दण्ड काट दिया गया था, और जो स्वर्ग से गिरे हुए देव-बालक के समान प्रतीत हो रहा था, रथ में पड़ा हुआ देखा।

दुर्योधन—(आँसुओं के साथ) आह ! कुमार वृषसेन ! इससे आगे सुनने से बस करना चाहिये हाय वत्स ! हाय, मेरी गोद के हठी ! हाय मेरी आज्ञा पालने वाले ! गदा-युद्ध में प्रिय शिष्य ! हाय, वीर्य के सागर ! हाय, राधेय कुल के अंकुर ! हाय, प्रियदर्शन ! हाय, दुःशासन से अभिन्न ! हाय, सब गुरुओं के प्रेमी ! मुझे प्रत्युत्तर दो।

साक्रन्दे कौरवबले हा हतः कुमारो वृषसेनो हाहत इति महान्कलकल उत्थितः। ततो देव महत्या वेलयाहं प्रेक्ष्य हतसारथितुरङ्गम लूनातपत्रकेतवंशं स्वर्गपरिभ्रष्टामिव सुरकुमारकमेकेनैव मर्मभेदिना बाणेन भिन्नदेहं रथमध्ये परिस्थितं कुमारमागतः। अत्र केतुश्चिह्नम्। कुमारं पश्याहमागत इत्यन्वयः।

गदङ्क एव दुष्टं ललितं यस्य। राधेयस्य कुलं तस्य प्ररोहो राधेयकुलस्य वर्धन इत्यर्थः प्ररोहोऽङ्कुरः।

पर्याप्तनेत्रमचिरोदितचन्द्रकान्त-
मुद्भिद्यमाननवयौवनरम्यशोभम् ।
प्राणापहारपरिवर्तितदृष्टि दृष्टं
कर्णेन तत्कथमिवाननपङ्कजं ॥१०॥

सूतः—आयुष्मन्, अलमत्यन्तदुःखावेगेन ।

दुर्योधनः—सूत, पुण्यवन्तो हि दुःखभाजो भवन्ति । अस्माकं पुनः—

प्रत्यक्षं हतबन्धूनामेतत्परिभवाग्निना ।
हृदयं दह्यतेऽत्यर्थं कुतो दुःखं कुतो व्यथा ॥११॥

(इति मोहमुपगतः)

सूतः—समाश्वसितु समाश्वसितु महाराज. । (इति पटान्तेन वीजयति) ।

दुर्योधनः—(लब्धसंज्ञः) भद्र सुन्दरक, ततो वयस्येन किं प्रतिपन्नमङ्गराजेन ।

सुन्दरकः—ततश्च देव, तथाविधस्य पुत्रस्य दर्शनेन संगलितमश्रुजलमुज्झित्वा अनवेक्षितपरप्रहरणाभियोगेन स्वामिनाङ्गराजेनाभियुक्तो धनंजयः । तं च सुतवधामर्षोद्दीपितपराक्रमं विमुक्तजीविताशं तथा पराक्रामन्तं प्रेक्ष्य भीमनकुलसहदेवपाञ्चालप्रमुखैरन्तरितो धनंजयस्य रथवरः ।

[तदो अ देव तहाविधस्स पुत्तस्स दंसणेण, संगलिद अस्सुजलं उज्झिअ अणवेक्खिदपरप्पहरणाभिजोएण सामिणा अङ्गराएण अभिजुत्तो धणंजओ । तं अ सुदवहामरिसुद्दीविदपरक्कमं विमुक्कजीविदासं तह परक्कमन्तं पेक्खिअ भीमणउलसहदेवपञ्चालप्पमुहेहि अन्तरिदो धणंजअस्स रहवरो ।]

दुर्योधनः—ततस्ततः ।

पर्याप्तेति । पर्याप्तं तृप्तं यथेष्टं वा नेत्रं [आयतं वा] यत्र तत्तथा । पर्याप्तं तु यथेष्टं स्यात्तृप्तौ शक्तिनिवारणे । इति विश्वः । अचिरोदितचन्द्रवत्कान्तं रम्यम् । उद्भिद्यमानमुद्गच्छत् । एतादृशमप्याननं तव प्राणापहारे विनाशे [अपचार इति पाठे निर्गमे] परिवर्तिता दृष्टिर्यत्र तथाभूतं विपरीतदर्शनं कथं कर्णेन दृष्टम् । इवशब्दोऽनवक्लृप्तौ ॥१०॥

कर्ण ने तुम्हारे उस विशाल नेत्रों वाले, नव उदित चन्द्रमा के समान सुन्दर नई प्रकट होती हुई यौवनावस्था में रमणीय शोभा वाले, कमल-सदृश मुख को प्राणों के निकल जाने के कारण पलटी हुई दृष्टि वाला हो जाने पर कैसे देखा होगा ? ॥१०॥

सूत—आयुष्मन्, शोक के अधिक आवेग से बस कीजिये।

दुर्योधन—सूत, पुण्यशाली लोग ही दुःख का अनुभव करते हैं। लेकिन हमारा—

सामने ही जिसके बन्धु मारे गये हैं, यह हृदय अपमान की अग्नि से अत्यधिक जल रहा। (इसलिये हमें) शोक कहाँ ? पीडा कहाँ ? ॥११॥

(यह कहकर मूर्च्छित हो जाता है)।

सूत—धैर्य रखिये, महाराज धैर्य रखिये। (आँचल से हवा करता है)।

दुर्योधन—(चेतना पाकर) भद्र सुन्दरक, तब मित्र अङ्गराज ने क्या किया ?

सुन्दरक—देव, इसके बाद इस प्रकार (दुरावस्थाग्रस्त) पुत्र को देखकर बहते हुये आँसुओं को त्यागकर शत्रु के आयुधों के प्रहार की चिन्ता न करते हुये स्वामी अङ्गराज ने अर्जुन पर आक्रमण किया। पुत्र-वध के क्रोध से प्रोत्साहित पराक्रम वाले और प्राणों की आशा छोडकर अत्यधिक पराक्रम दिखलाते हुये उसे (कर्ण को) देखकर भीम, नकुल, सहदेव और पाञ्चाल आदि वीरों ने अर्जुन के रथ को ओट में कर लिया।

दुर्योधन—इसके बाद ?

प्रत्यक्षमिति। अक्ष्णोः समीपे इति प्रत्यक्षं हतन्वधूनामस्माकं एतद्धृदयमित्यन्वयः। [परिभव एव अग्निस्तेन। अत्यर्थं भृशं दह्यते। कुत इति हृदयस्य दह्यमानत्वान्नास्ति दुःखव्यययोस्तत्रावकाश इति भावः॥ ११॥

प्रतिपन्नमङ्गीकृतम्।[तथा विधा यस्य स तथाविधस्तस्य।] अश्रुजातमु०। [अनपेक्षितः अगणितः परेषां प्रहरणानामभियोग आक्रमणं। शस्त्रव्यापार इत्यर्थः। येन। सुतवधादमर्षस्तेनोद्दीपितः पराक्रमो यस्य तम्। विमुक्ता जीविताशा येन तं। जीवितनिरपेक्ष युद्धयमानमित्यर्थः॥ पराक्रमवन्तं प्रेक्ष्य नकुलसहदेवपाञ्चालप्रमुखरन्तरितो धनञ्जयस्य रथवरः। अत्रान्तरितः पिहितः।

सुन्दरकः—ततो देव, शल्येन, भणितम्—'अङ्गराज, हततुरङ्गमो भग्नकूबरस्ते रथ.। तन्न युक्तं भीमार्जुनाभ्यां सहायोद्धुम।' इति भणित्वा निवर्तितो रथोऽवतारितः स्वामी स्यन्दनाद्बहुप्रकारं च समाश्वासितः।

[तदो देव सल्लेण भणिदम्—अङ्गराअ हदतुलङ्गमो भग्ग कूबरो रहो ता ण जुत्त भीमाज्जुणेहिं सह आजुज्झिदु । त्ति भणिअ णिवट्टिदो रहो ओदारिदो सामी सन्दणादो बहुप्पआर अ समस्सासिदो।]

दुर्योधनः—ततस्ततः।

सुन्दरक —ततश्च स्वामिना सुचिरं विलप्य परिजनोपनीतमन्यं रथं प्रेक्ष्य दीर्घं निःश्वस्य मयि दृष्टिर्विनिक्षिप्ता। सुन्दरक एहीति भणितं च। ततोऽहमुपगतः स्वामिसमीपम्। ततोऽपनीय शीर्षस्थानात्पट्टिकां शरीरसंगलितैः शोणितबिन्दुभिर्लिप्तमुखं बाणं कृत्वाभिलिख्य प्रेषितो देवस्य संदेशः। (इति पट्टिकामर्पयति)। [तदो अ सामिणा सुइर विलविअ परिअणोवणीदं अण्णं रह पेक्खिअ दीहं निस्ससिअ मइ दिट्ठि विणिक्खिविदा। सुन्दरअ, एहि त्ति भणिदं अ। तदो अहं उवगदो सामिसमीवम्। तदो अवणीअ सीसट्ठाणादो पट्टिअ सरीरसगलिदेहिं सोणिअबिंदूहिं लित्तमुह बाणं कदुअ अहिलिहिअ पेसिदो देवस्स सदेसो।]

(दुर्योधनो गृहीत्वा वाचयति यथा)

स्वस्ति। महाराजदुर्योधनं समराङ्गणात्कर्ण एदवन्तं कण्ठे गाढमालिङ्ग्य विज्ञापयति।

अस्त्रग्रामविधौ कृती न समरेष्वस्यास्ति तुल्यः पुमान्
भ्रातृभ्योऽपि ममाधिकोऽयममुना जेयाः पृथासूनवः।
यत्संभावित इत्यहं न च हतो दुःशासनारिर्मया
त्वं दुःखप्रतिकारमेहि भुजयर्वीर्येण बाष्पेण वा॥१२॥

अयि राधेय स्खलिततुरङ्गमो भग्नकूबरस्ते रथो न योग्यो वोढु भीमार्जुनाभ्या सह साप्रतमायोधितुम्। ततः परिवर्तितो रथो बहुप्रकार च समाश्वासित.। स्वामिना सुचिर विलप्य परिजनोपनीतमन्य रथमारुह्य क्षणेन दीर्घ निःश्वस्य मयि दृष्टिर्निहिता। सुन्दरक आगच्छेति भणितं च। तत उपगतोऽहं स्वामिस-

सुन्दरक—देव, तब शल्य ने कहा—'अङ्गराज तेरे रथ के घोड़े मर गये हैं और कूबर (फड़, बांस) टूट गया है। इसलिये भीम अर्जुन के साथ युद्ध करना ठीक नहीं है। यह कहकर उसने रथ लौटा लिया; स्वामी को रथ से उतारा और अनेक प्रकार से सान्त्वना दी।

दुर्योधन—इसके बाद ?

सुन्दरक—तब स्वामी ने बहुत देर तक विलाप करके सेवक द्वारा लाये रथ को देखकर और लम्बा साँस लेकर मुझ पर दृष्टि डाली और कहा—'सुन्दरक आओ।' तब मैं स्वामी के समीप गया। इसके पश्चात् सिर से पट्टी खोलकर शरीर से निकले हुये रुधिर के बिन्दुओं से वाण को भीगा मुख करके देव को (यह) सन्देश भेजा है। (यह कहकर पट्टी देता है)।

(दुर्योधन लेकर पढ़ता है)

'स्वस्ति। कर्ण युद्ध-भूमि में महाराज दुर्योधन का यह अन्तिम कण्ठालिङ्गन करके निवेदन करता है

यह शस्त्र-समूह के प्रयोग में चतुर है; कोई भी पुरुष युद्ध में इसके तुल्य नहीं है; यह मुझे भाइयों से भी अधिक है, यह पाण्डु के पुत्रों को जीत लेगा, इस विचार से आपने मेरा सम्मान किया, लेकिन मैं दुःशासन के शत्रु को न मार सका (इसलिये अब) आप स्वयं (अपने) भुजाओं के बल से अथवा आँसुओं से (अपने) शोक का प्रतिकार करो ॥ १२ ॥

मीपम्। ततः शीर्षस्थानत्पट्टिकामपनीय स्वशरीरसमलितैः शोणितबिन्दुभिः सुस्निग्धमुख...। अत्र कूबरस्तु युगधर इत्यमरः। शीर्षं मस्तकम्। अपनीयानीय [दूरीकृत्य]।

अस्त्रेति। अयं कर्णः [अस्त्रग्रामस्यास्त्रसमूहस्य विधौ प्रयोगे] कृती कुशलः। इत्यनेनाकारेणाह सत्सम्भावितो भवता प्रसिद्धः कृतः। प्रतिकारः प्रतीकार. इति शब्दभेदः त्वं प्रतिकारमेहि गच्छ। तथा च युद्ध्वा वा। रुदित्वा वा। राजन् भ्रातृदुःखं त्यजेति भावः। अहं तु सर्वथा न समर्थो मयि समर्पितं कार्यभारं निर्वोढुमिति निर्वेदः। तदुक्तं साहित्यदर्पणे तत्वज्ञानापदीर्ष्यादेर्निर्वेदः स्वावमाननम् इति।] ॥ १२ ॥

दुर्योधन—रथस्य कर्ण, किमिह भ्रातृशतवधदुःखितं मामपरेण वात्सल्येन घट्टयसि । भद्र सुन्दरक, अथेदानीं किमारम्भोऽङ्गराजः ।

सुन्दरकः देव, अपनीतशरीरावरण आत्मवधकृतनिश्चयः पुनरविपार्थेन सह समरं मार्गयते । [देव अवणीदसरीरावरणो अप्पवहकिदणिच्चओ पुणो वि परत्थेण सह समलं मग्गादि ।]

दुर्योधनः—(आवेगादासनादुत्तिष्ठन्) सूत रथमुपनय । सुन्दरक, त्वमपि मद्वचनात्त्वरिततरं गत्वा वयस्यमङ्गराज प्रतिबोधय । अलमतिसाहसेन । अभिन्न एवायमावयोः संकल्पः । न खलु भवानेको जीवितपरित्यागाकाङ्क्षी । किं तु

हत्वा पार्थान्सलिलमशिवं बन्धुवर्गाय दत्त्वा
मुक्त्वा वाष्पं सह कतिपयैर्मन्त्रिभिश्चारिभिश्च ।
कृत्वान्योन्यं सुचिरमपुनर्भावि गाढोपगूढं
सत्यक्ष्यावो हततनुमिमां दुःखितौ विवृ तौ च ॥१३॥

अथ च शोकं प्रति मया न किञ्चित्संवेद्यम् ।

वृषसेनो न ते पुत्रो न मे दुःशासनोऽनुजः ।
त्वां बोधयामि किमहं त्वं मां संस्थापयिष्यसि ॥१४॥

सुन्दरक—यद्देव आज्ञापयति (इति निष्क्रान्तः) । [जं देवो आणवेदि ।]

दुर्योधन.—तूर्णमेव रथमुपस्थापय ।

सूतः—(कर्णं दत्त्वा) देव, ह्यासंवलितो नेमिध्वनिःश्रूयते । तथा तर्कयामि नूनं परिजनोपनीतो रथः ।

दुर्योधनः—सूत, गच्छ त्वं सज्जीकुरु ।

देव अद्याप्यारम्भः पृच्छ्यते । [शरीरावरणं संनाहः. संकल्पः प्राणपरित्यागरूपः ।] संकल्पः कर्म मानसम् इत्यमरः ।

हत्वेति । अशिवममङ्गलम् । वाष्प मुक्त्वा । अपुनर्भावि [न पुनर्भवितुं शीलमस्य तद् ।] गाढोपगूढं गाढालिङ्गनम । इमां । हततनुं निन्द्यशरीरमेवमेव कृत्वा आवां सत्यक्ष्याव इत्यन्वयः । आवां कीदृशौ । प्रथम दुःखितौ ततो

दुर्योधन—मित्र कर्ण, सौ भाइयों के वध से दुःखी मुझको यह दूसरे वाणी रूपी बाण से क्यों बींध रहे हो ? भद्र सुन्दरक, तो अब अंगराज क्या काम कर रहे हैं ?

सुन्दरक—महाराज, अपने शरीर से कवच उतारकर और आत्मघात का निश्चय करके वह फिर, अर्जुन के साथ युद्ध की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

दुर्योधन—(जल्दी से आसन से उठकर) सूत, रथ लाओ। सुन्दरक, तुम दुःसाहस से बस करो। हम दोनों का निश्चय एक ही है। केवल एक आप ही प्राण छोड़ने की इच्छा नही कर रहे, प्रत्युत—

'पृथा (कुन्ती) के पुत्रों को मारकर, बन्धु लोगों को अमंगल जल देकर (तर्पण करके), (शेष बचे हुए) कुछ मंत्रियों और शत्रुओं के साथ आँसू बहाकर और परस्पर दुबारा न होने वाला (अर्थात् अन्तिम) गाढ आलिंगन करके दुःखी और शान्त हुये हम दोनों इस अधम शरीर को त्याग देंगे ॥१३॥

(पुत्र के) शोक के विषय में मुझे कुछ नहीं कहना है, क्योंकि—

'वृषसेन तुम्हारा (ही) पुत्र नहीं था; दुःशासन मेरा (ही) छोटा भाई नहीं था। मैं तुम्हें क्या सान्त्वना दूं ? तुम ही मुझे धैर्य बधाओगे' ॥१४॥

सुन्दरक—जो महाराज आज्ञा दें। (यह कहकर निकल जाता है)।

दुर्योधन—शीघ्र ही रथ लाओ।

सूत—(कान लगाकर) देव, हिनहिनाहट से मिश्रित पहिये की नेमि (परिधि, घेरे) की आवाज सुनाई पड़ रही है। इससे सोचता हूँ कि (यह) निश्चय ही सेवक द्वारा लाया हुआ, रथ है।

दुर्योधन—सूत, जाओ, तुम तैयार करो।

निर्वृत्तौ मुमूक्षू ॥१३॥

वृषसेन इति। [वृषसेनः तेपुत्रो न। आवयोरभिन्नत्वान्ममापीति भावः। दुःशासनः मे अनुजः कनीयान् भ्राता न। तवापीति, शेषः। अतोऽहं त्वां किं बोधयामि। त्वमपि मां किं संस्थापयिष्यसि। प्रकृतिस्थं करिष्यसि। आवयोरभिन्नत्वात्सान्त्वनादिकमनपेक्षितमितिभावः।]॥१४॥

सूतः—यदाज्ञापयति देवः । (इति निष्क्रम्य पुनः प्रविशति)

दुर्योधनः—(विलोक्य) किमिति नारूढोऽसि ।

सूत —एष खलु तातोऽम्बा च संजयाधिष्ठितं रथमारुह्य देवस्य समीपमुपगतौ ।

दुर्योधनः—किं नाम तातोऽम्बा च संप्राप्तौ । कष्टमतिबीभत्समाचरितं देवेन । सूत, गच्छ त्वं स्यन्दनं तूर्णमुपहर । अहमपि तातदर्शनं परिहर्त्तुमेकान्ते तिष्ठामि ।

सूत.—देव, त्वदेकशेषबान्धवावेतौ । कथमिव न समाश्वासयसि ।

दुर्योधन.—सूत, कथमिव समाश्वासयामि विमुखभागधेयः । पश्य—

> अद्यैवावां रणमुपगतौ तातमम्बां च दृष्ट्वा
>
> घ्रातस्ताभ्यां शिरसि विनतोऽहं च दुःशासनश्च ।
>
> तस्मिन्बाले प्रसभमरिणा प्रापिते तामवस्थां
>
> पार्श्वं पित्रोरपगतघृणः किं नु वक्ष्यामि गत्वा ॥१४॥

तथाप्यवश्य वन्दनीयौ गुरू ।

(इति निष्क्रान्तौ)

* इति चतुर्थोऽङ्कः *

हुंषा अश्वशब्दः । संवलितो मिश्र. । नेमिश्चक्रप्रान्तः । त्वदेकबान्धवौ त्वमेको बान्धवो ययोरिति समास. ।

अद्येति । आवामहं दुःशासनश्च । [प्रसभं हठात् ।] तामवस्थां मरणरूपाम्

सूत—जो महाराज आज्ञा दें। (यह कहकर बाहर जाकर फिर प्रवेश करता है)।

दुर्योधन—(देखकर) तुम (रथ पर) चढे क्यों नहीं हो ?

सूत—यह पिताजी और माताजी संजय द्वारा अधिष्ठित रथ पर बैठकर महाराज के समीप आये हैं।

दुर्योधन—क्या पिताजी और माताजी आये हैं ? बड़ा दुःख है, दैव ने बड़ा अनर्थ किया। सूत, जाओ, तुम जल्दी से रथ लाओ। मैं भी पिता की दृष्टि बचाकर एकान्त में खड़ा होता हूँ।

सूत—महाराज, आप इन्हें, जिनके आप ही एकमात्र सम्बन्धी अवशिष्ट हैं, सान्त्वना क्यों नहीं देते ?

दुर्योधन—सूत, विपरीत भाग्य वाला मैं किस प्रकार सान्त्वना दूँ ? देखो—

आज ही हम दोनों पिताजी और माताजी का दर्शन करके युद्ध में आये थे; उन दोनों ने प्रणाम करते हुये मेरा और दुःशासन का सिर सूंघा था। उस बालक के शत्रु द्वारा बलपूर्वक उस अवस्था (मृत्यु) को प्राप्त करा देने पर मैं निर्दय माता-पिता के पास जाकर क्या कहूँगा ? ॥१५॥

तो भी माता-पिता की अवश्य वन्दना करनी चाहिये।

(दोनों बाहर निकल जाते हैं)

*** चतुर्थ अङ्क समाप्त ***

पित्रोरित्यत्र पिता मात्रा इत्येकशेषः। घृणा करुणा जुगुप्सा वा। जुगुप्साकरुण घृणे इत्यमरः। पित्रोः पार्श्वं गत्वा किं नु वक्ष्यामीत्यन्वयः ॥१५॥

असूत यं रत्नधरो गुणाढ्यो नानागुणाढ्या दमयन्तिकापि ॥
अगद्धरं तस्य कृतौ व्यरंसीदङ्कश्चतुर्थो वरटिप्पनेऽत्र ॥

* इति चतुर्थोऽङ्कः *

पञ्चमोऽङ्कः

(ततः प्रविशति रथयानेन गान्धारी संजयो धृतराष्ट्रश्च)

धृतराष्ट्र—वत्स संजय, कथय कथय कस्मिन्नुद्देशे कुरुकुलकाननैकशेषप्रवालो वत्सो मे दुर्योधनस्तिष्ठति । कच्चिज्जीवति वा न वा ।

गान्धारी—जात यदि सत्यं जीवति मे वत्सस्तत्कथय कस्मिन्देशे वर्तते ।
[जाद जइ सच्चं जीवदि मे वच्छो ता कहेहि कस्सिं देसे वट्टदि ।]

संजय—नन्वेष महाराज एक एव न्यग्रोधच्छायायामुपविष्टस्तिष्ठति ।

गान्धारी—(सकरुणम्) जात, एकाकीति भणसि । किं नु खलु सांप्रतं भ्रातृशतमस्य पार्श्वे भविष्यति । [जाद, एआइ त्ति भणासि । किं णु क्खु संपदं भादुसदं से पास्से भविस्सादि ।]

संजयः—तात, अम्ब, अवतरतं स्वैरं रथात् ।

(उभाववतरणं नाटयतः ।)

(ततः प्रविशति सव्रीडमुपविष्टो दुर्योधनः)

संजयः—(उपसृत्य) विजयतां महाराजः । नन्वेष तातः अम्बया सह प्राप्तः । किं न पश्यति महाराजः ।

दुर्योधन.—(वैलक्ष्यं नाटयति)

धृतराष्ट्रः—

शल्यानि व्यपनीय कङ्कवदनैरुन्मोचिते कङ्कटे
बद्धेषु व्रणपट्टकेषु शनकैः कर्णे कृतापाश्रयः ।

एकशेषोऽवशिष्टः । प्रवालोऽङ्कुरः । प्रवालमङ्कुरेऽप्यस्त्री इत्यमरः । [कच्चित् कामप्रवेदने इति चामरः ।]···मे पुत्रकस्तत्कथय कस्मिन्नुद्देशे वर्तते । अन्यथा किं सांप्रतं भ्रातृशतमस्य··· । अत्र जात पुत्रक [स्वैरं शनैः सुखमिति यावत् । सव्रीडं सलज्जं यथा स्यादेवम् ।

पञ्चम अङ्क

(तत्पश्चात् रथ पर सवार होकर गान्धारी संजय और धृतराष्ट्र प्रवेश करते हैं।)

धृतराष्ट्र—वत्स संजय, बतलाओ, बतलाओ कुरु-कुल रूपी कानन का एकमात्र अवशिष्ट अंकुर, मेरा पुत्र दुर्योधन किस जगह है ? वह जीवित है अथवा नहीं ?

गान्धारी—पुत्र, यदि मेरा वत्स सचमुच जीवित है तो बतलाओ वह किस स्थान पर है ?

संजय—यह महाराज अकेले ही वट-वृक्ष की छाया में बैठे हैं।

गान्धारी—(करुणापूर्वक) पुत्र, 'अकेला है' यह क्यों कहते हो ? इस समय इसके पास सौ भाई होंगे।

संजय—तात, अम्बा, धीरे-धीरे रथ से उतरिये।

(दोनों उतरने का नाट्य करते हैं)

संजय—(पास जाकर) महाराज की जय हो। यह पिताजी माताजी के साथ आये हैं। महाराज क्यों नहीं देख रहे ?

दुर्योधन—(लज्जा का नाट्य करता है)।

धृतराष्ट्र—

कवच उतारने पर चिमटी के मुख से बाणों के अग्रभाग निकालकर, घावों पर पट्टियों के बाँध देने पर धीरे से कर्ण का सहारा लिये हुए और (पहले)

शल्यानीति। [कङ्कस्य पक्षिविशेषस्य, वदनमिव वदनं येषां तैः कङ्कवदनैः शस्त्रविशेषैः। शल्यानि बाणाग्राणि [व्यपनीय] उद्धृत्य कङ्कटे संनाहे [उन्मोचिते] अपनीते। कर्णे कृतः अपाश्रयः आश्रयो येन तादृशः। आदौ भवता निर्जिताः पश्चाच्च सान्त्विताः तान् शत्रुपक्ष्यान् नरपतीन् लीलया आलोकयद् भवान्। एष क्षत्रियाणां धर्मः यन्निर्जिता अपि शत्रवः सान्त्वनीया एवेति। हे पुत्रक क्षतजा पीडा सह्येति पापेन पुत्रविनाशान्मन्दभाग्येन मया न पृष्टः ॥१॥

दूरान्निर्जितसान्त्वितान्नरपतीनालोकयंल्लीलया
सह्या पुलक वेदनेति न मया पापेन पृष्टो भवान् ॥१॥

(धृतराष्ट्रो गान्धारी च स्पर्शेनोपेत्यालिङ्गतः)

गान्धारी—वत्स, अतिगाढप्रहारवेदनापर्याकुलस्यास्मासु सन्निहितेष्वपि न प्रसरति ते वाणी। [वच्छ आदिगाढप्पहारवेअणापज्जाउलस्स अह्मे हि संण्णिहिदेसु वि ण प्पसरदि दे वाणी।]

धृतराष्ट्रः—वत्स, दुर्योधन, किमकृतपूर्वः संप्रति मय्यप्यमभ्याहारः।

गान्धारी—वत्स, यदि त्वमप्यस्मान्नालपसि तत्किं सांप्रतं वत्सो दुःशासन आलपतु दुर्मर्षणो वान्यो वा। [वच्छ, जइ तुमं वि अह्मे णालवसि ता किं सपद वच्छो दुस्सासणो आलवदु दुम्मरिसणो वा अध अण्णो वा।] (इति रोदिति)।

दुर्योधनः—

पापोऽहमप्रतिकृतानुजनाशदर्शी
तातस्य वाष्पपयसां तव चाम्ब हेतुः।
दुर्जातमत्र विमले भरतान्वये वः
किं मां सुतक्षयकरं सुत इत्यवैषिः ॥२॥

गान्धारी—जात, अलं परिदेवितेन। त्वमपि तावदेकोऽस्यान्धयुगलस्य मार्गोपदेशकः। तच्चिरं जीव। किं मे राज्येन जयेन वा। [जाद, अलं परिदेविदेण। तुमं वि दाव एक्को इमस्स अन्धजुअलस्स मागोपदेसओ। ता चिर जीव। किं मे रज्जेण जएण वा।]

दुर्योधनः—

स्पर्शेन अन्धत्वात् हस्तपरामर्शेन समीपमागत्य। गान्धार्या अपि पातिव्रत्यप्रेरितायाः स्वभर्तुराध्यात्मनोऽपि चक्षुषोर्बद्धपट्टिकात्वादन्धत्वम्। [तदुक्तं भारते—गान्धारी त्वथ शुश्राव धृतराष्ट्रमचक्षुषम्। ततः सा पट्टमादाय कृत्वा

जीते गये और (पश्चात्) सान्त्वना दिये गये राजाओं को दूर से ही शान से देखने वाले आप से मुझ पापी ने यह न पूछा (पूछने का सुअवसर न पाया)—'हे पुत्र' तुम्हारी वेदना सह्य तो है ?' ॥१॥

(धृतराष्ट्र और गान्धारी टटोलते हुए पास आकर आलिङ्गन करते है)

गान्धारी—वत्स, हमारे समीप आने पर भी अत्यधिक गम्भीर प्रहारों की पीड़ा से व्याकुल हुए तुम्हारी वाणी भी नही चल रही है ।

धृतराष्ट्र—वत्स दुर्योधन, मेरे प्रति भी अब तुम्हारा यह पहले कभी न किया गया मौन क्यों ?

गान्धारी—वत्स, यदि तुम हमसे नही बोलोगे तो क्या अब पुत्र दुःशासन बोलेगा ? या दुर्मर्षण अथवा कोई अन्य (बोलेगा) ? (रोती है)

दुर्योधन—

हे माता, बिना प्रतिशोध लिये अनुज का नाश देखने वाला मैं पापी पिताजी और आपके आँसुओ का निमित्त हूँ। इस निर्मल भरत-कुल मे अनुचित रूप से उत्पन्न और (आपके) पुत्रों का नाश करने वाले मुझे आप पुत्र क्यो समझती हैं ? ॥२॥

गान्धारी—पुत्र, विलाप न करो । अब तुम अकेले ही इस अन्धे युगल को मार्ग बतलाने वाले हो । चिरजीवी रहो । मुझे राज्य से अथवा जय से क्या (प्रयोजन) ?

दुर्योधन—

बहुगुणं तदा । बबन्ध नेत्रे स्वे राजन् पतिव्रतपरायणा ॥] अपकृतमपकारः कृतः । यदि त्वं मां नालपसि तदा किं ।

पाप इति । हे अम्ब [अहं पापः यतः] तव तातस्य च बाष्पपयसां हेतुः कारणं जातोऽस्मि । कीदृशः । अप्रतिकृतोऽप्रतीकारविषयीकृतो योऽनुजनाशः [तं पश्यतीति] तदर्शी त्वं मां सुत इति किमर्थमपि जानासि । कीदृशम् । वो युष्माकमिह भरतकुले दुर्जातं दुष्टपुत्रम् । पुनः कीदृशम् । वः सुतविनाशकरम् । व इति काकाक्षिगोलकवदुभयान्वयि । आकाङ्क्षाया उभयत्र सत्वात् । शब्दान्वयस्य वागाकाङ्क्षाक्रमेणोत्थानादित्यन्यत्र विस्तरः ॥२॥

त्वमेव तावदेतस्यान्धयुगलस्य मार्गोपदेशको भव ।

मातः किमप्यसदृशं कृपणं वचस्ते
सुक्षत्रिया क्व भवती क्व च दीनतैया।
निर्वत्सले सुतशतस्य विपत्तिमेतां
त्वं नानुचिन्तयसि रक्षसि मामयोग्यम् ॥३॥

नूनं विचेष्टितमिदं सुतशोकस्य।

संजयः—महाराज, किं वायं लोकवादो वितथः—'न घटस्य कूपपाते रज्जुरपि तत्र प्रक्षेप्तव्या' इति।

दुर्योधनः—अपुष्कलमिदम्। उपक्रियमाणाभावे किमुपकरणेन। (इति रोदिति)।

धृतराष्ट्रः—(दुर्योधनं परिष्वज्य) वत्स समाश्वसिहि। समाश्वासय चास्मानिमामतिदीनां मातरं च।

दुर्योधनः—तात, दुर्लभः समाश्वास इदानीं युष्माकम् किं तु—

कुन्त्या सह युवामद्य मया निहतपुत्रया।
विराजमानौ शोकेऽपि तनयाननुशोचतम् ॥४॥

गान्धारी—जात, एतदेव सांप्रतं प्रभूतं यत् त्वमपि तावदेको जीवसि। तज्जात, अकालस्ते समरस्य। प्रसीद। एष ते शीर्षाञ्जलिः। निवर्त्यतां समरव्यापारात्। अपश्चिमं कुरु मे वचनम्।

[जाद एव एव्व संपदं प्पभूदं जं तुमं वि दाव एक्को जीवसि। ता जाद अकालो दे समरस्स। प्पसीद। एसो दे सीसञ्जली। णिवट्टीअदु समरव्वावारादो। अपच्छिमं करेहि वअणम्।]

मातरिति। किमप्यनिर्वचनीयम्। कृपणं दीनम्। सुक्षत्रिया शोभनक्षत्रियजातिः। क्वेति। अत्यन्तासम्भवेऽर्थे द्वौ क्वौ प्रयुज्येते इति कोषः। हे निर्वत्सले अवात्सल्यवति वात्सल्यहीने वा ॥३॥

किं वितथोऽसत्यः किं तु सत्य एवेत्यर्थः। रज्जुः। रशनादिग्रहः। इदं वचोऽपुष्कलमश्रेष्ठं। श्रेयान्श्रेष्ठः पुष्कलः स्यात् इत्यमरः। [न सर्वव्यापीत्यर्थः]

हे माता, तुम्हारा यह कैसा अनुचित और दीनतापूर्ण वचन है। कहाँ आप कुलीन क्षत्रीय वीराङ्गना ? और कहाँ यह दीनता ? हे अवत्सले, आप सौ पुत्रों की इस विपत्ति का विचार नहीं कर रही; मुझ अयोग्य की रक्षा कर रही हैं ॥३॥

निश्चय ही यह पुत्र-शोक की करामात है।

संजय—महाराज क्या यह लोकोक्ति झूठी है कि घड़ा कुयें में गिर जाने पर रस्सी भी वहाँ नहीं फेंक दी जाती।

दुर्योधन—यह पूर्ण रूप से सत्य नहीं है। उपकार्य के अभाव में उपकार-सामग्री से क्या (लाभ) ? (यह कहकर रोने लगता है)।

धृतराष्ट्र—(दुर्योधन का आलिङ्गन करके) वत्स धैर्य रक्खो। हमें और अपनी इस अतिदुःखित माता को भी सान्त्वना दो।

दुर्योधन—तात, अब आप लोगों को सान्त्वना मिलनी कठिन है।

किन्तु—

आज मेरे द्वारा मार डाले गये पुत्रों वाली कुन्ती के साथ शोक में भी विराजमान तुम दोनों पुत्रों की चिन्ता करना ॥४॥

गान्धारी—पुत्र, मेरे लिये अब यही बहुत है कि एक तुम ही जीवित रहो। इसलिए, हे पुत्र, अब तुम्हारे युद्ध का समय नहीं है। प्रसन्न होओ। मैं तेरे हाथ जोड़ती हूँ। युद्ध करना बन्द कर दो और अपने पिता के वचन का पालन करो।

[उपक्रियमाणानां रक्षणीयाना भ्रातृणामभावे उपकरणेन मम प्राणरक्षणेन किम्। साध्काभावे किं साधनेनेत्यर्थः।]

कुन्त्येति। अद्य [मया निहतपुत्रया] कुन्त्या सह युवां [शोकेऽपि विराजमानौ मया तस्याः पुत्रान् हत्वा कृतवैरनिर्यातनादिति भावः।] तनयाननुशोचतमित्यन्वयः ॥४॥

इदमेव यत्त्वामप्येकं नानुशोचयिष्ये। तज्जात प्रसीद। एष ते शीर्षेऽञ्जलिः। निवर्त्यतामेतस्मात्समरव्यापारात्। अपश्चिमं कुरु पितुर्वचनम् अत्र प्रभूतं युक्तम्। शीर्षेऽञ्जलिः प्रणामः। अपश्चिमसलङ्घ्यम्। सपत्नः शत्रुः।..

धृतराष्ट्रः—वत्स, शृणु वचनं तवाम्बाया मम च निहताशेषबन्धुवर्गस्य। पश्य—

दायादा न ययोर्बलेन गणितास्तौ द्रोणभीष्मौ हतौ
कर्णस्यात्मजमग्रतः शमयतो भीतं जगत्फाल्गुनात्।
वत्सानां निधनेन मे त्वयि रिपुः शेषप्रतिज्ञोऽधुना
मानं वैरिषु मुञ्च तात पितरावन्धाविमौ पालय ॥५॥

दुर्योधनः—समरात्प्रतिनिवृत्य किं मया कर्तव्यम्।

गान्धारी—जात, यत्पिता ते विदुरो वा भणति।

[जाद जं पिदा दे विउरो वा भणदि।]

संजयः—देव, एवमिदम्।

दुर्योधनः—संजय, अद्याप्युपदेष्टव्यमस्ति।

संजयः—देव, यावत्प्राणिति तावदुपदेष्टव्यभूमिर्विजिगीषुः प्रज्ञावताम्।

दुर्योधनः—(सक्रोधम्) शृणुमस्तावद्भवत एव प्रज्ञावतः संप्रत्यस्मदनुरूपमुपदेशम्।

धृतराष्ट्रः—वत्स, युक्तवादिनि संजये किमत्र क्रोधेन। यदि प्रकृतिमापद्यते तदहमेव भवन्तं ब्रवीमि। श्रूयताम्।

दुर्योधनः—कथयतु तातः।

धृतराष्ट्रः—वत्स, किं विस्तरेण। संधत्तां भयानिदानीमपि युधिष्ठिरमीप्सितपणबन्धेन।

दायदा इति। ययोर्बलेन दायं पित्रादि द्रव्यमाददतेऽदन्तीति वा दायादाः ज्ञातयः। पाण्डवा इत्यर्थः। न गणिता तुच्छत्वेनावज्ञाता। तौ द्रोणभीष्मौ हतौ। कर्णस्यात्मजं कर्णस्याग्रतः शमयत हतवत इत्यर्थः। फाल्गुनादर्जुनाज्जगद्भीतम्। फाल्गुनीनक्षत्रे जातः फाल्गुनः। तत्र श्रविष्ठाफल्गुन्यनुराधा इत्यादिना जातार्थकस्याणो लुकि, लुक्तद्धितलुकि इत्युपसर्जनस्त्रीप्रत्ययस्य लुकि फल्गुन इति। ततः प्रज्ञादित्वात्स्वार्थे अणि फाल्गुनः इति रूपम्। मे वत्सनां त्वदितरेषां निधनेन मरणेन रिपुः अधुना त्वयि शेषा शेषवती प्रतिज्ञा यस्य स शेषप्रतिज्ञः

धृतराष्ट्र—पुत्र, अपनी माता के और मेरे जिसके सब बन्धु मर गये है, वचन को सुनो। देखो—

जिनके बल पर दायादों (हिस्सेदारों) की चिन्ता नही की, वे भीष्म और द्रोण मारे गये; कर्ण के सामने ही उसके पुत्र को मारने वाले अर्जुन से संसार डर गया; मेरे पुत्रों को मार देने के कारण इस समय शत्रु (केवल) तुम्हारे विषय मे ही शेष प्रतिज्ञा वाला है। (इसलिये) हे पुत्र, शत्रु के प्रति अभिमान त्याग दो और इन अन्धे माता-पिता का पालन करो ॥५॥

दुर्योधन—युद्ध से पराङ्मुख होकर मैं क्या करूँगा ?

गान्धारी—पुत्र, तुम्हारे पिता अथवा विदुर जो कुछ कहें।

संजय—महाराज, यह ठीक है।

दुर्योधन—संजय क्या अब भी उपदेश का अवसर है ?

संजय—महाराज, विजिगीषु (विजयार्थी) जब तक जीवित रहता है, तब तक बुद्धिमानो के उपदेश का पात्र होता है।

दुर्योधन—(क्रोध से) अच्छा तो, हम आप ही बुद्धिमान् का अपने लिये उचित उपदेश सुनते है।

धृतराष्ट्र—वत्स, उचित बात कहने वाले संजय पर इस विषय मे क्रोध क्यों करते हो ? यदि आप शान्त हो जायें तो मैं ही आप मे कहूँगा।

दुर्योधन—पिताजी कहे।

धृतराष्ट्र—पुत्र विस्तार से क्या (लाभ) ? आप अब भी अभीष्ट शर्त पर युधिष्ठिर से सन्धि कर लें।

वर्तते। शेषशब्दादर्श आद्यच्। त्वामपि हन्यादित्यर्थः। अतः तात वत्स। 'वत्स पुत्रक तातेति नाम्ना गोत्रेण वा सुत.। शिष्योनुजश्च वक्तव्यः' इति दर्पणे।] दायादाः शत्रवः। अग्रत. कर्णस्यैव। फाल्गुनादर्जुनात्। मे वत्सानां निधनेनायं रिपुस्त्वयि शेषप्रतिज्ञः इत्यन्वयः। त्वदेकावशिष्टप्रतिज्ञ इत्यर्थः। हे तात मान्य। पितरौ मातापितरौ। एकशेषात् ॥५॥

पिता ते विदुरो यद्ब्रूणति। पिता पितृकल्पो हितोपदेशात्। प्राणितं जीवितम्।' संपन्नश्च प्रकृतिभिर्महोत्साहः कृतश्रमः। जेतुमेषणशीलश्च विजिगी-

दुर्योधन.—तात, तनयस्नेहवैक्लव्यादम्बा बालिशत्वात्संजयश्च काममेवं ब्रवीतु । युष्माकमप्येवं व्यामोहः । अथ वा प्रभवति पुत्रनाशजन्मा हृदयज्वरः । अन्यच्च तात, अस्खलितभ्रातृशतोऽहं यदा तदावधीरितवासुदेवसामोपन्यासः । संप्रति हि दृष्टपितामहाचार्यानुजराजचक्रविपत्तिः स्वशरीरमात्रस्नेहादुदात्तपुरुषव्रीडावहमसुखायमानं च कथमिव करिष्यति दुर्योधनः सह पाण्डवैः संधिम् । अन्यच्च । नमवेदिन्संजय ।

हीयमानाः किल रिपोर्नृपाः संदधते परान् ।
दुःशासने हतेऽहीनाः सानुजाः पाण्डवाः कथम् ॥६॥

धृतराष्ट्रः—वत्स, एवं गतेऽपि मत्प्रार्थनया न किंचिन्न करोति युधिष्ठिरः । अन्यच्च । सर्वदैवाप्रकृष्टमात्मानं मन्यते युधिष्ठिर. ।

दुर्योधन.—कथमिव ।

धृतराष्ट्रः—वत्स श्रूयतां प्रतिज्ञा युधिष्ठिरस्य । नाहमेकस्यापि भ्रातुर्विपत्तौ प्राणान्धारयामीति । बहुच्छलत्वात्सङ्ग्रामस्यानुजनाशमाशङ्कमानो यदेव भवते रोचते तदेवासौ सज्जः सधातुम् ।

संजयः—एवमिदम् ।

गान्धारी—जात, उपपत्तियुक्तं प्रतिपाद्यस्व पितुर्वचनम् ।

[जाद उववत्तिज्जुत्तं पडिवज्जस्स पिदुणो वअणम् ।]

पुरिति स्मृतः ॥' इति विजिगीषुलक्षणम् । वैक्लव्यादिह्वलत्वात् । अम्बा वदतीति शेषः । बालिशत्वेन मूर्खतया संजयो वदतीति शेषः । नाम निश्चये । हृदयज्वरस्तातस्येति शेष. । तातेत्यादि हे तात दुर्योधन. कथं संधिं करिष्यसीत्यन्वय. अस्खलितमविनष्टं । साम संधानम् । [दृष्ट्वा] पितामहो भीष्म' । आचार्यो द्रोण' । [अनुजा दुःशासनादय·]·राजचक्रं क्षत्रियसघः । [इत्येतेषां विपत्तिर्येन सः ।] [स्वशरीरमेव स्वशरीरमात्रं तस्मिन् स्नेहस्तस्मात् ।] कीदृशं संधिम् । [उदात्ताश्च ते पुरुषाश्च तेषां व्रीडामावहतीति व्रीडावहम् ।] उदात्तकथाव्रीडाकरमुत्तमकथालज्जाकरम् । दु.खान्तं च ।

हीयमाना इति । किलागमे रिपोरहितात् । हीयमाना हीनाः नृपा' पराञ्शत्रून्संदधते । स्वापेक्षया यदि परे शक्ता भवन्ति तदा तैः सम संधिः कर्तव्य इति

दुर्योधन—तात, पुत्र-स्नेह जन्य विकलता के कारण माताजी तथा मूर्खता के कारण संजय इस प्रकार भले ही कहें, लेकिन आपको यह बुद्धि-विभ्रम ? अथवा पुत्रों की मृत्यु से उत्पन्न शोक का ही यह प्रभाव है। और दूसरे, पिताजी, जब मेरे सौ भाई नष्ट नहीं हुए थे, तब मैंने कृष्ण के शान्ति-प्रस्तावना की अवहेलना कर दी थी। तो अब दुर्योधन, जिसने पितामह, आचार्य छोटे भाइयों तथा राज-समूह की विपत्ति (मृत्यु) देख ली है, केवल अपने शरीर के प्रति मोह के कारण पाण्डवों के साथ उदात्त पुरुषों के लिये लज्जा-जनक और दुःसमाप्त परिणाम वाली सन्धि कैसे करेगा ? और भी हे नीतिविज्ञ संजय, शत्रु से निर्बल राजा लोग ही शत्रु से सन्धि किया करते हैं। (तब) दुःशासन के मरने पर अनुज समेत प्रबल पाण्डव क्यों (सन्धि करेंगे) ? ॥६॥

धृतराष्ट्र—वत्स, ऐसा होने पर भी मेरी प्रार्थना पर युधिष्ठिर अवश्य ही कुछ भी कर लेगा, दूसरे युधिष्ठिर हमेशा ही स्वयं को हीन समझता है।

दुर्योधन—कैसे ?

धृतराष्ट्र—वत्स, सुनिये युधिष्ठिर की प्रतिज्ञा है कि—'मैं एक भी भाई के मर जाने पर प्राण धारण नहीं करूँगा।' युद्ध के अनेक कपटों से पूर्ण होने के कारण भाइयों के नाश से डरने वाला वह (युधिष्ठिर) जब भी आपको अच्छा लगे, तब ही सन्धि करने को तैयार है।

संजय—यह बिल्कुल ऐसा ही है।

गान्धारी—पुत्र, पिता के युक्तियुक्त वचन को स्वीकार कर लो।

भावः। दुःशासने हते सति सानुजाः पाण्डवा अहीनाः सन्तः कथं पदान्संदधत इत्यर्थः ॥६॥

एवं गतेऽपि भवदुक्तनीतेर्यथार्थत्वेऽपीत्यर्थः मम प्रार्थनया युधिष्ठिरः किंचिन्न करोत्येवं न। किं तु किंचित्करोत्येव। ननु हे राजन् युधिष्ठिरः सर्वमेवापकृतं नैवानुमन्यते। तस्य दक्षिणत्वात्सदा धर्मपरायणत्वाच्चेति भावः। कथमिव कुत इदमित्यर्थः बहूनि [छलानि यस्मिन्नतो बहुच्छलस्तस्य भावः बहुच्छलत्वं तस्मात्।] भवते रोचते तुभ्यं रुचिविषयीभवति। रुच्यर्थानां प्रीयमाणः इति चतुर्थी। उपपत्तियुक्तं प्रतिपद्यस्व पितुर्वचनम्। अथ प्रतिपद्यस्व जानीहि

दुर्योधनः—तात, अम्ब, संजय,

एकेनापि विनानुजेन मरणं पार्थः प्रतिज्ञातवान्
भ्रातृणां निहते शतेऽभिलषते दुर्योधनो जीवितुम् ।
तं दुःशासनशोणिताशनमरिं गदाकोटिभि-
र्भीमं दिक्षु न विक्षिपामि कृपणः संधिं विदध्यामहम् ॥७॥

गान्धारी—हा जात दुःशासन, हा मदङ्कदुर्ललित, हा युवराज, अश्रुतपूर्वा खलु कस्यापि लोक ईदृशी विपत्तिः । वीरशतप्रसविनी हतगान्धारी, दुःखशतं प्रसूतासि, न पुनः सुतशतम् । [हा जाद दुस्सासण, हा मदङ्कदुल्ललिद, हा जुअराअ, अस्सुदपुव्वा क्खु कस्स वि लोए ईदिसी विपत्ती । हा वीरसदप्पसविणि हदगान्धारि दुक्खसदं प्पसूदासि । ण उण सुदसदम् ।]

(सर्वे रुदन्ति)

संजयः—(बाष्पमुत्सृज्य) तात, अम्ब, प्रतिबोधयितुं महाराजमिमां भूमिं युवामागतौ । तदात्मापि तावत्संस्तभ्यताम् ।

धृतराष्ट्रः—वत्स दुर्योधन, एवं विमुखेषु भागधेयेषु त्वयि चामुञ्चति सहजं मानमरिषु त्वदेकशेषजीवितालम्बनेयं तपस्विनी गान्धारी कमवलम्बतां शरणमहं च ।

दुर्योधनः—श्रूयतां यत्प्रतिपत्तुमिदानीं प्राप्तकालम् ।

कलितभुवना भुक्तैश्वर्यास्तिरस्कृतविद्विषः
प्रणतशिरसां राज्ञां चूडासहस्रकृतार्चनाः ।

[अङ्गीकुरु । अनुतिष्ठेत्यर्थः ।]

एकेनेति । विनानुजेनेत्यत्र पृथग्विना इत्यादिना तृतीया पार्थो युधिष्ठिरः । अपहते शक्नोति । तथा च लज्जाकरेण मम जीवितेनालमिति भावः । शोणिताशिनं रक्तभोजिनम् । भोजनपदं लक्षणया पानेऽपि प्रवर्तत इहेत्यवधेयम् । कोटिः अग्रम् । कोटिरग्रे प्रकर्षे च इति धरणिः । अहं भीम [illegible] क्षिपामी । किं तु विक्षिपाम्येवेत्यर्थः । न शिरश [illegible] कृपणः [illegible] दध्ये । तथा च भीमवधादेव समीहितं [illegible] भाव.

दुर्योधन—तात, अम्ब, संजय,

पृथा-सूनु (युधिष्ठिर) ने एक भी भाई के बिना मरने की प्रतिज्ञा की है; (तब) दुर्योधन सौ भाइयों के मर जाने पर भी जीवित रहने की कामना करता है। मैं दुःशासन के रुधिर को पीने वाले, उस अपने शत्रु भीम को गदा के अग्रभागों से विदीर्ण करके विभिन्न दिशाओं में न फेंक दूं ? मैं दीन होकर सन्धि करूँ ? ॥७॥

गान्धारी—हाय, पुत्र दुःशासन ! हाय, मेरी गोद के हठी ! हाय, युवराज ! लोक में ऐसी मृत्यु कभी किसी की नहीं सुनी गई। हाय सौ पुत्रों को जन्म देने वाली, अधम गान्धारी, तूने तो सौ दुःख पैदा किये हैं, सौ पुत्र नहीं।

(सब रोते हैं)

संजय—(आँसू बहाते हुए) तात, अम्ब, आप महाराज को सान्त्वना देने के लिये इस जगह आये थे। इसलिये आप स्वयं को भी संभालें।

धृतराष्ट्र—पुत्र दुर्योधन भाग्य के इस प्रकार विपरीत होने और तुम्हारे शत्रु के प्रति सहज अभिमान न छोड़ने पर यह बेचारी गान्धारी, तुम ही एकमात्र जिसके प्राणों के अवलम्बन शेष रहे हो, और मैं किसकी शरण लूं ?

दुर्योधन—अब जिस कार्य को करने का समय है, उसे सुनिये—

संसार को वश में कर चुके हुए, ऐश्वर्य का भोग किये हुए शत्रुओं को अभिभूत कर चुके हुए और झुके हुए सिर वाले राजाओं के सहस्रों मुकुटों से

संस्तभ्यतां स्थिरीक्रियताम्। तपस्विन्यनुकम्प्या। तपस्वी तापसे चानुकम्पार्हे च तपस्विनि। इति विश्वः। त्वदेकशेषरूपं जीविताशावलम्बनं तद्योगिनी। न तु बहुव्रीहिं कृत्वा मत्वर्थीयः। तयोरेकेनैवापरस्य गतार्थत्वादित्यवधेयम्। किंशरणः इति पाठे किं शरणं यस्य स किंशरणः। अशरण इत्यर्थः। शरणं गृहरक्षित्रो. इत्यमरः। अहं च कमवलम्ब इत्यन्वयः प्रतिपत्तुं कर्तुम्।

कलितभुवनाः इति। हे तात यत. [कलितं भुवनं यैस्ते] कलितभुवनाः साधितलोकाः। कलिवलो कामधेनू इति वैयाकरणाः भुक्तैश्वर्याः। तिरस्कृता विद्विषो यैस्तैस्तिरस्कृतविद्विषः। प्रणतानि शिरांसि येषां ते प्रणतशिरसस्तेषां राज्ञां चूडानां सहस्राणि चूडासहस्राणि तैः कृतमर्चनं येषां ते तथोक्ताः।

पूजा किये (तुम्हारे) सौ पुत्र युद्ध में सामने होकर शत्रुओं पर प्रहार करते हुए मर गये हैं। (इसलिए अब) माता-सहित पिता सगर द्वारा वहन की गई (पृथ्वी की) धुरा को धारण करें ॥८॥

इससे विपरीत होने पर तो अधिपति के क्षात्रधर्म का उलङ्घन होगा।

(नेपथ्य में प्रचण्ड कोलाहल होता है)

गान्धारी—(सुनकर भय से) पुत्र, यह हाहाकार से मिश्रित वाद्य ध्वनि कहाँ सुनाई दे रही है ?

संजय—अम्ब, यह तो भीरु लोगों को डराने वाली इसीप्रकार की प्रचण्ड ध्वनियों की भूमि है।

धृतराष्ट्र—वत्स संजय, मालूम करो। यह हाहाकार का शब्द तो बड़ा भीषण एवं प्रचण्ड है। अवश्य ही इसका कोई महान कारण होगा।

दुर्योधन—तात, कृपा कीजिये। हमारा ही भाग्य विपरीत है। जब तक (भाग्य) कोई अन्य अनिष्ट नहीं सुनता, तब तक ही मुझे युद्ध-भूमि में उतरने की आज्ञा दीजिये।

गान्धारी—पुत्र, मुहूर्तभर मुझ अभागी को धैर्य बधाओ।

धृतराष्ट्र—वत्स, यद्यपि आपने युद्ध के लिए निश्चय किया हुआ है, फिर भी गुप्त रूप से शत्रु के वध का उपाय सोचो।

दुर्योधन—

मेरे सामने बान्धवों को मारने वाले शत्रु छिपकर मारने योग्य नहीं है। अथवा वह करने से क्या (लाभ) ? जो उनके समान युद्ध में प्रकट रूप से नहीं किया ?

विनाशः।

प्रत्यक्षमिति। [प्रत्यक्षं अस्माकं लोकानां वा समक्षं हताः अस्माकं बान्धवा यैस्ते परे शत्रवो रहः गुप्तं हन्तुं न योग्याः। प्रत्यक्षापकारिणा प्रत्यक्षमेव हननं वीरजनोचितमित्यर्थः। पाठान्तरे] मम रथः परान्हन्तुं न क्षम इत्यन्वयः। तेन परप्रतीघातोपायेन कृतेन वा किम्। किं तु न किमपि।. तैरपि कर्म कृतं निष्फलं यद्रणे न [प्रकाश] प्रकाश्येन बोधनीयम्। यदित्यत्र जात्यभिप्रायमेकवचनम् तैरिव कृतम् इति पाठे यथा तैः शत्रुभिः कृतं निष्फलं रणप्रकाशनाः

अभिमुखमरीन्घ्नन्तः संख्ये हताः शतमात्मजा
वहतु सगरेणोढां तातो धुरं सहितोऽम्बया ॥

विपर्यये त्वस्याधिपतेरुल्लङ्घितः क्षात्रधर्मः स्यात् ।

(नेपथ्ये महान्कलकलः)

गान्धारी—(आकर्ण्य सभयम्) जात, कुत्रैतत् हाहाकारमिश्रं तूर्यरसितं श्रूयते [जाद, कहि एदं हाहाकारमिस्सं तूररसिदं सुणीअदि ।]

संजय—अम्ब, भूमिरियमेवंविधानां भीरुजनत्रासनानां महानिनादानाम् ।

धृतराष्ट्रः—वत्स, संजय, ज्ञायतामतिभैरवः खलु विस्तारी हाहारवः । कारणेनास्य महता भवितव्यम् ।

दुर्योधनः—तात, प्रसीद । पराङ्मुखं खलु दैवमस्माकम् । यावदपरमपि किंचिदत्याहितं न श्रावयति तावदेवाज्ञापय मां सङ्ग्रामावतरणाय ।

गान्धारी—जात, मुहूर्तं तावन्मां मन्दभाग्यां समाश्वासय ।

[जाद, मुहुत्तअं दाव मं मन्दभाइणी समस्सासेहि ।]

धृतराष्ट्रः—वत्स, यद्यपि भवान्समराय कृतनिश्चयस्तथापि रहः परप्रतीघातोपायश्चिन्त्यताम् ।

दुर्योधन—

प्रत्यक्षं हतबान्धवा मम परे हन्तुं न योग्या रहः
किं वानेन कृतेन तैरिव यन्न प्रकाशं रणे ।

[अभिमुखं यथा तथा अरीन् घ्नन्तः] तवात्मजा शतं शतसंख्याका हताः । अतोऽम्बया सह सगरेणोढां धुरं तातो वहतु । यथा सागरस्य शतं पुत्राः शत्रुणा हतास्तथा तवापीति भावः । कीदृशाः । अभिमुखं क्रुद्धाञ्शत्रूनघ्नन्तो नाशयन्तः । इदं विशेषणं सगरसुतेष्वपि । एवं कलितभुवना इत्याद्यपि । शतमात्मजा इति । शतसंख्याया एकवचनान्तेनैव शतशब्देनोक्तत्वादात्मजपदेन बहुवचनान्तेन च तदभिधानादन्वयः । ऊढां धृताम् ॥८॥

[विपर्यये भवान् धुरं न वहेत् चेत्] क्षात्रवृत्तिः क्षत्रियधर्मः । जानीत किमिदं हाहाकारविमिश्रं तूर्यरसितं श्रूयते । अत्याहितमनिष्टम् । मुहूर्तकमपि त्वज्जन्मामनाथां समाश्वासय । अत्र मुहूर्तकमित्यत्र स्वार्थे कः । प्रतीघातो

पूजा किये (तुम्हारे) सौ पुत्र युद्ध में सामने होकर शत्रुओं पर प्रहार करते हुए मर गये हैं। (इसलिए अब) माता-सहित पिता समर द्वारा वहन की गई (पृथ्वी की) धुरा को धारण करें ॥८॥

इससे विपरीत होने पर तो अधिपति के क्षात्रधर्म का उलङ्घन होगा।

(नेपथ्य में प्रचण्ड कोलाहल होता है)

गान्धारी—(सुनकर भय से) पुत्र, यह हाहाकार से मिश्रित वाद्य ध्वनि कहाँ सुनाई दे रही है ?

संजय—अम्ब, यह तो भीरु लोगों को डराने वाली इसीप्रकार की प्रचण्ड ध्वनियों की भूमि है।

धृतराष्ट्र—वत्स संजय, मालूम करो। यह हाहाकार का शब्द तो बड़ा भीषण एवं प्रचण्ड है। अवश्य ही इसका कोई महान कारण होगा।

दुर्योधन—तात, कृपा कीजिये। हमारा ही भाग्य विपरीत है। जब तक (भाग्य) कोई अन्य अनिष्ट नही सुनता, तब तक ही मुझे युद्ध-भूमि मे उतरने की आज्ञा दीजिये।

गान्धारी—पुत्र, मुहूर्तभर मुझ अभागी को धैर्य बंधाओ।

धृतराष्ट्र—वत्स, यद्यपि आपने युद्ध के लिए निश्चय किया हुआ है, फिर भी गुप्त रूप से शत्रु के वध का उपाय सोचो।

दुर्योधन—

मेरे सामने बान्धवों को मारने वाले शत्रु छिपकर मारने योग्य नहीं हैं। अथवा वह करने से क्या (लाभ) ? जो उनके समान युद्ध में प्रकट रूप से नही किया ?

विनाशः।

प्रत्यक्षमिति। [प्रत्यक्षं अस्माकं लोकानां वा समक्षं हताः अस्माकं बान्धवा यैस्ते परे शत्रवो रहः गुप्तं हन्तुं न योग्याः। प्रत्यक्षापकारिणां प्रत्यक्षमेव हननं वीरजनोचितमित्यर्थः। पाठान्तरे] मम रथः परान्हन्तुं न क्षम इत्यन्वयः। तेन परप्रतीघातोपायेन कृतेन वा किम्। किं तु न किमपि।. तैरपि कर्म कृतं निष्फलं यद्रणे न [प्रकाशं] प्रकाश्येन बोधनीयम्। यदित्यत्र जात्यभिप्रायमेक-वचनम् तैरिव कृतम् इति पाठे यथा तैः शत्रुभिः कृतं निष्फलं रणप्रकाशनाः

गान्धारी—जात, एकाकी त्वम् । कस्ते साहाय्यं करिष्यति ।
[जाद एआइ तुमम् । को दे सहाअत्तणं करिस्सदि ।]
दुर्योधनः—

एकोऽहं भवतीसुतक्षयकरो मातः कियन्तोऽरयः
साम्यं केवलमेतु दैवमधुना निष्पाण्डवा मेदिनी ॥६॥
(नेपथ्ये कलकलानन्तरम्)

भो भो योधाः, निवेदयन्तु भवन्तः कौरवेश्वराय, इदं महत्कदनं प्रवृत्तम् । अलमप्रियश्रवणपराङ्मुखतया । यत कालानुरूपं प्रतिविधातव्यमिदानीम् । तथा हि—

त्यक्तप्राजनरश्मिरङ्किततनुः पार्थाङ्कितैर्मार्गणै-
र्वाहैः स्यन्दनवर्त्मना परिचयादाकृष्यमाणः शनैः ।
वार्तामङ्गपतेर्विलोचनजलैरावेदयन्पृच्छतां
शून्येनैव रथेन याति शिबिरं शल्यः कुरूञ्छल्ययन् ॥१०॥

दुर्योधनः—(श्रुत्वा साशङ्कम्) आः केनैवमविस्पष्टमशनिपातदारुणमुद्घोषितम् । कः कोऽत्र भोः ।

(प्रविश्य सम्भ्रान्तः)

सूतः—हा हताः स्मः । (इत्यात्मानं पातयति)
दुर्योधनः—अयि कथय कथय ।

दित्यर्थः । हे मातरेकोऽहमद्वितीयः श्रेष्ठो वास्मि । कीदृशः । भवत्याः पुत्रनाशकरः । भवतीत्यत्र पुवद्भावाभाव. प्रियादिपाठात् । स्त्रिया पुंवद् इति योगविभागाद्वा । कियन्तोऽल्पाः । केवलं दैवमेव श्लाघ्यमस्तु । [पाठान्तरे साम्य समतां निष्पक्षपातित्वमिति यावत् ।] मेदिनी निष्पाण्डवा भवेद् । यत्र क्रिया नास्ति तत्र कृभ्वस्तयो ग्राह्या इति व्युत्पत्तिः ॥६॥

कदनं पापं भीषणं वा । कदनं भीषणे पापे इति विश्वः ।

त्यक्तेति । शल्यः शून्येनैव रथेन शिबिरं यातीत्यन्वयः । किं कुर्वन् ।

गान्धारी—पुत्र, तू अकेला है । कौन तेरी सहायता करेगा ?

दुर्योधन—

मैंने अकेले ही आपके पुत्रों को नष्ट कर दिया है, (फिर) हे माता, शत्रु कितने हैं ? अब केवल भाग्य ही समान (निष्पक्ष) हो जाय तो पृथ्वी पाण्डवों से रहित (हो जायेगी) ॥६॥

(नेपथ्य मे कलकल ध्वनि के पश्चात्)

हे वीर लोगों, आप कौरवों के अधिपति से इस वर्तमान महान् अनर्थ को बतला दें । अप्रिय सुनने के विषय में मुँह मोड़ने मे बस करो । क्योंकि जो समयोचित है, अब उसका प्रतिविधान तो करना ही होगा । क्योंकि—

चाबुक और लगाम छोड़े हुये अर्जुन के नाम से अङ्कित बाणों से चिह्नित शरीर वाला, रथ के मार्ग से परिचित होने के कारण घोड़ों द्वारा धीरे-धीरे ले जाया जाता हुआ, पूछने वालों को आँखों के आँसुओं से अङ्गराज का वृत्तान्त सूचित करता हुआ और कुरु लोगों को शल्य के समान बीधता हुआ (यह राजा) शल्य खाली रथ से अपने पड़ाव की ओर जा रहा है ॥१०॥

दुर्योधन—(सुनकर आशङ्कापूर्वक) आह ! यह अस्पष्ट और वज्रपात के समान कठोर घोषणा किसने की है ? यहाँ कोई है ?

(प्रवेश करके घबराया हुआ)

सूत—हाय, हम मारे गये । (यह कहकर स्वयं को गिराता है) ।

दुर्योधन—अरे ! बताओ बताओ ।

कुरून्कुरुबलानि शल्ययन्दुःखितानि कुर्वन् । कीदृशः । [त्यक्तप्राजनरश्मिः त्यक्तौ प्राजनरश्मी येन स तथा ।] प्राजनं पएना इति; स्यातम् प्राजनं तोदनं तोत्रम् इत्यमरः । रश्मिर्वल्गा । [पार्थस्य अङ्कः चिह्नं स संजात एषामिति पार्थाङ्कितैः मार्गणैर्बाणैः । कलम्बमार्गणशराः इत्यमरः । अङ्कितनुः] स्यन्दनवर्त्मनां परिचयाद्रथमार्गानुसंधानात् । वाहैः शनैर्मन्दमाकृष्यमाणः । पृच्छतां जनानां पृच्छद्भ्यो जनेभ्य इत्यर्थः । अङ्गपतेर्वार्ता नेत्रजलैरावेदयन्कथयन् । तथा च कर्णो मृत इति रोदनेनैव सूचितमिति भावः ॥१०॥

अशनिर्वज्रम् । उभयं क्रियाविशेषणम् । उद्घोषितमुच्चैः शब्दः

धृतराष्ट्रसंजयौ—कथ्यतां कथ्यताम् ।

सूत—आयुष्मन्, किमन्यत् ।

शल्येन यथा शल्येन मूर्च्छितः प्रविशता जनौघोऽयम् ।
शून्यं कर्णस्य रथं मनोरथमिवाधिरूढेन ॥११॥

दुर्योधन—हा वयस्य कर्ण । [इति मोहमुपगतः] ।

गान्धारी—जात, समाश्वसिहि, समाश्वसिहि ।[जाद, समस्सस समस्सस ।]

संजयः—समाश्वसितु समाश्वसितु देव ।

धृतराष्ट्र—भो., कष्टं कष्टम् ।

भीष्मे द्रोणे च निहते य आसीदवलम्बनम् ।
वत्सस्य मे सुहृच्छूरो राधेयः सोऽप्ययं हतः ॥१२॥

वत्स, समाश्वसिहि समाश्वसिहि । ननु भो हतविधे,

अन्धोऽनुभूतशतपुत्रविपत्तिदुःखः
शोच्यां दशामुपगतः सह भार्ययाहम् ।
अस्मिन्नशेषितसुहृद्गुरुबन्धुवर्गे
दुर्योधनेऽपि हि कृतो भवता निराशः ॥१३॥

वत्स दुर्योधन, समाश्वसिहि समाश्वसिहि । समाश्वासय तपस्विनीं मातरं च ।

दुर्योधन—(लब्धसंज्ञः) ।

अयि कर्ण कर्ण कर्णसुखदां प्रयच्छ मे
गिरमुद्गिरन्निव मुदं मयि स्थिराम् ।
सततावियुक्तमकृताप्रियं प्रियं
वृषसेनवत्सल विहाय यासि माम् ॥१४॥

स्मो भवामः ।

शल्येनेति । हे देव अयं जनौघः शल्येन राज्ञा हेतुभूतेन मूर्च्छितोऽस्ति । कीदृशेन । प्रविशता । अर्थाज्जनौघमेव । कर्णस्य रथमधिरूढेन च । यथा शल्येनास्त्रविशेषेण मूर्छितो जनौघो भवति कीदृशं रथम् । मनोरथमिव । शून्यमित्यर्थः आर्याच्छन्दः ॥११॥

धृतराष्ट्र और संजय—कहो, कहो।

सुत—आयुष्मन् और क्या ?

शून्य (अपूर्ण) मनोरथ के समान कर्ण के सूने रथ पर बैठे हुए (राजा) शल्य ने शिविर में प्रवेश करते हुए शल्य नामक अस्त्र के समान इस जन-समूह को मूर्च्छित कर दिया है ॥११॥

दुर्योधन—हाय सखा कर्ण ! (यह कहकर मूर्च्छित हो जाता है)।

गान्धारी—पुत्र, धैर्य रक्खो, धैर्य रक्खो।

संजय—धैर्य रखिये, महाराज धैर्य रखिये।

धृतराष्ट्र—ओह ! बड़ा दुःख है।

भीष्म और द्रोण के मर जाने पर (हमारा) जो अवलम्बन था, मेरे पुत्र का मित्र वह यह वीर राधा-पुत्र (कर्ण) चला गया ॥१२॥

पुत्र, धैर्य रख, धैर्य रख अरे अधम भाग्य,

सौ पुत्रों की मृत्यु के दुःख को भोग चुका हुआ मैं अन्धा पत्नी-सहित इस शोचनीय अवस्था को प्राप्त हो गया हूँ। (अब) तुमने इस दुर्योधन के विषय में भी, जिसके मित्र, गुरु और बन्धु वर्ग में से कोई भी शेष नहीं रहा है, मुझे निराश कर दिया है ॥१३॥

पुत्र दुर्योधन धैर्य रक्खो और अपनी दीन माता को धैर्य बधाओ।

दुर्योधन—(चेतना प्राप्त करके)।

हे कर्ण, मुझमें, मानो, स्थायी हर्ष उँडेलते हुए तुम मुझसे कानों को सुख देने वाली वाणी बोलो। हे वृषसेन से प्रेम करने वाले, अभी वियुक्त न हुए, अप्रिय न करने वाले मुझ प्रिय को छोड़कर चले जा रहे हो ॥१४॥

अन्ध इति। [अनुभूतं शतपुत्रस्य विपत्तेर्मरणस्य दुःखं येन सः। अहं भार्यया सह शोच्यां दशामुपगतः।] अशेषितो विनष्टः [गुरुवृगुरुबन्धुवर्गो यस्य तस्मिन्।] विरामो निरस्तता। 'निराश इति पाठे आशाशून्यः ॥१३॥

अयीति। हे कर्ण मयि गिरं प्रयच्छ। कीदृशः। मयि स्थिरां मुदमुद्गिरन्निव। इत्येकोऽन्वयः। द्वितीयस्तु। हे कर्ण मम कृते पर्णसुखदां गिरं मुदमुद्गिरन्निव।-त्वमिति शेषः। अकृताप्रियं न कृतमप्रियं येन तं मित्रम्। वृषसेनो वत्सलो यस्य स तथा ॥१४॥

(पुनर्मोहमुपगतः)।

(सर्वे समाश्वासयन्ति)

दुर्योधनः—

मम प्राणाधिके तस्मिन्नङ्गानामधिपे हते।
उच्छ्वसन्नपि लज्जेऽहमाश्वासे तात का कथा ॥१५॥

अपि च—

शोचामि शोच्यमपि शत्रुहतं न वत्सं
दुःशासनं तमधुना न च बन्धुवर्गम्।
येनातिदुःश्रवमसाधु कृतं तु कर्णे
कर्तास्मि तस्य निधनं समरे कुलस्य ॥१६॥

गान्धारी—जात, शिथिलय तावत्क्षणमात्रं बाष्पमोक्षम्।
[जाद, सिढिलेहि दाव क्खणमेत्तं बाप्पोमोक्खम्।]

धृतराष्ट्रः—वत्स, क्षणमात्रं परिमार्जयाश्रूणि।

दुर्योधनः—

मामुद्दिश्य त्यजन्प्राणान्केनचिन्न निवारितः।
तत्कृते त्यजतो बाष्पं किं मे दीनस्य वार्यते ॥१७॥

सूत, केनैतदसंभावनीयमस्मत्कुलान्तकरणं कर्म कृतं स्यात्।

सूतः—आयुष्मन्, एवं किल जनः कथयति।

ममेति। तस्मिन्नङ्गानामधिपे हते सत्युच्छ्वसन्नप्यहं लज्जे। श्वासधारणेऽपि लज्जां करोमि। आश्वासे का कथा। [सुदूरापेतं तु समाश्वासनमिति भावः] ॥१५॥

शोचामीति। अधुना शत्रुहतं शोच्यं शोचनार्हमपि तं वत्सं दुःशासनं न शोचामि। बन्धुवर्गं च न शोचामि। तु किंतु येन कर्णे अतिदुःश्रवं अतिदुःखेन श्रोतुं शक्यम् असाधु कृतम्। कर्णो हतः इत्यर्थः। तस्य कुलस्य समरे निधनं नाशं कर्तास्मि। येन कर्णेन मम कर्णेऽसाध्वयोग्यमतिदुःश्रवमत्यन्तं दुःखश्राव्यं

(फिर मूर्च्छित हो जाता है)।

(सब सान्त्वना देते हैं)

दुर्योधन

हे तात, मुझे प्राणों से अधिक (प्रिय) अङ्गदेश के अधिपति उस (कर्ण) के मारे जाने पर सांस लेते हुए भी लज्जा आती है; धैर्य धारण की तो बात ही क्या ॥१५॥

और भी,

अब मैं शत्रु द्वारा मारे गये तथा शोक के योग्य होते हुए भी, वत्स दुःशासन और बन्धु-समूह के लिए शोक नहीं करता; लेकिन जिसने कर्ण के प्रति (यह) अत्यन्त अश्रवणीय पाप कर्म किया है, युद्ध में उसके कुल का नाश कर दूंगा ॥१६॥

गान्धारी—पुत्र, अब क्षण-भर आँसू बहाना बन्द करो।

धृतराष्ट्र—वत्स, क्षण-भर के लिये आँसू पोंछ लो।

दुर्योधन—

मेरे लिये प्राणों का त्याग करते हुए (कर्ण) को किसी ने नहीं रोका। उसके लिये आँसू बहाते हुए मुझ दीन को क्यों रोका जा रहा है? ॥१७॥

सूत, हमारे कुल का नाश करने वाला यह असम्भव कार्य किसने किया होगा?

सूत—आयुष्मन्, लोग ऐसा कह रहे थे—

वधो न कृतं तस्य कर्णस्य निधने सति मम कुलस्य निधनं विनाश इत्यर्थः। [स्यांज्योऽयं जगद्धरसंमतः पाठः।] दुःश्रवमिति विशेषणद्वारा विशेष्यलाभः। ईषद्दुःसुषु इत्यादिना खल् ॥१६॥

अत्र मोक्षस्त्यागः।

मामिति। न निवारितो य इति शेषः। तत्कृते तं लक्ष्यीकृत्याश्रूणि त्यजतो मे किं वार्यते। न वारयितुमर्हामीति भावः ॥१७॥

असंभावनीयं दुष्करम्।

भूमौ निमग्नचक्रश्चक्रायुधसारथेः शरैस्तस्य ।
निहतः किलेन्द्रसूनोरस्मत्सेनाकृतान्तस्य ॥१८॥

दुर्योधनः—

कर्णाननेन्दुस्मरणात्क्षुभितः शोकसागरः ।
वाडवेनेव शिखिना हीयते क्रोधजेन मे ॥१९॥

तात, अम्ब, अलमिदम् ।

ज्वलनः शोकजन्मा मामयं दहति दुःसहः ।
समानायां विपत्तौ मे वरं संशयितो रणः ॥२०॥

धृतराष्ट्रः—(दुर्योधनं परिष्वज्य रुदन्)

भवति तनय सत्यं संशयः साहसेषु
द्रवति हृदयमेतद्भीममुत्प्रेक्ष्य भीमम् ।
अनिकृतिनिपुणं ते चेष्टितं मानशौण्ड-
च्छलबहुलमरीणां सङ्गरं हा हतोऽस्मि ॥२१॥

गान्धारी—जात, तेनैव सुतशतकृतान्तेन वृकोदरेण समं समरं मार्गयसे।
[जाद, तेण एव्व सुदसदकदन्तेण विओदरेण समं समरं मग्गसि।]

दुर्योधनः—तिष्ठतु तावद् वृकोदरः।

भूमाविति । किल प्रसिद्धौ ।[चक्रायुधः सारथिः यस्य तस्य अस्मत्सेनाकृतान्तस्य] तस्येन्द्रसूनोरर्जुनस्य शरैः स कर्णो निहतः । कीदृशः । भूमौ [निमग्नचक्र.] निमग्नरथाङ्गः । चक्र सैन्यरथाङ्गयो इति विश्वः । चक्रायुधः कृष्णः । कृतान्तो यमः ॥१८॥

कर्णेति । [कर्णाननमेव इन्दुः तस्य स्मरणात्क्षुभितः मम शोकसागरः वाडवेन वडवाजातेन शिखिनाग्निना और्वेण इव मे क्रोधजातेन शिखिना पीयते ॥१९॥

(वह कर्ण), पृथ्वी में जिसका पहिया धंस गया था, हमारी सेना के लिये यम के समान इन्द्र-पुत्र (अर्जुन) के, जिसका चक्रायुद्ध (कृष्ण) सारथि है बाणों से मारा गया ॥१८॥

दुर्योधन—

कर्ण के मुख-रूपी चन्द्रमा के स्मरण से संक्षुब्ध मेरा शोक-रूपी सागर वाडवाग्नि के समान मेरी क्रोधाग्नि से पिया जा रहा है ॥१९॥

पिताजी, माताजी, कृपा कीजिये।

शोक से उत्पन्न यह असह्य अग्नि मुझे जलाये डाल रही है। (घर और युद्ध-क्षेत्र में) मृत्यु के समान (रूप से सम्भव) होने पर मुझे संशयपूर्ण युद्ध ही कुछ अच्छा है ॥२०॥

धृतराष्ट्र—(दुर्योधन का आलिङ्गन करके रोते हुए)।

हे पुत्र, यह सच है कि साहसपूर्ण कार्यों में संशय होता है। भयङ्कर भीम का विचार करके (मेरा) यह हृदय द्रवित हो रहा है। हे स्वाभिमानिन्, तुम्हारा युद्ध-कर्म वञ्चना-निपुण नहीं है और शत्रुओं का युद्ध-कर्म अनेक छलों से पूर्ण है। हाय ! मैं मारा गया ॥२१॥

गान्धारी—पुत्र, तुम भी वृकोदर से युद्ध की इच्छा कर रहे हो, जो (मेरे) सौ पुत्रों के लिए यम के समान है ?

दुर्योधन—वृकोदर की बात छोड़ो—

ज्वलन इति। समानायां तुल्यायां दाहमरणयोर्विपदि सत्याम्। संशयितोऽपि जये भङ्गे च सन्दिग्धोऽपि। रणो वरं श्रेष्ठ इत्यर्थः। वरं शब्दो मनागर्थे वा ॥२०॥

भवतीति। हे तनय पुत्र ईदृशेषु लक्ष्मीर्भवति। तदुक्तम्—'न साहसमनारुह्य नरो भद्राणि पश्यति इति।' द्रवति चपलं भवति। भीमं भयानकम्। उत्प्रेक्ष्य विचिन्त्य। हे मानशौण्डाभिमानख्यात ते चेष्टितमनिकृतिनिपुणं परक्षेप कुशलं परभर्त्सनाकुशलं वा अस्तीति शेषः। निकृतिर्भर्त्सने क्षेपे इति विश्वः अरीणां सङ्गरं युद्धं छलबहुलमस्ति। अतो हा कष्टम्। हतोऽस्मि ॥२१॥

पापेन येन हृदयस्यस्य मनोरथो मे
सर्वाङ्गचन्दनरसो नयनामलेन्दुः ।
पुत्रस्तवाम्ब तव तात नयैकशिष्यः
कर्णो हतः सपदि तत्र शराः पतन्तु ॥२२॥

सूत, अलमिदानीं कालातिपातेन । सज्जं मे रथमुपाहर । भयं चेत् पाण्डवेभ्यस्तिष्ठ । गदामात्रसहाय एव समरभुवमवतरामि ।

सूत.—अलमन्यथा संभावितेन । अयमहमागत एव । (इति निष्क्रान्तः)

धृतराष्ट्रः—वत्स दुर्योधन, यदि स्थिर एवास्मान्दग्धुमयं ते व्यवसायस्ततस्संनिहितेषु वीरेषु सेनापति कश्चिदभिषिच्यताम् ।

दुर्योधनः—नन्वभिषिक्त एव ।

गान्धारी—जात, कतरः पुन. स यत्रेमां हताशामवलम्बिष्ये ।
[जाद, कदरो उण सो जहिं एद हदास ओलम्बिस्सम् ।]

धृतराष्ट्रः—किं वा शल्य उत वाश्वत्थामा ।

संजयः—हा कष्टम् ।

गते भीष्मे हते द्रोणे कर्णे च विनिपातिते ।
आशा बलवती राजञ्शल्यो जेष्यति पाण्डवान् ॥२३॥

दुर्योधनः—किं वा शल्येनोत वाश्वत्थाम्ना ।

कर्णालिङ्गनदायी वा पार्थप्राणहरोऽपि वा ।
अनिवारितसंपातैरयमात्माश्रुवारिभिः ॥२४॥

(नेपथ्ये कलकलानन्तरम्)

भो भोः कौरवबलप्रधानयोद्धाः, अलमस्मानवलोक्य भयावितस्ततो गमनेन । कथयन्तु भवन्तः कस्मिन्नुद्देशे सुयोधनस्तिष्ठतीति ।

पापेनेति । हे अम्ब तव पुत्रः कर्णः । हे तात तव नये एकः मुख्यः शि॰ नयैकशिष्यः कर्णः । येन पापेन हत इत्यन्वयः ॥२२॥

अतिपातोऽतिक्रमः । यस्मिन्नाशा समवलम्बिष्ये । [अत्र कतरः कः

जिस पापी ने मेरे हृदयस्थित मनोरथ, मेरे सब अङ्गों के चन्दन रस और मेरे नेत्रो के निर्मल चन्द्रमा, हे माता, आपके पुत्र और हे पिता, आपके नीतिशास्त्र में प्रमुख शिष्य, कर्ण को मारा है, मेरे बाण उस पर पड़े ॥२२॥

सूत अब समय नष्ट करने से बस करो। मेरा रथ तैयार करके लाओ। यदि तुम्हे पाण्डवों से डर हो, तो ठहरो। मैं केवल गदा साथ लेकर युद्ध-भूमि मे उतरता हूँ।

सूत—अन्यथा न समझिये। मैं यह आ ही पहुँचा। (यह कहकर बाहर जाता है)।

धृतराष्ट्र—वत्स दुर्योधन, यदि हमें जलाने के लिए तुम्हारा निश्चय दृढ़ ही है, तो उपस्थित वीरों में से किसी को सेनापति अभिषिक्त करो।

दुर्योधन—पहले ही अभिषिक्त है।

गान्धारी—पुत्र, वह कौन है जिस पर मैं इस मरी आशा को रक्खूं?

धृतराष्ट्र—क्या वह शल्य है या अश्वत्थामा?

सजय—ओह! बड़ा दु.ख है।

हे राजन्, भीष्म के चले जाने पर द्रोण के मारे जाने पर और कर्ण के गिरा दिये जाने पर शल्य पाण्डवो को जीतेगा, यह बलवती आशा है ॥२३॥

दुर्योधन—शल्य से अथवा अश्वत्थामा से क्या?

यह मैं स्वयं बे-रोक बहने वाले आँसुओ के जल से (अभिषिक्त हो गया हूँ)। मैं या तो (मरकर) कर्ण को आलिङ्गन प्रदान करूंगा अथवा पृथा-पुत्र (अर्जुन) के प्राणो को हर लूंगा ॥२४॥

(नेपथ्य में कलकल ध्वनि के पश्चात्)

हे कौरव सेना के प्रमुख वीरों हमें देखकर भय के कारण इधर-उधर भागने से बस करो। आप लोग बतलायें कि सुयोधन किस जगह बैठा है?

आशां प्रत्याशाम्।

गत इति। गते शरशय्यामिति शेषः। विनिपातिते घातिते ॥२३॥

कर्णेति। अयं ममात्मा कर्णालिङ्गनदायी कर्णानुयायीत्यर्थः। अश्रुवारिभिः संसिक्तः। लक्षणे तृतीया। कीदृशैः अनिवारितासारैः। धारासंपात आसारः इत्यमरः। तथा च मर्तव्यं वा मयार्जुनवधो वा कर्तव्य इति भावः ॥२४॥

(सर्वे ससंभ्रममाकर्णयन्ति)

(प्रविश्य सम्भ्रान्तः)

सूतः—आयुष्मन्,

प्राप्तावेकरथारूढौ पृच्छन्तौ त्वामितस्ततः ।

सर्वे—कश्च कश्च ।

सूतः—

स कर्णारिः स च क्रूरो वृककर्मा वृकोदरः ॥२५॥

गान्धारी—(सभयम्) जात, किमत्र प्रतिपत्तव्यम् ।

[जाद किं एत्थ पडिपज्जिदव्वम् ।]

दुर्योधनः—ननु संनिहितैवेयं गदा ।

गान्धारी—हा हतास्मि मन्दभागिनी । [हा हदह्मि मन्दभाइणी ।]

दुर्योधनः—अम्ब, अलमिदानीं कार्पण्येन । सञ्जय, रथमारोप्य पितरौ शिबिरं प्रतिष्ठस्व । प्राप्तोऽस्मच्छोकापनोदी जनः ।

धृतराष्ट्रः—वत्स, क्षणमेकं प्रतीक्षस्व यावदनयोर्भावमुपलभे ।

दुर्योधनः—तात, किमनेनोपलब्धेन ।

(ततः प्रविशतो रथारूढौ भीमार्जुनौ)

भीमः—भो भोः सुयोधनानुजीविनः, किमिति संभ्रमादयथायथं चरन्ति भवन्तः । असमावयोः शङ्कया ।

कर्ता द्यूतच्छलानां जतुमयशरणोद्दीपनः सोऽभिमानी
कृष्णाकेशोत्तरीयव्यपनयनमरुत्पाण्डवा यस्य दासाः ।

प्राप्ताविति । इतस्ततः सर्वत्र । कर्णारिरर्जुनः । वृको हुण्डार इति ख्यातः । तद्वद्युद्धकर्म यस्य स वृककर्मा । वृको मृगविशेषो वा । कोकस्त्वीहामृगो वृकः । इत्यमरः । वृको मृगे तयोरगे इति धरणिः ॥२५॥

कर्तव्यम् । प्रतिपत्तव्यम् इत्यपि पाठः । प्रतीक्षस्व क्षमस्व । अनयोर्भीमार्जुनयोः । भावामभिप्रायम् । अयथायथमितस्ततः ।

(सब घबराहट के साथ सुनते हैं)

(प्रवेश करके घबराया हुआ)

सूत—आयुष्मन्, एक रथ पर बैठे हुए और इधर उधर आपके विषय में पूछते हुए दो आये है।

सब—कौन कौन ?

सूत—वह कर्ण का शत्रु (अर्जुन) और वह भेड़िये जैसे कर्म करने वाला क्रूर वृकोदर ॥२५॥

गान्धारी—(भयपूर्वक) पुत्र, अब इस स्थिति मे क्या करना चाहिए ?

दुर्योधन—यह गदा तो पास मे है ही।

गान्धारी—हाय मै मन्दभाग्य मारी गई।

दुर्योधन—माताजी, अब दीनता से बस करो। संजय, माता-पिता को रथ में बैठाकर शिविर की ओर प्रस्थान करो। हमारे शोक को दूर करने वाला जन आ गया है।

धृतराष्ट्र—पुत्र, एक क्षण प्रतीक्षा करो, जब तक मैं इनका अभिप्राय जान लूं।

दुर्योधन—तात, इसके जानने से क्या होगा ?

(तत्पश्चात् रथ पर बैठे भीम और अर्जुन प्रवेश करते है)

भीम—अरे सुयोधन के भृत्यो, घबराकर इधर-उधर क्यो भाग रहे हो ? हम दोनो से डरने की आवश्यकता नही है।

द्यूत-कपट करने वाला, लाक्षा-गृह को जलाने वाला, अत्यधिक अभिमानी, द्रौपदी के केश और वस्त्रो के हरण मे वायु के समान, पाण्डव जिसके दास है,

---

कर्तेति। असौ स दुर्योधनः क्वास्ते तत्कथयत। [कीदृशः द्यूतसम्बन्धिना छलानां कर्ता। जतुमयं लाक्षानिर्मितं यत् शरणं गृहं तस्य उद्दीपनः दाहकः। कृष्णायाः केशास्च उत्तरीयं च तेषां व्यपनयने मरुत् वायुरिव।] रुषा तं द्रष्टुं

(सर्वे ससंभ्रममाकर्णयन्ति)

(प्रविश्य सम्भ्रान्त.)

सूतः—आयुष्मन्,

प्राप्तावेकरथारूढौ पृच्छन्तौ त्वामितस्ततः ।

सर्वे—कस्च कस्च ।

सूतः—

स कर्णारिः स च क्रूरो वृककर्मा वृकोदरः ॥२५॥

गान्धारी—(सभयम्) जात, किमत्र प्रतिपत्तव्यम् ।

[जाद किं एत्थ पडिवज्जिदव्वम् ।]

दुर्योधनः—ननु संनिहितैवेयं गदा ।

गान्धारी—हा हतास्मि मन्दभागिनी । [हा हदम्हि मन्दभाइणी ।]

दुर्योधनः—अम्ब, अलमिदानीं क्रन्दनेन । सञ्जय, रथमारोप्य पितरौ शिबिरं प्रतिष्ठस्व । प्राप्तोऽस्मच्छोकापनोदी जन ।

धृतराष्ट्रः—वत्स, क्षणमेकं प्रतीक्षस्व यावदनयोर्भावमुपलभे ।

दुर्योधनः—तात, किमनेनोपलब्धेन ।

(तत. प्रविशतो रथारूढौ भीमार्जुनौ)

भीमः—भो भोः सुयोधनानुजीविनः, किमिति सम्भ्रमादयथायथं चरन्ति भवन्तः । अलमावयो. शङ्कया ।

कर्ता द्यूतच्छलानां जतुमयशरणोद्दीपन. सोऽभिमानी
कृष्णाकेशोत्तरीयव्यपनयनमरुत्पाण्डवा यस्य दासा. ।

प्राप्ताविति । इतस्ततः सर्वत्र । कर्णारिरर्जुनः । वृको हुण्डार इति ख्यातः । तद्वद्युद्धकर्म यस्य स वृककर्मा । वृको मृगविशेषो वा । कोकस्त्वीहामृगो वृकः । इत्यमरः । वृको मृगे तयोरगे इति धरणिः ॥२५॥

कर्तव्यम् । प्रतिपत्तव्यम् इत्यपि पाठः । प्रतीक्षस्व क्षमस्व । अनयोर्भीमार्जुनयोः । भावमभिप्रायम् । अयथायथमितस्ततः ।

(सब घबराहट के साथ सुनते है)

(प्रवेश करके घबराया हुआ)

सूत—आयुष्मन्, एक रथ पर बैठे हुए और इधर उधर आपके विषय में पूछते हुए दो आये है।

सब—कौन कौन ?

सूत—वह कर्ण का शत्रु (अर्जुन) और वह भेड़िये जैसे कर्म करने वाला क्रूर वृकोदर ॥२५॥

गान्धारी—(भयपूर्वक) पुत्र, अब इस स्थिति में क्या करना चाहिए ?

दुर्योधन—यह गदा तो पास मे है ही।

गान्धारी—हाय मैं मन्दभाग्य मारी गई।

दुर्योधन—माताजी, अब दीनता से बस करो। संजय, माता-पिता को रथ में बैठाकर शिविर की ओर प्रस्थान करो। हमारे शोक को दूर करने वाला जन आ गया है।

धृतराष्ट्र—पुत्र, एक क्षण प्रतीक्षा करो, जब तक मैं इनका अभिप्राय जान लूं।

दुर्योधन—तात, इसके जानने से क्या होगा ?

(तत्पश्चात् रथ पर बैठे भीम और अर्जुन प्रवेश करते हैं)

भीम—अरे सुयोधन के भृत्यो, घबराकर इधर-उधर क्यों भाग रहे हो ? हम दोनो से डरने की आवश्यकता नही है।

द्यूत-कपट करने वाला, लाक्षा-गृह को जलाने वाला, अत्यधिक अभिमानी, द्रौपदी के केश और वस्त्रों के हरण मे वायु के समान, पाण्डव जिसके दास हैं,

---

कर्त्तेति। असौ स दुर्योधनः क्वास्ते तत्कथयत। [कीदृशः द्यूतसम्बन्धिनां छलानां कर्ता। जतुमयं लाक्षानिर्मितं यत् शरणं गृहं तस्य उद्दीपनः दाहकः। कृष्णायाः केशाश्च उत्तरीयं च तेषां व्यपनयने मरुत् वायुरिव।] क्या तं द्रष्टुं

राजा दुःशासनादेर्गुरुरनुजशतस्याङ्गराजस्य मित्रं ।
क्वास्ते दुर्योधनोऽसौ कथयत न रुषा द्रष्टुमभ्यागतौ स्वः ॥२६॥

धृतराष्ट्र.—सजय, दारुण खलूपक्षेपः पापयोः ।

सजयः—तात, कर्मणा कृतनिःशेषविप्रियाः संप्रति वाचा व्यवस्यन्ति ।

दुर्योधन.—सूत, कथय गत्वोभयोरयं तिष्ठतीति ।

सूत —यथाज्ञापयति देव. । (सायुपसृत्य) ननु भो वृकोदरार्जुनौ, एष महाराजस्तातेनाम्बया च सह न्यग्रोधच्छायायामुपविष्टास्तिष्ठति ।

अर्जुनः—आर्य, प्रसीद । न युक्तं पुत्रशोकपीडितौ पितरौ पुनरस्मद्दर्शनेनोद्वेजयितुम् । तद्गच्छावः ।

भीमः—मूढ, अनुल्लङ्घनीयः सदाचारः । न युक्तमनभिवाद्य गुरून् गन्तुम् । (उपसृत्य) संजय, पित्रोर्नमस्कृतिं श्रावय । अथवा तिष्ठ । स्वयं विश्राव्य नामकर्मणी वन्दनीया गुरवः । (इति रथादवतरतः)

अर्जुनः—(उपगम्य) तात, अम्ब,

सकलरिपुजयाशा यत्र बद्धा सुतैस्ते
तृणमिव परिभूतो यस्य गर्वेण लोकः ।
रणशिरसि निहन्ता तस्य राधासुतस्य
प्रणमति पितरौ वां मध्यमः पाण्डवोऽयम् ॥२७॥

भीमः—

चूर्णिताशेषकौरव्यः क्षीबो दुःशासनासृजा ।
भङ्क्ता सुयोधनस्योर्वोर्भीमोऽयं शिरसाञ्चति ॥२८॥

भ्यागतौ स्वः । सदनं [शरणं] गृहम् व्यपनयन दूरीकरणम् । मरुद्वात. । मित्रं ॥ इत्यत्र मित्रशब्दस्याजहल्लिङ्गतयान्वयः ॥२६॥

उद्वेजयितुमित्यत्र ण्यन्तत्वाद् गुणः । सदाचारः शिष्टाचारः । समुदाचारः इति पाठे सद्व्यवहार इत्यर्थः नमस्कृतिं नमस्कारम् ।

सकलेति । [यत्र यस्मिन् कर्णे ते पुत्रैः सकलानां रिपूणां जयस्याशा बद्धा । यस्य यत्सम्बन्धिना गर्वेण लोकः तृणमिव परिभूतः तस्य राधासुतस्य रणशिरसि

दु:शासन आदि सौ भाइयों में ज्येष्ठ, अङ्गराज (कर्ण) का मित्र वह राजा दुर्योधन कहाँ है ? बताओ, हम दोनों (यहाँ) क्रोध से नहीं, (अपितु) देखने आये हैं ॥२६॥

धृतराष्ट्र—संजय, इस पापी का वाक्योपन्यास तो बड़ा परुष है।

संजय—तात, कर्म द्वारा सब अहित करके अब वाणी द्वारा करना चाहते हैं।

दुर्योधन—सूत, जाकर दोनों से कह दो कि यहाँ पर हैं।

सूत—जैसे महाराज आज्ञा दें। (दोनों के पास जाकर) हे भीम और अर्जुन, यह महाराज पिता और माता के साथ वट-वृक्ष की छाया में बैठे हैं।

अर्जुन—आर्य प्रसन्न होओ। पुत्र के दु:ख से पीडित माता-पिता को अपने दर्शन से अधिक व्याकुल करना उचित नहीं है।

भीम—मूर्ख, शिष्टाचार का उल्लङ्घन नहीं करना चाहिये। इसलिये बड़ों को बिना अभिवादन किये जाना ठीक नहीं है। (समीप जाकर) संजय, माता पिता से (हमारा) नमस्कार कहो। अथवा ठहरो। स्वयं ही (अपने) नाम और कार्यों को सुनाकर बड़े लोगों की वन्दना करनी चाहिए। (यह कहकर दोनों रथ से उतरते हैं)।

अर्जुन—(समीप जाकर) तात, अम्ब,

जिसमें तुम्हारे पुत्रों ने सब शत्रुओं को जीत लेने की आशा बाँधी थी और जिसमें घमण्ड से (उन्होंने) संसार का तिनके के समान तिरस्कार किया था, उस राधा-सुत को युद्ध में मारने वाला, यह मध्यम पाण्डव आप माता-पिता को प्रणाम करता है ॥२७॥

भीम—समस्त कौरवों को चूर्ण करने वाला, दु:शासन के रुधिर से मत्त, सुयोधन की दोनों जंघाओं को तोड़ देने वाला यह भीम सिर झुकाकर प्रणाम करता है ॥२८॥

निहन्ता वां पितरावयं मध्यमः पाण्डवोऽर्जुनः प्रणमति। वाम् इति द्वितीया-द्विवचनान्तम् ॥२७॥

चूर्णितेति। [चूर्णिता अशेषाः कौरव्या येन। दु:शासनस्य असृजा रक्तेन] क्षीबो मत्तः। भङ्क्ता भङ्गकर्ता। [अञ्चति पूजयति। नमस्करोतीत्यर्थः] ॥२८॥

धृतराष्ट्रः—दुरात्मन्वृकोदर, न खल्विदं भवतैव केवलं सपत्नानामपकृतम्। यावत्क्षत्र तावत्समरविजयिनो जिता हताश्च वीराः। तत्किमेवं विकत्थनाभिरस्मानुद्वेजयसि।

भीमः—तात, अलं मन्युना।

कृष्टा केशेषु कृष्णा तव सदसि वधूः पाण्डवानां नृपैर्यैः
सर्वे ते क्रोधवह्नौ कृतशलभकुलावज्ञय येन दग्धाः।
एतस्माच्छ्रावयेऽहं न खलु भुजबलश्लाघया नापि दर्पा-
त्पुत्रैः पौत्रैश्च कर्मण्यतिगुरुणि कृते तात साक्षी त्वमेव॥२९॥

दुर्योधनः—अरे रे मरुत्तनय, किमेवं वृद्धस्य राज्ञः पुरतो निन्दितव्यमात्मकर्म श्लाघसे। अपि च—

कृष्टा केशेषु भार्या तव तव च पशोस्तस्य राज्ञस्तयोर्वा
प्रत्यक्षं भूपतीनां मम भुवनपतेराज्ञया द्यूतदासी।
अस्मिन्वैरानुबन्धे वद किमपकृतं तैर्हता ये नरेन्द्रा
बाह्वोर्वीर्यातिरेकद्रविणगुरुमदं मामजित्वैव दर्पः॥३०॥

भीमः दुरात्मन्, एष न भवसि। (इति सक्रोधमुत्थाय हन्तुमिच्छति)

धृतराष्ट्रः—(धृत्वा उपवेशयति)

भीमः—(क्रोधं नाटयति)

अर्जुनः—आर्य प्रसीद। किमत्र क्रोधेन।

अपकृतमपकारः कृतः। वीरा जयिनो हताश्च भवन्तीति क्षत्रधर्मोऽयम्। विकत्थनोपहासः [आत्मश्लाघा]।

कृष्टेति। पुरः पाण्डवानामेव। पाण्डवानां वधूः कृष्णा। [कृता या शलभकुलसम्बन्धिनी अवज्ञा तया येन यस्माद् दग्धाः।] कृशं यच्छलभकुलं तद्वदवज्ञयापमानेनेत्यर्थः। तेनाहं त्वां श्रावये। खलु निश्चये। भुजबलश्लाघया श्रावये। नापि दर्पाच्छ्रावये॥२९॥

धृतराष्ट्र—दुष्ट वृकोदर, यह शत्रुओं का अपकार केवल तूने ही नहीं किया है। जहाँ भी क्षत्रिय होते हैं, वही समर में विजेता और हारे हुए तथा मारे हुए वीर होते हैं। इसलिये क्यों इस प्रकार आत्म-श्लाघा से हमें दुःखी कर रहा है?

भीम—तात, क्रोध न कीजिये।

क्योंकि आपकी सभा में जिन राजाओं ने पाण्डवों की पत्नी कृष्णा द्रौपदी के केश खींचे थे, वे सब पतङ्गों के कुल के समान की गई उपेक्षा के साथ क्रोधरूपी अग्नि में जला दिये हैं, इसलिए मैं आपको सुना रहा हूँ, अपने बाहु-बल की प्रशंसा के कारण या अभिमान के कारण नहीं। हे तात, पुत्र और पौत्रों द्वारा किये गये महान् कार्य के आप ही साक्षी हैं ॥२९॥

दुर्योधन—अरे मरुत्-पुत्र (भीम), इस तरह वृद्ध राजा के सामने अपने निन्दनीय कर्म की प्रशंसा क्यों कर रहा है? और भी,

मुझ जगदधिपति की आज्ञा से राजाओं के सामने (मेरी) जुए में (जीती गई) दासी, तेरी, तुझ पशु की, उस राजा की और उन दोनों की पत्नी केश पकड़कर खींची गई थी; बता इस वैर के प्रसङ्ग में जो राजा मारे गये हैं, उन्होंने क्या अपकार किया था? भुजाओं के बलातिशय-रूप धन के महान् मद वाले मुझ (दुर्योधन) को बिना जीते ही (वृथा) अभिमान कर रहे हो? ॥३०॥

आह! दुष्ट (ले, अब) तू न रहेगा। (यह कहकर क्रोध से उठकर मारना चाहता है)।

धृतराष्ट्र—(पकड़कर बैठाता है)।

भीम—(क्रोध का नाट्य करता है)।

अर्जुन—आर्य, प्रसन्न हूजिये। इसमें क्रोध से क्या?

कृष्टेति। तव भीमस्य। तव चार्जुनस्य। तस्य राज्ञो युधिष्ठिरस्य। तयोर्नकुलसहदेवयोः एतेषां प्रत्यक्षं भूपतीनां च प्रत्यक्षम्। अनुबन्धे प्रकरणे। ये नरेन्द्रा हतास्तैः किमपकृतमित्यन्वयः। [बाह्वोः वीर्यस्यातिरेकः अतिशयः एव द्रविणं धनं तेन गुरुर्महान् मदो यस्य तं माम्। अजित्वैव दर्पः भ्रियते किमिति शेषः।] ॥३०॥

अप्रियाणि करोत्येष वाचा शक्तो न कर्मणा ।
हतभ्रातृशतो दुःखी प्रलापैरस्य का व्यथा ॥३१॥

भीमः—अरे रे भरतकुलकलङ्क,

अत्रैव किं न विशसेयमहं भवन्तं
दुःशासनानुगमनाय कटुप्रलापिन् ।
विघ्नं गुरू न कुरुतो यदि मद्गदाग्र-
निर्भिद्यमानरणितास्थनि ते शरीरे ॥३२॥

अन्यच्च मूढ,

शोकैः स्त्रीवन्नयनसलिलं यत्परित्याजितोऽसि
भ्रातुर्वक्षःस्थलविघटने यच्च साक्षीकृतोऽसि ।
आसीदेतत्तव कुनृपतेः कारणं जीवितस्य
क्रुद्धे युष्मत्कुलकमलिनीकुञ्जरे भीमसेने ॥३३॥

दुर्योधनः—दुरात्मन्, भरतकुलापसद, द्यूतदास पाण्डवपशो, नाहं भवानिव विकत्थनाप्रगल्भः । किं तु

द्रक्ष्यन्ति न चिरात्सुप्तं बान्धवास्त्वां रणाङ्गणे ।
मद्गदाभिन्नवक्षोऽस्थिवेणिकाभीमभूषणम् ॥३४॥

अप्रियाणीति । एष वाचाऽप्रियाणि करोति । कर्मणा न शक्तोऽसमर्थ इत्यन्वयः । यद्वा । अशक्त एव वाचा अप्रियाणि करोति न कर्मणेत्यन्वयः । प्रलापोऽनर्थकं वचः इत्यमरः ॥३१॥

अत्रैवेति । अहं भवन्तं किमत्रैव न विशसेयं न विनाशयामि । यदि ते शरीरे गुरू विघ्नं न कुरुत इत्यन्वयः । विशसेयमिति शसु हिंसायाम् लिङि उत्तमपुरुषैकवचने रूपम् । हे कटुप्रलापिन् । कीदृशे शरीरे । मत्कराग्रनिर्भिद्यमानान्यत एव रणितानि शब्दितान्यस्थीनि यत्र तादृशे । कीकसं कुल्यमस्थि च इत्यमरः । [मद्गदाग्र० इति पाठे मम गदाया अग्रैः कोटिभिः] ॥३२॥

कार्य द्वारा (अप्रिय करने में) अशक्त, दुःखी हुआ यह, जिसके सौ भाई मर गये हैं, वाणी से अप्रिय कर रहा है। उसके प्रलाप (निरर्थक वचन) से पीड़ा कैसी ? ॥३१॥

भीम—अरे, ओ भरत कुल के कलङ्क,

हे कटु-भाषिन्, यदि मेरी गदा की कोटि से विदीर्ण होते हुए, (अतः) शब्द करती हुई हड्डियों वाले तेरे शरीर के बीच में माता-पिता विघ्न न डालें, तो क्या मैं दुःशासन का अनुसरण करने के लिए आपको यहीं न नष्ट कर दूं ? ॥३२॥

और भी, मूर्ख,

तुम्हारे कुल-रूपी कमलिनी के लिये हाथी के समान- (मुझ) भीमसेन के क्रुद्ध होने पर भी तुझ दुष्ट राजा के जीवित रहने का कारण यह था कि शोक के कारण तुझसे स्त्रियों के समान आंसू बहवाये और (तेरे) भाई के वक्ष-स्थल के विदीर्ण करने में तुझे साक्षी बनाया ॥३३॥

दुर्योधन—दुष्टात्मा, भरत-कुल में नीच, (मेरे) जुए में (जीते गये) दास, पशु-तुल्य पाण्डव, मैं आपके समान आत्म-श्लाघा करने में धृष्ट नहीं हूँ। किन्तु—

(तेरे) बान्धव तुझे, मेरी गदा से टूटी हुई वक्ष-स्थल की वेणी-तुल्य हड्डियाँ ही जिसके भयङ्कर आभूषण हैं युद्ध-क्षेत्र में शीघ्र ही सोया हुआ देखेंगे ॥३४॥

शोकैरिति। शोकैर्यथा स्त्री रोदिति तथा यत्त्वं नयनसलिलं त्याजितोऽसि। शोकम् इति पाठे नेत्रजलैर्यथा स्त्री शोकं त्याज्यते तथा त्वमपि त्याजित इत्यर्थः। यथा स्त्री रुदित्वा शोकं त्यजति तथा त्वयापि कृतमिति भावः। भीमसेने क्रुद्धे सति तव कुनृपस्य जीवितस्यैतत्कारणमासीद्यद्रोदनं भ्रातृवधदर्शनं च नाम। अभयं चेद् वृत्तं तदा मया त्वमपि घातयितव्य इतिभावः ॥३३॥

द्रक्ष्यन्तीति। न चिरादचिरम्। श्रेणिका परम्परा। वेणिका इति पाठे वेणिका प्रवाहः। वेणी तु केशवेशे स्यात्प्रवाहेऽपि निगद्यते। इति धरणिः। अत एव त्रिवेणीति। कणिका इति पाठस्तु सुगम एव। सैव भयानकालंकरणं यत्र तम्। नृणां पुर इति शेषः ॥३४॥

भीमः—(विहस्य) यद्येवं नाश्रद्धेयो भवान् । तथापि प्रत्यासन्नमेव कथयामि ।

पीनाभ्यां मद्भुजाभ्यां भ्रमितगुरुगदाघातसंचूर्णितोरोः
क्रूरस्याधाय पादं तव शिरसि नृणां पश्यतां श्वः प्रभाते ।
त्वन्मुख्यभ्रातृचक्रोद्दलनगलदसृक्चन्दनेनानखाग्रं
स्त्यानेनार्द्रेण चाक्तः स्वयमनुभविता भूषणं भीममस्मि ॥३५॥

(नेपथ्ये)

भो भो भीमसेनार्जुनौ एव खलु निहताशेषारातिचक्र आक्रान्तपरशुरामाभिरामयशाः प्रतापतापितदिङ्मण्डलस्थापितस्वजनः श्रीमानजातशत्रुर्देवो युधिष्ठिरः समाज्ञापयति ।

उभौ—किमाज्ञापयत्यार्यः ।

(पुनर्नेपथ्ये)

कुर्वन्त्वाप्ता हतानां रणशिरसि जना वह्निसाद्देहभारा-
नश्रून्मिश्रं कथंचिद्ददतु जलममी बान्धवा बान्धवेभ्यः ।
मार्गन्तां ज्ञातिदेहान्हतनरगहने खण्डितान्गृध्रकङ्कै-
रस्तं भास्वान्प्रयातः सहरिपुभिरयं संह्रियन्तां बलानि ॥३६॥

उभौ—यदाज्ञापयत्यार्यः । (इति निष्क्रान्तौ)

पीनाभ्यामिति । श्वः । ह्यो गतेऽनागतेऽह्नि श्वः इत्यमरः । [प्रभाते नृणां पश्यतां पीनाभ्यां पुष्टाभ्याम् । ओप्यायी वृद्धौ इत्यतो गत्यर्थस्यादिना क्तः ओदितश्च इति नत्वं प्यायः पी इति च पीभावः । मद्भुजाभ्यां भ्रमिता या गुरुः गदा तस्य आघातेन संचूर्णिते ऊरू यस्य तस्य क्रूरस्य तव शिरसि पादमाधाय । स्त्यानेन घनीभूतेन । स्त्यै ष्टयै शब्दसंघातयोः इत्यतो निष्ठायां संयोगादेरातोधातोर्यण्वतः इति निष्ठातस्य नः । आर्द्रेण च] त्वं मुख्यो यत्र तादृशं यद्भ्रातृचक्रं तस्योद्दलनेन खण्डनेन गलदसृग्वधवसृग्रक्तं तदेव चन्दनं तेन । मुख्येत्यनेन तस्यापि वधः सूचितः । तथा च त्वदादिसर्वभ्रातृवध इति भावः । आनखाग्रं नखाग्रपर्यन्तमक्तः स्वयं भीमं भूषणमनुभवितास्मि ॥३५॥

भीमसेन—(जोर से हँसकर) यदि ऐसा है तो आप पर अविश्वास नहीं किया जा सकता है। फिर, भी जो बिल्कुल समीप में होने वाला है, उसे कहता हूँ—

कल प्रातः समय राजाओं के देखते-देखते (अपनी) स्थूल भुजाओं में घुमाई गई भारी गदा के प्रहारों से चूर्ण किये गये वक्षःस्थल वाले तुझ क्रूर के सिर पर पैर रखकर, गाढ़े और ताजे, तेरे भाइयों के तू जिनमें मुख्य है-समूह के कुचलने से बहते हुए रुधिर-रूपी चन्दन से नख के अग्रभाग तक लिप्त होकर स्वयं भयङ्कर आभूषण (प्रसाधन) का उपभोग करूँगा ॥३५॥

(नेपथ्य में)

हे हे भीम और अर्जुन, यह श्रीमान् महाराज युधिष्ठिर, जिसने समस्त शत्रु-समूह को नष्ट कर दिया है, जिसने परशुराम के मनोज्ञ यश को अभिभूत कर दिया है, और जिसने अपने प्रताप से तप ये (वश में किये) दिशा भागों में स्वजनों को स्थापित कर दिया है, आज्ञा देते हैं।

दोनों—आर्य क्या आज्ञा दे रहे हैं?

(फिर नेपथ्य में)

सम्बन्धी लोग युद्ध के मोर्चे पर मारे गये (वीरों) के शवों के समूह का अग्नि-दाह करें; यह सम्बन्धी जन अपने सम्बन्धियों को किसी प्रकार अश्रु मिश्रित जल देवें; (लोग) मरे हुए मनुष्यों से भरे हुये (युद्ध-स्थल) में (अपने) बन्धुओं के शरीरों को खोज लेवें; यह सूर्य शत्रुओं के साथ अस्त को प्राप्त हो गया है, (इसलिये) सेनायें वापस लौटा ली जायें ॥३६॥

दोनों—आर्य जैसी आज्ञा दें। (यह कहकर दोनों निकल जाते हैं)।

कुर्वन्त्विति। आप्ता बान्धवादयः। वह्निसात्कार्त्स्न्येन वह्निदेयान्। सातिः कार्त्स्न्ये इति देयार्थे सातिप्रत्ययः। भारान्संघान्। उन्मिश्रं युक्तम्। मार्गन्तां प्रार्थयन्ताम्। जना इति शेषः। रणशिरसि गहने व्याप्ते। असौ सूर्यो मम रिपुभिः सहास्तं गतः। यथा शत्रवोऽस्तं गतास्तथा रविरपीति भावः। अत्र यद्यपि शत्रुपक्षेऽस्तगमनं विनाशः सूर्यपक्षेऽदृश्यत्वं तथापि शब्दसाम्यात्प्रयोगः। यद्वा उभयत्राप्यस्तगमनमदृश्यत्वमात्रं विवक्षितम्। तच्चैकत्र मरणेनान्यत्रान्यगमनेनेत्यन्यदेतत्। संह्रियन्तामुपसंह्रियन्ताम् ॥३६॥

(नेपथ्ये)

अरे रे गाण्डीवाकर्षणबाहुशालिन् अर्जुन, अर्जुन, क्वेदानीं गम्यते ।

कर्णक्रोधेन युष्मद्विजयि धनुरिदं त्यक्तमेतान्यहानि
प्रौढं विक्रान्तमासीद्वन इव भवतां शूरशून्ये रणेऽस्मिन् ।
स्पर्शं स्मृत्वोत्तमाङ्गे पितुरनवजितन्यस्तहेतेरुपेतः
कल्पाग्निः पाण्डवानां द्रुपदसुतचमूघस्मरो द्रौणिरस्मि ॥३७॥

धृतराष्ट्रः—(आकर्ण्य सहर्षम्) वत्स दुर्योधन, द्रोणवधपरिभवोद्दीपितक्रोधपावकः पितुरपि समधिकबलः शिक्षावानमरोपमश्चायमश्वत्थामा प्राप्तः । तत्प्रत्युपगमनेन तावदयं संभाव्यतां वीरः ।

गान्धारी—जात, प्रत्युद्गच्छैनं महाभागम् ।

[जाद पच्चुग्गच्छ एदं महाभाअम् ।]

दुर्योधनः—तात, अम्ब, किमनेनाङ्गराजवधाशंसिना वृथायौवनशस्त्रबलभरेण ।

धृतराष्ट्रः—वत्स, न खल्वस्मिन्काले पराक्रमवतामेवंविधानां वाङ्मात्रेणापि विरागमुत्पादयितुमर्हसि ।

(प्रविश्य)

अश्वत्थामा—विजयतां कौरवाधिपतिः ।

दुर्योधनः—(उत्थाय) गुरुपुत्र, इत आस्यताम् । (इत्युपवेशयति)

अश्वत्थामा—राजन्दुर्योधन,

कर्णेति । [युष्मान् विजेतुं शीलमस्य तद् युष्मद्विजयि इदं धनुः कर्णक्रोधेन एतानि अहानि त्यक्तम् ।] अहानीत्यत्र कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे इति द्वितीया । तेनाहानि व्याप्येत्यर्थः । अस्मिन् रणे भवतां [प्रौढं स्फीतमिति परिहासोक्तिः ।] विक्रान्तं पराक्रम आसीत् । विक्रान्तमिति भावे क्तः कीदृशे । वन इव शूरशून्ये । [अधुना तु न अवजितः अनवजितः चासौ न्यस्ता हेतयो येन स न्यस्तहेतिश्च तस्यानवजितन्यस्तहेतेः पितुः उत्तमाङ्गे स्पर्शं स्मृत्वा उपेतः अहं पाण्डवानां कल्पाग्निः द्रुपदसुतस्य धृष्टद्युम्नस्य घस्मरः नाशकरः । गृध यदः

(नेपथ्ये में)

अरे गाण्डीव को खीचने वाली भुजाओं वाले अर्जुन, ओ अर्जुन, अब कहाँ जा रहा है ?

कर्ण के प्रति क्रोध के कारण मैंने अपना यह तुमको जीतने वाला धनुष इन दिनों छोड़ दिया था, (इसलिये इन दिनो) वीरों से शून्य इस रण में वन के समान तुम्हारा महान् पराक्रम होता रहा। (अब) कभी पराजित न हुए तथा अस्त्र-त्याग किये हुए पिता के सिर पर किये गये स्पर्श को याद करके पाण्डवों के लिये प्रलयाग्नि के समान और द्रुपद के पुत्र की सेनाओ का भक्षक मैं द्रोण का पुत्र (अश्वत्थामा) आ पहुँचा हूँ ॥३७॥

धृतराष्ट्र—(सुनकर हर्ष के साथ) वत्स दुर्योधन, द्रोण के वध के अपमान से प्रचण्ड क्रोधरूपी अग्नि वाला, पिता से भी अधिक बलवान्, सुशिक्षित और देव-तुल्य यह अश्वत्थामा आया है। इसलिए आप अब उठकर इसका सत्कार करें।

गान्धारी—पुत्र, इस महानुभाव का उठकर सत्कार करो।

दुर्योधन—पिताजी, माताजी, अङ्गराज (कर्ण) के वध की कामना करने वाले तथा व्यर्थ ही यौवन, शस्त्र और बल के भार को धारण करने वाले इस (अश्वत्थामा) से क्या लाभ ?

धृतराष्ट्र—पुत्र, इस समय ऐसे पराक्रमी वीरों को वाणी-मात्र से भी अप्रसन्न करना उचित नहीं है।

(प्रवेश करके)

अश्वत्थामा—कौरवों के अधीश्वर की जय हो।

दुर्योधन—(उठकर) आचार्य-पुत्र, इधर बैठिये (यह कहकर बैठाता है)।

अश्वत्थामा—राजा दुर्योधन,

घमरच् इति घसेः क्मरच्। द्रौणिः अस्मि।] द्रौणिर्द्रोणस्यापत्यम्। अत इञ् प्रत्ययः। किं कृत्वा। पितुरुत्तमाङ्गे स्पर्शं स्मृत्वा। अहं कीदृशः। अनभ्रजितो न केनापि जितः हेतिरस्त्रम्। कल्पः प्रलयः। घस्मरो नाशकः ॥३७॥

[संभाव्यतां सम्मान्यताम्।] इत आस्यतामिहोपविशतु ॥

कर्णेन कर्णसुभगं बहु यत्तदुक्त्वा
यत्सङ्गरेषु विहितं विदितं त्वया तत्।
द्रौणिस्त्वधिज्यधनुरापतितोऽभ्यमित्र-
मेषोऽधुना त्यज नृप प्रतिकारचिन्ताम् ॥३८॥

दुर्योधनः—(साभ्यसूयम्) आचार्यपुत्र,
अवसानेऽङ्गराजस्य योद्धव्यं भवता किल।
ममाप्यन्तं प्रतीक्षस्व कः कर्णः कः सुयोधनः ॥३९॥

अश्वत्थामा—(स्वगतम्) कथमद्यापि स एव कर्णपक्षपातः, अस्मासु च परिभवः। (प्रकाशम्) राजन्कौरवेश्वर, एवं भवतु। (इति निष्क्रान्तः)

धृतराष्ट्रः—वत्स, क एष ते व्यामोहो यदस्मिन्नपि काले एवंविधस्य महाभागस्याश्वत्थाम्नो वाक्पारुष्येणापरागमुत्पादयसि।

दुर्योधनः—किमस्याप्रियमनृतं च मयोक्तम्। किं वा नेदं क्रोधस्थानम्। पश्य—

अकलितमहिमानं क्षत्रियैरात्तचापैः
समरशिरसि युष्मद्भाग्यदोषाद्विपन्नम्।
परिवदति समक्षं मित्रमङ्गाधिराजं
मम खलु कथयास्मिन्को विशेषोऽर्जुने वा ॥४०॥

धृतराष्ट्रः—वत्स, त्वयापि कोऽत्र दोषः। अवसानमिदानीं भरतकुलस्य। संजय, किमिदानीं करोमि मन्दभाग्यः (विचिन्त्य) भवत्वेवं तावत्। संजय, मद्वचनाद्

कर्णेनेति। [कर्णेन यत् कर्णयोः सुभगं तद् बहु उक्त्वा सङ्गरेषु यद्विहितं तत्त्वया विदितम्। हे नृप एष द्रौणिः अधिरूढा ज्या यस्य तदधिज्यं धनुर्यस्य सः अधिज्यधनुः। समासान्तविधेरनित्यत्वान्न अनङ्। अधुना अभ्यमित्रं अमित्राणामभिमुखम्। लक्षणेनाभिप्रती इत्यव्ययीभावः।] अराति सद्यः हत्वाधुना पतित आगतः। अतो हे नृप प्रतिकारचिन्तां त्यज। मयैव सर्वत्र प्रतीकारः कर्तव्य इति भावः ॥३८॥

कर्ण ने कानों को अच्छी लगने वाली बहुत-सी (असत्) बातें कहकर युद्ध में जो कुछ किया है, वह आपको विदित है। डोरी चढ़ी हुई धनुष वाला, यह द्रोण-पुत्र (अश्वत्थामा) शत्रु के सम्मुख आ गया है। हे राजा, अब प्रतिकार की चिन्ता छोड़ दो ॥३८॥

दुर्योधन—(चिढ़कर) आचार्य-पुत्र,

आपको तो कर्ण के समाप्त हो जाने पर ही युद्ध करना है, (अब) मेरी भी मृत्यु की प्रतीक्षा कर लो। कर्ण क्या? सुयोधन क्या? ॥३९॥

अश्वत्थामा—(मन में) क्या? आज भी वही कर्ण के प्रति पक्षपात और हमारे प्रति तिरस्कार। (प्रकट में) कौरवों के अधिपति राजा, ऐसा ही सही। (यह कहकर बाहर चला जाता है)।

धृतराष्ट्र—पुत्र, यह तेरा कैसा मति-विभ्रम है कि इस समय भी ऐसे तेजस्वी अश्वत्थामा में वाणी की कठोरता से विराग उत्पन्न कर रहे हो?

दुर्योधन—मैंने इससे कटु और असत्य क्या कहा है? अथवा क्या यह क्रोध का कारण नहीं है? देखिये—

धनुर्धारी क्षत्रिय भी जिसकी महिमा न जान सके; जो तुम्हारे भाग्य के दोष से युद्ध में मर गया, अङ्गदेश के अधिपति उस मित्र की (मेरे) सामने निन्दा करता है; तब बतलाइये, मेरे लिए इसमें या अर्जुन में क्या भेद है? ॥४०॥

धृतराष्ट्र—वत्स, इसमें तेरा भी क्या दोष है? अब भरत-कुल का अन्त (आ पहुँचा)। संजय, इस समय मैं अभागा क्या करूँ? (सोचकर) अच्छा,

---

अवसान इति। किल निश्चये। कः कर्ण इति। तथा च कर्णसुयोधनयोर्न विशेष इति भावः ॥३९॥

अकलितेति। [आत्तः चापः यैस्ते आत्तचापास्तैः क्षत्रियैः अकलितः न यथार्थतया ज्ञात महिमा यस्य तं युष्मद्भाग्यदोषात् न तु असामर्थ्यादकौशलाद्वा। समरशिरसि विपन्नं नष्टं मृतमित्यर्थः। मम मित्रमङ्गाधिराजं कर्णं समक्षं प्रत्यक्षं परिवदति निन्दति। अतः] अस्मिन्नश्वत्थामन्यर्जुने वा मम खलु को विशेषः। हे तात तं विशेषं कथय। खलु निश्चयेन। तयोः द्वयोः न भेद इति भावः ॥४०॥

ब्रूहि भारद्वाजमश्वत्थामानम् ।

स्मरति न भवान्पीतं स्तन्यं विभज्य सहामुना
मम च मृदितं क्षौमं बाल्ये त्वदङ्गविवर्तनैः ।
अनुजनिधनस्फीताच्छोकादतिप्रणयाच्च य-
द्वचनविकृतिष्वस्य क्रोधो मुधा क्रियते त्वया ॥४१॥

संजयः—यदाज्ञापयति तातः (इत्युत्तिष्ठति) ।

धृतराष्ट्रः—अपि चेदमन्यस्त्वया वक्तव्यम् ।

यन्मोचितस्तव पिता वितथेन शस्त्रं
यत्तादृशः परिभवः स तथाविधोऽभूत् ।
एतद्विचिन्त्य बलमात्मनि पौरुषं च
दुर्योधनोक्तमपहाय विधास्यसीति ॥४२॥

संजयः—यदाज्ञापयति तातः । (इति निष्क्रान्तः)

दुर्योधनः—सूत, साङ्ग्रामिकं मे रथमुपकल्पय ।

सूतः—यदाज्ञापयत्यायुष्मान् । (इति निष्क्रान्तः)

धृतराष्ट्रः—गान्धारि, इतो वयं मद्राधिपतेः शल्यस्य शिबिरमेव गच्छावः । वत्स, त्वमप्येवं कुरु ।

(इति परिक्रम्य निष्क्रान्ताः सर्वे)

* इति पञ्चमोऽङ्कः *

स्मरतीति [भवानमुना दुर्योधनेन सह विभज्य पीतं स्तनयोर्भवं स्तन्यं गान्धार्याः स्तनपयः । शरीरावयवाच्च इति यत् । तथा च बाल्ये तवाङ्गस्य विवर्तनैः] त्वदङ्गविवर्तनैस्त्वच्छरीरपरिवर्तनैः । मृदितं [लुलितं] मम क्षौमं पट्टवस्त्रं न स्मरति किम् । यदस्य सुयोधनस्य [अनुजानां वधेन स्फीतात् वृद्धिं गतात् । स्फायी वृद्धौ इत्यतः स्फायः स्फी निष्ठायामिति स्फीभावः ।] कनिष्ठवद्दीप्तात् शोकादतिप्रणयादतिप्रश्रयाच्च तद्वचनविकृतिषु सतीषु त्वया मुधा विफलं क्रोधः क्रियते । न कर्तुमर्हसीत्यर्थः ॥४१॥

ऐसा करूँ। संजय, मेरी ओर से भारद्वाज-कुलोत्पन्न अश्वत्थामा से कहो—

क्या आपको इस (दुर्योधन) के साथ बाँट कर पिया गया (इसकी माता का) दूध और बाल्यावस्था में अपने अङ्गों की लोट-पोट से कुचला हुआ मेरा रेशमी वस्त्र याद नहीं है, जो तुम छोटे भाइयों की मृत्यु से बढ़े हुए शोक और (कर्ण के प्रति) अत्यधिक प्रेम के कारण कहे गये इसके अनुचित वचनों पर व्यर्थ ही क्रोध कर रहे हो ॥४१॥

संजय—तात, जो आज्ञा दें। (यह कहकर उठता है)।

धृतराष्ट्र—और तुम यह और कहना—

जो असत्य द्वारा तुम्हारे पिता से शस्त्र छुड़वा दिया था और जो तुम्हारे पिता का वह उस प्रकार का इतना बड़ा अपमान हुआ था, इसका तथा अपने बल और पराक्रम का विचार करके आप दुर्योधन के कहे की उपेक्षा करके अवश्य ही (कुछ) करेंगे।

संजय—पिता की जैसी आज्ञा हो। (यह कहकर बाहर जाता है)।

दुर्योधन—सूत, हमारा युद्ध का रथ तैयार करो।

सूत—आयुष्मान् जो आज्ञा दें। (यह कहकर निकल जाता है)।

धृतराष्ट्र—गान्धारी, हम यहाँ से मद्र देश के स्वामी शल्य के शिविर में ही चलते हैं। पुत्र, तुम भी ऐसा ही करो।

(इस प्रकार घूमकर सब निकल जाते हैं)

* पञ्चम अङ्क समाप्त *

यदिति। [यत् तव पिता पाण्डवैः वितथेन असत्येन। गजे मृते त्वं मृत इति भाषणेन शस्त्रं मोचितस्त्याजितः। यत् च तादृश. तथास्थितस्य तथाविधः परिभवः अभूत् एतद् विचिन्त्य आत्मनि बलं पौरुषं च विचिन्त्य। यद्वा। तादृशः प्रसिद्धः। तथाविधस्तत्प्रकारकः। एतद्विचिन्त्यात्मनि बलं सामर्थ्यं पौरुषं च विधास्यसीति वक्तव्यमित्यन्वयः। किं कृत्वा। दुर्योधनोक्तं त्यक्त्वा। केचित्तु विधास्यसीत्यत्र प्रतीकारमिति शेषः इत्यूचुः ॥४२॥

असूत यं रत्नधरो गुणीशो नानागुणाढ्या दमयन्तिकापि।
जगद्धरं तस्य कृतौ प्रयातो ग्रन्थे मनोहारिणि पञ्चमोऽङ्कः॥

* इति पञ्चमोऽङ्कः *

षष्ठोऽङ्कः

(ततः प्रविशत्यासनस्थो युधिष्ठिरो द्रौपदी चेटी पुरुषश्च)

युधिष्ठिरः—(विचिन्त्य निश्वस्य च)

तीर्णे भीष्ममहोदधौ कथमपि द्रोणानले निर्वृते
कर्णाशीविषभोगिनि प्रशमिते शल्ये च याते दिवम् ।
भीमेन प्रियसाहसेन रभसात्स्वल्पावशेषे जये
सर्वे जीवितसंशयं वयममी वाचा समारोपिताः ॥१॥

द्रौपदी—(सवाष्पम् महाराज, पाञ्चाल्येति किं न भणितम् ।)
[महाराअ पञ्चालिए त्ति किं ण भणिदं ।]

युधिष्ठिरः—कृष्णे, ननु मया । (पुरुषमवलोक्य) बुधक,

पुरुषः—देव, आज्ञापय ।

युधिष्ठिरः—उच्यतां सहदेवः—क्रुद्धस्य वृकोदरस्यापर्युषितदारुणां प्रतिज्ञामुपलभ्य प्रनष्टस्य मानिनः कौरवराजस्य पदवीमन्वेष्टुमतिनिपुणमतयस्तेषु तेषु स्थानेषु परमार्थाभिज्ञाश्चराः सुसचिवाश्च भक्तिमन्त पटुपटहरवव्यक्तघोषणाः

तीर्णे इति । [भीष्म एव महोदधिस्तस्मिन् कथमपि महता प्रयासेन] तीर्णेऽतिक्रान्ते । द्रोण एव अनलस्तस्मिन् निर्वृते उपशान्ते । कर्ण एव आशी सर्पदंष्ट्रा तत्र विषं यस्य तादृशो यो भोगी सर्पस्तस्मिन् । आशीराश्यहिदंष्ट्रायाम् इति शब्दभेदः । भोगः सुखे स्त्र्यादिभृतावहेश्च फणकाययोः । इति विश्वः । यद्यप्यत्रैकपदेनैवापरं गतार्थं तथापि विषोल्बणविषधरज्ञापनार्थं तदुक्तम् । यद्वा । आश्यां विषं यत्र भोगे शरीरे सोऽस्यास्तीत्याशीविषभोगी विषधरः इति व्युत्पत्तिः । न चात्रापि गतार्थता । विशिष्टनाम्नो विवक्षाया अपर्यनुयोज्यत्वादिति दिक् । दिवं स्वर्गम् । स्वल्पावशेषेऽति जये सति [प्रियं साहसं यस्य स प्रियसाहसस्तेन] भीमनाम्ना सर्वे वयं रभसात् वाचा प्रतिज्ञारूपया जीवितसंशयं

षष्ठ अङ्क

(तत्पश्चात् आसन पर बैठा हुआ युधिष्ठिर, द्रौपदी, चेटी और पुरुष प्रवेश करता है।)

युधिष्ठिर—(सोचकर और लम्बा सांस लेकर)।

किसी प्रकार भीष्म-रूपी महासागर को पार कर लेने पर, द्रोणरूपी अग्नि के शान्त हो जाने पर, कर्णरूपी विषैले सांप के दमन कर दिये जाने पर और शल्य के स्वर्ग चले जाने पर विजय के स्वल्प ही शेष रह जाने पर साहस-प्रिय भीम ने आवेश के कारण अपने वचन से यह हम सबके प्राण संशय में डाल दिये हैं ॥१॥

द्रौपदी—(आंसुओं के साथ) महाराज, पाञ्चाली ने (संशय में डाला है), यह क्यों नहीं कहा ?

युधिष्ठिर—कृष्णा, निश्चय से मैंने ही (संशय में डाला है)। (पुरुष को देखकर) बुधक।

पुरुष—महाराज, आज्ञा कीजिये।

युधिष्ठिर—सहदेव से कहो—क्रुद्ध हुए भीम की आज ही पूर्ण होने वाली भयङ्कर प्रतिज्ञा को जानकर छिपे हुए अभिमानी कौरवाधिपति के मार्ग का पता लगाने के लिए तीव्र बुद्धि वाले तथा भिन्न-भिन्न स्थानों की वस्तुस्थिति को जानने वाले, (हमारे प्रति) भक्ति रखने वाले, तीव्र दुन्दुभि के शब्द से घोषणा करने वाले, सुयोधन की गति-विधि को जानने वाले और धन एवं

समारोपिता इत्यन्वय. ॥१॥

अपर्युषितां नान्यदिनगामिनीम्। प्रनष्टस्य गुप्तस्य। पटुपटहघोषणा. निपुणं पटहं वादयन्तः। [पटुः यः पटहस्य दुन्दुभिविशेषस्य रवस्तेन व्यक्ता घोषणा येषां ते तथोक्ताः।] प्रतिश्रुता देयत्वेन प्रतिज्ञाता धनेन पूजया च प्रत्युपक्रिया येषां ते। यद्वा धनं पूजा बहुमानश्च प्रत्युपक्रिया च येषां ते तथोक्ताः। समन्तपञ्चकं कुरुक्षेत्रासन्नवर्ती देशभेदः।

सुयोधनसंचारवेदिन प्रतिश्रुतधनपूजाप्रत्युपक्रियाश्चरन्तु समन्तात्समन्तपञ्चकम्। अपि च।

पङ्के वा सैकते वा सुनिभृतपदवीवेदिनो यान्तु दाशाः
कुञ्जेषु क्षुण्णवीरुन्निचयपरिचया वल्लवाः संचरन्तु।
व्याधा व्याघ्राटवीषु स्वपरपदविदो ये च रन्ध्रेष्वभिज्ञा
ये सिद्धव्यञ्जना वा प्रतिमुनिनिलयं ते च चाराश्चरन्तु ॥२॥

पुरुषः—यथाज्ञापयति देवः।

युधिष्ठिरः—तिष्ठ। एवं च वक्तव्यः सहदेवः।

शय्या रहः शङ्कितमालपन्त. सुप्ता रुगार्ता मदिराविधेयाः।
त्रासो मृगाणां वयसां विरावो नृपाङ्कपादप्रतिमाश्च यत्र ॥३॥

पुरुषः—यथाज्ञापयति देवः। (इति निष्क्रम्य पुनः प्रविश्य सहर्षम्) देव, पाञ्चालकः प्राप्तः।

युधिष्ठिरः—त्वरितं प्रवेशय।

पुरुषः—(निष्क्रम्य पाञ्चालकेन सह प्रविश्य) एष देवः। उपसर्पतु पाञ्चालकः।

पङ्क इति। पङ्के कर्दमे [पङ्कमयदेशे इत्यर्थः। सैकते वालुकामयप्रदेशे वा। सिकताशर्कराभ्यामिरण् अत्वर्थे।] सुनिभृतामतिगूढां पदवीं पद्धतिं विदन्तीति वेदिनः दाशाः धीवराः यान्तु दुर्योधनान्वेषणायेति शेषः। कैवर्ते दाशधीवरौ इत्यमरः। कुञ्जेषु लतादिपिहितेषु स्थानेषु क्षुण्ण. क्षतः यः] वीरुन्निचयो लतासमस्तस्य परिचयो ज्ञानं येषां ते। वल्लवा गोपाः संचरन्तु। [ये व्याधाः स्वेषा परेषां च पदानि विदन्ति इति स्वपरपदविदः ये च रन्ध्रेषु गुहादिविषये अभिज्ञाः ते। व्याघ्रप्रचुरा अटव्यः व्याघ्राटव्यस्तासु। शाकपार्थिवा दिवत्समास.। चरन्तु। ये वा ये च चाराः सिद्धानां योगिना व्यञ्जनं येषां ते तथा। मुनिनिलये मुनिनिलये प्रतिमुनिनिलयं चरन्तु।] नागव्याघ्रप्रधाना अटव्यो वनानि। तासु श्वपचपुरविदश्चाण्डालपुरवेदिनः संचरन्तु। नागो हस्ती. निषादश्वपचावन्तेवासिचाण्डालपुक्कसाः। इत्यमरः। रन्ध्रेषु परच्छिद्रेषु।

सम्मान द्वारा प्रत्युपकार का वचन दिये गये गुप्तचर और योग्य मन्त्री समन्त-पञ्चक में चारों ओर घूमें।

और भी—

कीचड़ में या बालू के तट पर छिपे हुए मार्ग को जानने वाले धीवर जायें, कुचली हुई लताओं के समूह से परिचित ग्वाले कुञ्जों में जायें; अपने और पराये पद-चिह्नों को जानने वाले व्याध (शिकारी), जो कन्दराओं को भी भली-भाँति जानते हों, व्याघ्रों से व्याप्त अरण्यों में घूमें और जिन गुप्तचरों ने सिद्धों का वेष बनाया हुआ हो, वे प्रत्येक तपोवन में जायें ॥२॥

पुरुष—महाराज जैसी आज्ञा दें।

युधिष्ठिर—ठहरो। और सहदेव से यह कहना—

एकान्त में शङ्कासहित बात-चीत करते हुए, सोये हुए, रोग से पीडित और मद्य के वश में हुए (लोगों) की छान-बीन करनी चाहिये। जहाँ पशु भय-भीत हो रहे हों, जहाँ पक्षियों का कोलाहल हो और जहाँ राजा के लक्षणों से युक्त पैरों के चिह्न हों, (उन स्थानों की भी) छान-बीन करनी चाहिये ॥३॥

पुरुष—महाराज जो आज्ञा दें। (यह कहकर बाहर जाकर फिर प्रवेश करके हर्ष के साथ) महाराज, पाञ्चालक आया है।

युधिष्ठिर—शीघ्र अन्दर लाओ।

पुरुष—(बाहर जाकर पाञ्चालक के साथ प्रवेश करके) यह महाराज हैं। पाञ्चालक समीप जायें।

सिद्धव्यञ्जनाः। सिद्धपुरुषचिह्नवन्तः। चरा एव चाराः। प्रज्ञादित्वात्स्वार्थेऽण्। तथा च यत्र ये निपुणास्तत्र ते गच्छन्त्विति भावः ॥२॥

ज्ञेया इति। रहः एकान्ते, शङ्कित शङ्कास्पदमालपन्तो जना ज्ञेयाः। एवं सुप्ता ज्ञेयाः [रुजा आर्ता ज्ञेयाः मदिराया विधेया दासाः] मदिराविधेया मत्ताः। च ज्ञेयाः। [यत्र यस्मिन् स्थाने मृगाणां त्रासः भीतिः। तत्कृताः चेष्टा इत्यर्थः। यत्र वयसां विरावः। मानुषप्रवेशात्। स च मानुषः। कदाचिद् दुर्योधनः स्यादि-तिहेतोस्तदपि ज्ञेयम्।' नृपांको -राजचिह्नं मत्स्यादि यत्र पादप्रतिमायां ताश्च यत्र तानि स्थानानि ज्ञेयानीत्यन्वयः। वयः पक्षिणि बाल्ये च इति विश्वः। प्रतिमा प्रतिकृतिः ॥३॥

पाञ्चालकः—जयतु जयतु देवः। प्रियमावेदयामि महाराजाय देव्यै च।

युधिष्ठिरः—भद्र पाञ्चालक, कच्चिदासादिता तस्य दुरात्मनः कौरवाधमस्य पदवी।

पाञ्चालकः—देव, न केवलं पदवी। स एव दुरात्मा देवीकेशाम्बराकर्षण-महापातकप्रधानहेतुरुपलब्धः।

युधिष्ठिरः—साधु। भद्र, प्रियमावेदितम्। अथ दर्शनगोचरं गतः।

पाञ्चालकः—देव, समरगोचरं पृच्छ।

द्रौपदी—(सभयम्) कथं समरगोचरो वर्तते मे नाथः।

[कहं समरगोओ वट्टइ मे णाहो]

युधिष्ठिरः—(साशङ्कम्) सत्यं समरगोचरो मे वत्सः।

पाञ्चालकः—सत्यम्। किमन्यथा वक्ष्यते महाराजाय।

युधिष्ठिरः—

त्रस्तं विनापि विषयादुरुविक्रमस्य
चेतो विवेकपरिमन्थरतां प्रयाति।
जानामि चोद्यतगदस्य वृकोदरस्य
सारं रणेषु भुजयोः परिशङ्कितश्च ॥४॥

(द्रौपदीमवलोक्य) अयि सुक्षत्रिये,

गुरूणां बन्धूनां क्षितिपतिसहस्रस्य च पुरः
पुराभूदस्माकं नृपसदसि योऽयं परिभवः।
प्रिये प्रायस्तस्य द्वितयमपि पारं गमयति
क्षयः प्राणानां नः कुरुपतिपशोर्वाद्य निधनम् ॥५॥

[देव्या द्रौपद्याः केशाश्च अम्बराणि च तेषामाकर्षणमेव महापातकं तस्य प्रधानहेतुर्मुख्यनिमित्तम्। अथ प्रश्ने। दर्शनगोचरं दृष्टिविषयम्]॥

त्रस्तमिति। प्रियस्य चेतो विवेकमान्द्यमुपैति। कीदृशम्। उरुः विक्रमो यस्य तस्य पुरुषस्य विषयात्त्रासहेतोर्विनापि त्रस्तमिति वस्तुस्थितिः। प्रकृते तां योजयति—जानामीति। परिशङ्कितं सावधानम्। विषयादिति विनायोगे

पाञ्चालक—जय हो, महाराज की जय हो। महाराज और महारानी को प्रिय समाचार सुनाता हूँ।

युधिष्ठिर—भद्र पाञ्चालक, क्या उस दुष्टात्मा नीच कौरव का पद-मार्ग मिल गया है ?

पाञ्चालक—महाराज, केवल उसका पद-मार्ग ही नहीं, प्रत्युत महारानी के केश और वस्त्रों के हरणरूपी महापातक का मुख्य हेतु वह दुष्टात्मा ही मिल गया है।

युधिष्ठिर—शाबाश ! भद्र, तुमने प्रिय समाचार बतलाया। तो क्या दिखलाई भी दिया ?

पाञ्चालक—महाराज, युद्ध में आये हुये को पूछिये।

द्रौपदी—(भयपूर्वक) क्यों ? मेरे स्वामी युद्ध में उतरे हुए हैं ?

युधिष्ठिर—(आशङ्का के साथ) क्या सचमुच मेरा वत्स युद्ध कर रहा है ?

पाञ्चालक—सचमुच। क्या महाराज से असत्य निवेदन किया जायेगा ?

युधिष्ठिर—

महान् पराक्रम वाले (पुरुष) का भी बिना कारण ही भयभीत चित्त विवेक-मान्द्य को प्राप्त हो जाता है। मैं युद्ध में उठी हुई गदा वाले भीम की भुजाओं के बल को जानता हूँ, (लेकिन फिर भी) आशङ्कित हूँ ॥४॥

(द्रौपदी को देखकर) अरी वीर क्षत्रिया,

हे प्रिया, पहले राज-सभा में गुरुजनों, बन्धुओं और सहस्रों राजाओं के सामने हमारा जो यह अपमान हुआ था, सम्भवतः आज या तो हमारे प्राणों का नाश या पशु-तुल्य कौरव-पति के प्राणों का नाश दोनों ही उस (अपमान) के पार पहुँचा देंगे ॥५॥

पञ्चमो भ्रातुर्विनापि विजयाद्गुरुविक्रमस्य इति पाठे मम चेतो विवेकपरिमन्थर-तामुपैत्युरुविक्रमस्य भ्रातुर्विजयाद्विनापि। शत्रुणा यद्यपि मम भ्राता न जितस्त-थापि स्नेहान्मम चित्तमान्द्यमित्यर्थः ॥४॥

गुरूणामिति। हे प्रिये तस्य परिभवस्य द्वितयमेव कर्म पारं गमयति। अपरिवार्य। तदेवाह—स्य—इति। नोऽस्माकं प्राणविनाशः कुरुपतिपशोः प्राणविनाशो वा। तदुभयमित्यर्थः ॥५॥

अथवा कृतं संदेहेन ।

नूनं तेनाद्य वीरेण प्रतिज्ञाभङ्गभीरुणा ।
वध्यते केशपाशस्ते स चास्याकर्षणक्षमः ॥६॥

पाञ्चालक, कथय कथय कथमुपलब्धः स दुरात्मा कस्मिन्नुद्देशे किं वाधुना प्रवृत्तमिति ।

द्रौपदी—भद्र, कथय कथय । [भद्द, कहेहि कहेहि]

पाञ्चालकः—शृणोतु देवो देवी च । अस्तीह देवेन हते मद्राधिपतौ शल्ये गान्धारराजकुलशलभे सहदेवशस्त्रानलं प्रविष्टे सेनापतिनिधननिराक्रन्दविरलयोधोज्झितासु समरभूमिषु, रिपुबलपराजयोद्धतवल्गितविचित्रपराक्रमासादितविमुखारातिचक्रासु धृष्टद्युम्नाधिष्ठितासु च युष्मत्सेनासु प्रनष्टेषु कृपकृतवर्माश्वत्थामसु तथा दारुणामपर्यवसितां प्रतिज्ञामुपलभ्य कुमारवृकोदरस्य न ज्ञायते क्वापि प्रलीनः स दुरात्मा कौरवाधमः ।

युधिष्ठिरः—ततस्ततः ।

द्रौपदी—अयि, परतः कथय । [अयि, परदो कहेहि]

पाञ्चालकः—अवधत्तां देवो देवी च । ततश्च भगवता वासुदेवेनाधिष्ठितमेकरथमारूढौ कुमारभीमार्जुनौ समन्तात्समन्तपञ्चकं पर्यटितुमारब्धौ तमन्वासादितवन्तौ च । अनन्तरं दैवमनुशोचति मादृशे भृत्यवर्गे दीर्घमुष्णं च निश्वसति कुमारे बीभत्सौ जलधरसमयनिशासंचारिततडित्प्रकरपिङ्गलैः कटाक्षैरावीमयति

नूनमिति । [नूनमद्य प्रतिज्ञाभङ्गभीरुणा तेन वीरेण भीमेन ते केशपाशः केशकलापः बध्यते । स च अस्य केशपाशस्य आकर्षणक्षमो दुर्योधनो वध्यते] नाश्यते च । बन्ध बन्धने । वध हिंसायाम् । इत्येतयोः रूपम् ॥६॥ ।

गान्धारराजकुलं शकुनिकुलं तत्र शलभ इव तस्मिन् । निरराक्रन्दमत्यन्तमाक्रोशो येषां ते *निराक्रन्दाश्च ते विरलाश्च योधा* शत्रुपक्षयास्तैः उज्झितासु । [रिपुबलपराजयेन उद्धतं वल्गितं यासां ताः । विचित्रपराक्रमेण आसादितं विमुखं समरपराङ्मुखं अरातिचक्रं याभिस्तास्तथाभूतास्तासु ।] वल्गितं गतिविशेषः । आसादितं आक्रान्तः । तथा दारुणां प्रतिज्ञापूरणाभावे निजवधरूपाम् । [अपर्यवसितामनन्यदिनगामिनीम् ।] इतः परतः । पर्यटितुं भ्रमितुम् । [बीभत्सु-

अथवा सन्देह न करो—

आज अवश्य ही प्रतिज्ञा के भङ्ग से डरने वाला वह वीर (भीम) तेरे उत्तम केशों को बाँध देगा और इन्हें खींचने वाले (दुर्योधन) का वध कर देगा ॥६॥

पाञ्चालक, बतलाओ, बतलाओ यह दुष्टात्मा कैसे मिला ? किस स्थान पर मिला ? और अब क्या हो रहा है ?

द्रौपदी—भद्र, बतलाओ, बतलाओ।

पाञ्चालक—महाराज और महारानी सुनें। महाराज के मद्र-देश के अधिपति शल्य को मार देने पर, गान्धार देश के राजकुल रूपी शलभ के सहदेव के शस्त्रों की अग्नि में प्रविष्ट हो जाने पर, युद्ध-भूमि के सेनापति की मृत्यु पर अत्यधिक विलाप करते हुए कुछ (अवशिष्ट बचे) सैनिकों द्वारा छोड़ दिये जाने पर, धृष्टद्युम्न से अधिष्ठित आपकी सेना के शत्रु सेनाओं की पराजय के कारण उद्धत गति वाली तथा अद्भुत पराक्रम के साथ भागते हुए शत्रु-समूह को नष्ट करने वाली होने पर, कृप, कृतवर्मा और अश्वत्थामा के भाग जाने पर कुमार वृकोदर की अत्यधिक कठोर और अगले दिन न जाने वाली (अर्थात् एक दिन में पूर्ण होने वाली) प्रतिज्ञा को जानकर वह दुष्टात्मा अधम कौरव न जाने कहाँ छिप गया।

युधिष्ठिर—इसके बाद ?

द्रौपदी—अरे, आगे कह।

पाञ्चालक—महाराज और महारानी ध्यान देवें। तब भगवान् वसुदेवपुत्र द्वारा हाँके गये एक ही रथ पर बैठे हुए कुमार भीम और अर्जुन समन्तपञ्चक के चारों ओर घूमने लगे, परन्तु उसे न पा सके। तब मुझ जैसे सेवक-वर्ग के भाग्य को कोसने पर, कुमार बीभत्सु (अर्जुन) के लम्बा और गरम साँस लेने पर, वृकोदर के वर्षा ऋतु की रात्रि में चमकने वाली विद्युत्-समूह के समान लाल वर्ण वाली दृष्टि से गदा को प्रकाशित करने पर और भगवान् कृष्ण के

रजुनः ।] खद्योतो ज्योतिरिङ्गणः इत्यमरः । पिङ्गला कपिशा । आदीपयत्युद्योतयति सति - [यत्किञ्चनकारितां यत्किञ्चन कर्तुं शीलं यस्य तस्य भावो

गदां वृकोदरे, यत्किंचनकारितामधिक्षिपति विधेर्भगवति नारायणे कश्चित्संविदितः कुमारस्य मारुतेरुज्झितमांसभारः प्रत्यग्रविशसितमृगलोहितचरणनिवसनस्त्वरमाणोऽन्तिकमुपेत्य पुरुषः परुषश्वासप्रस्तार्धश्रुतवर्णानुमेयपदया वाचा कथितवान्–देव कुमार, अस्मिन्महतोऽस्य सरसस्तीरे द्वे पदपद्धती समवतीर्णप्रतिबिम्बे। तयोरेका स्थलमुत्तीर्णा न द्वितीया। परत्र कुमारः प्रमाणम् इति। ततः ससंभ्रमं प्रस्थिताः सर्वे वयं तमेव पुरस्कृत्य। गत्वा च सरस्तीरं परिज्ञायमानसुयोधनपदलाञ्छनां पदवीमासाद्य भगवता वासुदेवेनोक्तम्—भो वीर वृकोदर जानाति किल सुयोधनः सलिलस्तम्भनीं विद्याम्। तन्नूनं तेन त्वद्भयात्सरसीमेनामधिशयितेन भवितव्यम्। एतच्च वचनमुपश्रुत्य रामानुजस्य सकलदिङ्निकुञ्जपूरितातिरिक्तमुद्भ्रान्तसलिलचरशकुन्तकुलं त्रासोद्धतनक्रग्राहमालोड्य सरःसलिलं भैरवं च गर्जित्वा कुमारवृकोदरेणाभिहितम्—अरे रे वृथाप्रख्यापितालीकपौरुषाभिमानिन्, पाञ्चालराजतनयाकेशाम्बराकर्षणमहापातकिन्, धार्तराष्ट्रापसद,

> जन्मेन्दोरमले कुले व्यपदिशस्यद्यापि धत्से गदां
> मां दुःशासनकोष्णशोणितमधुक्षीवं रिपुं मन्यसे।
> दर्पान्धो मधुकैटभद्विषि हरावप्युद्धतं चेष्टसे
> मत्त्रासान्नृपशो विहाय समरं पङ्केऽधुना लीयसे ॥७॥

यत्किंचनकारितां ताम्।] यत्र तत्रानुसंधानादिकम्। [अधिक्षिपति निन्दति।] संविदितः ज्ञातः पुरुषः कुमारमारुतेरन्तिकमुपेत्य वाचा कथितवानित्यन्वयः। लोहितं रक्तम्। श्वासप्रस्तोऽर्धश्रुतो यो वर्णोऽक्षरं तेनानुमेयं पदं यस्यास्तया। [समवतीर्णानि प्रतिबिम्बानि ययोस्ते तथा।] प्रमाणमस्मिन्मतर्के कुमार एव कर्तेत्यर्थः। सरसीमिति अधिशीङ्स्थासां कर्म इत्याधारे कर्म। रामानुजः कृष्णः। [सकलासु दिक्षु ये निकुञ्जा गह्वराणि तेषु पूरितं च तदतिरिक्तं च। उद्भ्रान्तं सलिलचराणां शकुन्तानां पक्षिणां कुलं यत्र यस्मिन्कर्मणि तद्यथा तथा इति वा।] त्रासेन उद्धता नक्रा ग्राहाश्च यस्मात्—यस्मिन् कर्मणि तद्यथा इति वा। नक्रो जलजन्तुभेदः ग्राहो गोह इति प्रसिद्धः। [वृथा प्रख्यापितं यदलीकं पौरुषं तस्याभिमानो विद्यतेऽस्य।]

भाग्य की स्वेच्छाचारिता को दोष देने पर कुमार भीमसेन का परिचित कोई पुरुष, जिसने मांस-राशि एक ओर रख दी और जिसके चरण तथा वस्त्र ताजे मारे हुये हरिण (के रुधिर) से लाल थे, जल्दी करता हुआ समीप आकर कठोर श्वास में दब जाने के कारण अध-सुने वर्णों से जाने गये पदों वाली वाणी मे कहा—'महाराज, इस महान् जलाशय के किनारे पर दो पद-पङ्क्तियों के चिन्ह पड़े हुए हैं । उनमे से एक भूमि पर वापिस लौट कर आई है, दूसरी नहीं । आगे कुमार का अधिकार है ।' इसके पश्चात् हम सब उसे ही आगे करके चल पड़े । तालाब के किनारे जाकर सुयोधन के पद-चिह्न (के रूप में) जानी गई पद-पङ्क्ति को पाकर भगवान् वासुदेव ने कहा—हे वीर वृकोदर, सुयोधन जल-स्तम्भनी विद्या जानता है । इसलिए अवश्य ही वह तेरे भय से इस महान् जलाशय में लेटा हुआ होगा । बलराम के छोटे भाई (कृष्ण) के इस वचन को सुनकर, जलाशय के जल का (इस प्रकार) आलोडन करके और भयङ्कर गर्जन करके कि (जल ने) सब दिशाओं के गह्वरों को भर दिया और फिर भी अधिक था, जल-जन्तुओं और पक्षियों के समूह घबरा गये और भय के कारण घड़ियाल और मगरमच्छ भागने लगे, कुमार वृकोदर ने कहा—अरे ओ, व्यर्थ प्रकट किये गये झूठे पौरुष पर अभिमान करने वाले, पाञ्चाल राजकुमारी के केश और वस्त्र को खींचने का महापातक करने वाले, धृतराष्ट्र के नीच पुत्र,

हे नरपशु, तू चन्द्र के निर्मल कुल में अपना जन्म बतलाता है, तू अब भी गदा धारण कर रहा है, तू दुःशासन के गरम रुधिर रूपी मद्य से मत्त हुए मुझ (भीम) को अपना शत्रु समझता है, दर्प से अन्धा तू मधु और कैटभ के शत्रु विष्णु के प्रति भी उच्छृङ्खल चेष्टा करता है, लेकिन अब मेरे डर से युद्ध-क्षेत्र को छोड़कर कीचड़ में छिपा है ॥७॥

जन्मेति [व्यपदिशसि कथयसि । दुःशासनस्य कोष्णं किञ्चिदुष्णं शोणितमेव मधु तेन तत्पानेन क्षीबं मत्तम् । कोष्णमित्यत्र ईषदर्थे इति कोः कादेशः ।] क्षीबं मत्तम् । [दर्पेणान्धो विवेकशून्यः । मधुकैटभद्विषि तन्नामकदैत्यारौ । उद्धतमविनयेन चेष्टसे ।] नृपशो जनाधम । इह सलिलाभ्यन्तरे । यदाह- अधिक्षेपोक्तिः क्षतिर्मता इति ॥७॥

अपि च । भो मानान्ध,

पाञ्चाल्या मन्युवह्निः स्फुटमुपशमितप्राय एव प्रसह्य
व्यासक्तैः केशपाशैर्हतपतिषु मया कौरवान्तःपुरेषु ।
भ्रातुर्दुःशासनस्य स्रवदसृगुरसः पीयमानं निरीक्ष्य
क्रोधात्किं भीमसेने विहितमसमये यत्त्वयास्तोऽभिमानः ॥८॥

द्रौपदी—नाथ, अपनीतो मे मन्युर्यदि पुनरपि सुलभं दर्शनं भविष्यति ।

[णाह, अवणीदो मे मण्णु जइ पुणो वि सुलहं दंसणं भविस्सदि ।]

युधिष्ठिरः—कृष्णे, नामङ्गलानि व्याहर्तुमर्हस्यस्मिन्काले । भद्र, ततस्ततः ।

पाञ्चालकः—देव, ततश्चैवं भाषमाणेन वृकोदरेणावतीर्य क्रोधोद्धतभ्रमित-भीषणगदापाणिना सहसैवोल्लङ्घिततीरमुत्सन्ननलिनीवनमपविद्धमूर्च्छितग्राहमुद्भ्रान्तमत्स्यशकुन्तमतिभैरवारवभ्रमितवारिसंचयमायतमपि तत्सरः समन्तादालोडितम् ।

युधिष्ठिरः—भद्र, तथापि किं नोत्थितः ।

पाञ्चालकः—देव, कथं नोत्थितः ।

त्यक्त्वोत्थितः सरभसं सरसः स मूल-
मुद्भूतकोपदहनोग्रविषस्फुलिङ्गः ।

पाञ्चाल्या इति । कौरवान्तःपुरेषु मया । [प्रसह्य बलाद् हताः पतयो येषां तेषु] हतपतिषु सत्सु तदीयकेशपाशैर्व्यासक्तैः संबद्धैः [व्यत्यस्तैः] द्रौपद्या मन्युवह्निरुपशमितप्राय एवेत्यन्वयः । दुःशासनवक्षसः स्रवद्रक्तं मया पीयमानमालोक्य त्वया मयि भीमसेने किं विहितं यदसमयेऽकाले [प्रतिकारोचिते काले सत्यपीत्यर्थः ।] एवं मानोऽस्तस्त्यक्तस्त्वया । इदानीं स कर्तुमर्हतीति भावः ॥८॥

अपनीतो 'नाथेन मम मन्युर्यदि पुनरपि सुलभदर्शनः' स भविष्यति । [क्रोधनोद्धतमुद्धटं यथा तथा भ्रमिता या भीषणा गदा सा पाणौ यस्य । उत्सन्नं विध्वस्तं नलिनीवनं यस्मिन् । अपविद्धा विक्षिप्ता अत एव मूर्छिता ग्राहा

आयस्तभीमभुजमन्दरवेल्लनाभिः
क्षीरोदधेः समुथितादिव भालकूटः ॥९॥

युधिष्ठिरः—साधु, सुक्षत्रिय, साधु।

द्रौपदी—प्रतिपन्नः समरो न वा। [पडिवण्णो समरो ण वा]

पाञ्चालकः—उत्थाय च तस्मात्सलिलाशयात्करयुगलोत्तम्भिततोरणीकृतभीमगदः कथयति स्म—'अरे रे मारुते, किं भयेन प्रलीनं दुर्योधनं मन्यते भवान्। मूढ, अनिहतपाण्डुपुत्रः प्रकाशं लज्जमानो विश्रमितुमध्यवसितवानस्मि पातालम्। एवं चोक्ते वासुदेवेकिरीटिभ्यां द्वावप्यन्तः सलिले निविद्धसमरसमारम्भौ स्थलमुत्तारितौ भीमसुयोधनौ। आसीनश्च कौरवराजः क्षितितले गदां निक्षिप्य विशीर्णरथसहस्रं निहतकुरुशतगजवाजिनरसहस्रकलेवरसंमर्दसपतद्गृध्रकङ्कजम्बूकमुत्सन्नसुयोधमस्मद्घोरमुक्तसिंहनादमपमित्रबान्धवमकौरवं रणस्थानमवलोक्यायसमुष्णं च निःश्वसितवान्। ततश्च वृकोदरेणाभिहितम्—अयि भोः कौरवराज, कृतं बन्धुनाशदर्शनमन्युना। मैवं विषादं कृथाः पर्याप्ताः पाण्डवाः समरायाहमसहाय इति।

पञ्चानां मन्यसेऽस्माकं यं सुयोधं सुयोधन।
दंशितस्यात्तशस्त्रस्य तेन तेऽस्तु रणोत्सवः ॥१०॥

इत्थं च श्रुत्वासूयान्वितां दृष्टिं कुमारयोर्निक्षिप्योक्तवान्धार्तराष्ट्रः।

स तथा। आयस्तः क्षिप्तः [आयस्तौ विक्षिप्तौ भीमस्य भुजावेव मन्दरस्तस्य वेल्लनाभिः] वेल्लना चालनम् ॥९॥

अत्र प्रतिपन्नो लग्नः [अङ्गीकृतः]। [करयुगलेन उत्तम्भितोत्तोलितात्] एव तोरणसदृशी कृता गदा येन स तथा। विशीर्णानि भग्नानि छिदलितानि वा रथानां सहस्राणि यस्मिन्। निहितं यत्कुरुशतं तस्य गजवाजिनरसहस्राणां च कलेवराणि तेषां संमर्दस्तस्मिन् पतन्तो गृध्राश्च इ० यस्मिन्।] कलेवरं शरीरम् जम्बूकः शृगालः। [अपगता मित्राणि बान्धवाश्च यस्मात्। पर्याप्ता आगताः [समर्थाः।]

पञ्चनामिति। अस्माकं मध्ये। [सुयोधं सुखेन योधनीयम्।] दंशितस्य

आयस्तभीमभुजमन्दरवेल्लनाभिः
क्षीरोदधेः समुत्थितादिव भालकूटः ॥९॥

युधिष्ठिरः—साधु, सुक्षत्रिय, साधु ।

द्रौपदी—प्रतिपन्नः समरो न वा । [पडिवण्णो समरो ण वा]

पाञ्चालकः—उत्थाय च तस्मात्सलिलाशयात्करयुगलोत्तम्भिततोरणीकृतभीमगदः कथयति स्म-'अरे रे मारुते, किं भयेन प्रलीनं दुर्योधन मन्यते भवान् । मूढ, अनिहतपाण्डुपुत्रः प्रकाशं लज्जमानो विश्रमितुमध्यवसितवानस्मि पातालम्' । एवं चोक्ते वासुदेवकिरीटिभ्यां द्वावप्यन्तः सलिले निषिद्धसमरसमारम्भौ स्थलमुत्तारितौ भीमसुयोधनौ । आसीनश्च कौरवराजः क्षितितले गदां निक्षिप्य विशीर्णरथसहस्रं निहतकुरुशतगजवाजिनरसहस्रकलेवरसंमर्दसंपतद्गृध्रकङ्कजम्बूकमुत्सन्नसुयोधमसमद्वीरमुक्तसिंहनादमपमित्रबान्धवमकौरवं रणस्थानमवलोक्यायतमुष्णं च निःश्वसितवान् । ततश्च वृकोदरेणाभिहितम्—अयि भोः कौरवराज, कृतं बन्धुनाशदर्शनमन्युना । मैवं विषादं कृथाः पर्याप्ताः पाण्डवाः समरायाहमसहाय इति ।

पञ्चानां मन्यसेऽस्माकं यं सुयोधं सुयोधन ।
दंशितस्यात्तशस्त्रस्य तेन तेऽस्तु रणोत्सवः ॥१०॥

इत्थं च श्रुत्वासूयान्वितां दृष्टिं कुमारयोर्निक्षिप्योक्तवान्धार्तराष्ट्रः ।

स तथा । आयस्तः क्षिप्तः [आयस्तौ विक्षिप्तौ भीमस्य भुजावेव मन्दरस्तस्य वेल्लनाभिः] वेल्लना चालनम् ॥९॥

अत्र प्रतिपन्नो लग्नः [अङ्गीकृतः] । [करयुगलेन उत्तम्भितोत्तोलितात्] एव तोरणसदृशी कृता गदा येन स तथा । विशीर्णानि भग्नानि विदलितानि वा रथानां सहस्राणि यस्मिन् । निहितं यत्कुरुशतं तस्य गजवाजिनरसहस्राणां च कलेवराणि तेषां संमर्दस्तस्मिन् पतन्तो गृध्राश्च ६० यस्मिन् ।] कलेवरं शरीरम् जम्बूकः शृङ्गालः । [अपगता मित्राणि बान्धवाश्च यस्मात् । पर्याप्ता आगताः [समर्थाः ।]

पञ्चनामिति । अस्माकं मध्ये । [सुयोधं सुखेन योधनीयम् ।] दंशितस्य

कर्णदुःशासनवधात्तुल्यावेव युवां मम ।
अप्रियोऽपि प्रियो योद्धुं त्वमेव प्रियसाहसः ॥११॥

इत्युत्पाय परस्परक्रोधाधिक्षेपपरुषवाक्कलहप्रस्तावितघोरसङ्ग्रामौ विचित्र-विभ्रमभ्रमितगदापरिभासुभुजदण्डौ मण्डलैर्विचरितुमारब्धौ भीमदुर्योधनौ। अहं च देवेन चक्रपाणिना देवसकाशमनुप्रेषितः। आह च देवो देवकीनन्दनः। अपर्युषितप्रतिज्ञे च मारुतौ प्रनष्टे कौरवराजे महानासीन्नो विषादः। संप्रति पुनर्भीमसेनेनासादिते सुयोधने निष्कण्टकीभूतं भुवनतलं परिलक्ष्यतु भवान्। अभ्युदयोचिताश्चानवरतं प्रवर्त्यन्तां मङ्गलसमारम्भाः। कृतं सन्देहेन।

पूर्यन्तां सलिलेन रत्नकलशा राज्याभिषेकाय ते
कृष्णात्यन्तचिरोज्झिते च कबरीबन्धे करोतु क्षणम्।
रामे शातकुठारभासुरकरे क्षत्रद्रुमोच्छेदिनि
क्रोधान्धे च वृकोदरे परिपतत्याजौ कुतः संशयः ॥१२॥

द्रौपदी—(सबाष्पम्) यद्देवस्त्रिभुवननाथो भणति तत्कथमन्यथा भविष्यति।
[जं देवो तिहुअणणाहो भणादि तं कहं अण्णहा भविस्सदि]

पाञ्चालक.—न केवलमियमाशीः। असुरनिषूदनस्यादेशोऽपि।

युधिष्ठिर.—को हि नाम भगवता संदिष्टं विकल्पयति। कः कोऽत्र भोः।

कर्णेति। हे भीम त्वमेव योद्धुं प्रियः। कीदृशः अप्रियं साहसी च ॥११॥

[परस्परस्य यः क्रोधेनाधिक्षेपो निन्दा तत्र या परुषवाक् तया कलहस्तेन प्रस्तावितो घोरसंग्रामो याभ्याम्। विचित्रो विविधो यो विभ्रमस्तेन भ्रमिता गदा तया परिभासुरौ भुजदण्डौ ययोस्तौ।] विभ्रमो विलास। मण्डल करणविशेषः। [अपर्युषिता प्रतिज्ञा यस्य तादृशे। प्रतिज्ञाया अपर्युषितत्वा-दित्यर्थः।] प्रनष्टेऽदृष्टे। समारम्भाः मङ्गलादिक्रियाः।

पूर्यन्तामिति। [रत्नखचिताः कलशा रत्नकलशाः सलिलेन तीर्थजलेन। तस्यैव तत्रोपयोगित्वात्] कबरी केशवेशः। क्षणो मुहूर्तोत्सवयोः इति शाश्वतः। कबरीबन्ध इति निमित्तसप्तमी। रामे परशुरामे। [शातः तेजितः। शाणादिना

कर्ण और दु:शासन के वध के कारण तुम दोनों मेरे लिये समान ही हो। (फिर भी) अप्रिय होने पर साहस-प्रिय होने से तुम ही मुझे युद्ध में इष्ट हो ॥११॥

यह कहकर (और) उठकर भीम और दुर्योधन, जिन्होंने परस्पर क्रोध के कारण निन्दा के कठोर वचनों के कलह से भयङ्कर युद्ध प्रारम्भ कर दिया था और जिनकी दण्ड-सदृश भुजायें अनेकविध सुन्दर चेष्टाओं के साथ घुमाई गई गदाओं से चमक रही थी, मण्डल बनाकर घूमने लगे, और मुझे भगवान् कृष्ण (हाथ में चक्र वाले) ने महाराज के पास भेज दिया। भगवान् देवकी-पुत्र ने कहा है—'भीमसेन के अगले दिन न जाने वाली प्रतिज्ञा कर लेने पर और कौरव-राज के भाग जाने पर हमें बड़ा दु:ख था। लेकिन अब भीम के दुर्योधन को पा लेने पर आप पृथ्वीतल को कण्टक-हीन हुआ समझें। और अभ्युदय के अनुरूप मङ्गल कर्म का अखण्ड प्रवर्तन कर दें। (अब) सदेह न करें।

तुम्हारे राज्याभिषेक के लिये रत्न-जटित कलश जल से भरे जायें, द्रौपदी अतिदीर्घ काल से छोड़ गये केश-पाश के बन्धन का उत्सव मनाये। क्षत्रिय-जाति रूपी वृक्षों को काटने वाले तथा तीक्ष्ण कुठार से चमकते हुए हाथो वाले परशुराम और क्रोध से अन्धे हुए वृकोदर के युद्ध-भूमि में जाने पर सशय कहाँ से (हो सकता है) ॥१२॥

द्रौपदी—(आँसुओं के साथ) त्रिलोकीनाथ भगवान् जो कहेंगे, वह असत्य कैसे होगा?

पाञ्चालक—यह केवल आशीर्वाद नहीं है। असुर-रिपु का आदेश भी है।

युधिष्ठिर—भगवान् के सदेश में कौन तर्क-वितर्क कर सकता है? अरे यहाँ कोई है?

तीक्ष्णधार: कृत इत्यर्थ.। निशितक्ष्णुण्णशातानि तेजिते। इत्यमर: कुठारस्तेन भासुर. कर: यस्य तस्मिन्।] शात निशितम्। परिपतति गच्छति सति ॥१२॥

आज्ञा निदेश। [विकल्पयति अनुष्ठेय नवाऽनुष्ठेयमिति विचारयति। न कोऽपीत्यर्थ:।] संविधाता [समारम्भविधायी] पुरोहितादि.। [प्रधानमतिक्रम्य] यथाप्रधानं प्रधानपुरुषानुक्रमेण:। अन्तर्वेशिका अन्त.पुरचारिण:। [अन्तर्वंशिक:

(प्रविश्य)

कञ्चुकी—आज्ञापयतु देवः ।

युधिष्ठिरः—देवस्य देवकीनन्दनस्य बहुमानवत्सस्य मे विजयमङ्गलाय प्रवर्त्यन्तां तदुचिताः समारम्भाः ।

कञ्चुकी—यदाज्ञापयति देव । (सोत्साहं परिक्रम्य) भो भोः सविधातृणां पुरः सराः, यथाप्रधानमन्तर्वंशिकाः, दौवारिकाश्च, एष खलु भुजबलपरिक्षेपोत्तीर्णकौरवपरिभवसागरस्य निर्व्यूढदुर्वहप्रतिज्ञाभारस्य सुयोधनानुजशतोन्मूलनप्रभञ्जनस्य दुःशासनोरःस्थलविदलननरसिंहस्य दुर्योधनोरुस्तम्भभङ्गविनिश्चितविजयस्य बलिनः प्राभञ्जनेर्वृकोदरस्य स्नेहपक्षपातिना मनसा मङ्गलानि कर्तुमाज्ञापयति देवो युधिष्ठिरः । (आकाशे) किं ब्रूथ-सर्वतोऽधिकतरमपि प्रवृत्तं किं नालोकयसि इति । साधु, पुत्रकाः, साधु । अनुक्तहितकारिता हि प्रकाशयति मनोगतां स्वामिभक्तिम् ।

युधिष्ठिरः—आर्य जयंधर ।

कञ्चुकी—आज्ञापयतु देवः ।

युधिष्ठिरः—गच्छ प्रियख्यापकं पाञ्चालकं पारितोषिकेण परितोषय ।

कञ्चुकी—यदाज्ञापयति देवः । (इति पाञ्चालकेन सह निष्क्रान्तः) ।

द्रौपदी—महाराज किंनिमित्तं पुनर्नाथभीमसेनेन स दुराचारो भणितः—पञ्चानामप्यस्माकं मध्ये येन ते रोचते तेन सह ते सङ्ग्रामो भवतु इति । यदि

इति पाठे अन्तराभ्यन्तरो वंशः गृहमन्तर्वंशः । तत्र नियुक्ताः । संज्ञापूर्वकत्वान्न वृद्धिः ।] दौवारिका द्वारनियुक्ताः । भुजयोर्बलेन परिक्षेपस्तेनोत्तीर्णः कौरवेभ्यो यः परिभवोऽवमानना स एव सागरो येन । निर्व्यूढ- [नितरामूढः दुर्वहो दुःखेन वोढुं शक्यः प्रतिज्ञारूपो भारो येन तस्य ।] सुयोधनानुजशतस्योन्मूलने प्रभञ्जनस्तस्य ।] प्रभञ्जनो वायुः । प्रभञ्जकस्य भञ्जयितुः । [दुर्योधनस्य ऊरुभङ्गे भङ्गेन वा विनिश्चितो विजयो यस्य ।] प्राभञ्जनेर्वायुपुत्रस्य भीमस्य । अत इञ् इत्यपत्यार्थे इञ् । [अधिकतरमुक्तसविशेषम् ।] मङ्गलकर्मेति शेषः । हितं करोतीति हितकारी तस्य भावो हितकारिता । अनुक्ता स्वाम्यादेशं विना कृता

(प्रवेश करके)

कञ्चुकी—महाराज आज्ञा दें।

युधिष्ठिर—कञ्चुकी, भगवान् देवकी-नन्दन के प्रति अत्यधिक आदर के कारण मेरे वत्स (भीमसेन) के विजय-मङ्गल के लिये उसके अनुरूप समारोह प्रारम्भ कर दिये जायें।

कञ्चुकी—जैसी महाराज आज्ञा दें (उत्साह के साथ घूमकर) हे प्रबन्धकों के मुखियाओं, प्रदान रूप के क्रमानुसार अन्त.पुर के कर्मचारियों और द्वारपालों, यह महाराज युधिष्ठिर स्नेह-भरे मन से बलशाली वायु-पुत्र वृकोदर का, जिसने बाहु-बल के प्रयोग से कौरवों के अपमानरूपी सागर को पार कर लिया है; जिसने कठिन प्रतिज्ञा-भार को निभा दिया है, जो सुयोधन के सौ छोटे भाइयों को उखाड़ने में पवन के समान है, जो दुःशासन के वृक्षःस्थल को विदीर्ण करने मे नृसिंह के समान है और दुर्योधन की जङ्घारूपी स्तम्भ को तोड़ने से जिसकी विजय निश्चित है, मङ्गल-महोत्सव करने की आज्ञा दे रहे हैं। (आकाश की ओर देखकर) क्या कह रहे हो—'सब ओर अत्यधिक किये गये भी मङ्गल-कर्म को कैसे नही देख रहे ? ठीक, पुत्रों ठीक। बिना कहे हित करना ही हृदय स्थित स्वामि-भक्ति को प्रकट करता है।

युधिष्ठिर—आर्य जयन्धर।

कञ्चुकी—महाराज आज्ञा दें।

युधिष्ठिर—जाओ, प्रिय निवेदन करने वाले पाञ्चालक को पारितोषिक से सन्तुष्ट करो।

कञ्चुकी—महाराज की जैसी आज्ञा हो। (यह कहकर पाञ्चालक के साथ बाहर चला गया)।

द्रौपदी—महाराज, लेकिन स्वामी भीमसेन उस दुराचारी से (यह) क्यों कहा—'हम पांचों में से जिसके साथ तुम्हे अच्छा लगे, उसके साथ तुम्हारा

हितकारिता।] पारितोषिकेण परितोषहेतुना धनेन। अथ किंनिमित्तं एवं भणितः—यदि पुनर्मादी॰ ''सङ्गरस्तेन'''। अत्र माद्रीसुतौ नकुलसहदेवौ।

माद्रीसुतयोरेकतरेण सह सङ्ग्रामस्तेन-अर्थितो भवेत्ततोऽत्याहितं भवेत् ।

[महाराअ, किंणिमित्तं उण णाहभीमसेणेण सो दुराआरो भणिदो—पञ्चाणं वि अह्माण मज्झे जेण दे रोअदि तेण सह दे संगामो होदु त्ति । जइ मद्दीसुदाणं एकदरेण सह संगामो तेण पत्थिदो भवे तदो अच्चाहिदं भवे] ।

युधिष्ठिर.—कृष्णे एवं मन्यते जरासंधघाती । हतसकलसुहृद्बन्धुवीरानुजराजन्यासु कृपकृतवर्माऽश्वत्थामशेषास्वेकादशस्वक्षौहिणीष्वबान्धवः शरीरमात्रविभव, कदाचिदुत्सृष्टनिजाभिमानो धार्तराष्ट्र. परित्यजेदायुधं तपोवनं वा प्रविशेत्संधिं वा पितृमुखेन याचेत । एवं सति सुदूरमतिक्रान्तः प्रतिज्ञाभारो भवेत्सकलरिपुजयस्येति । समरं प्रतिपत्तु पञ्चानामपि पाण्डवानामेकस्यापि नैव क्षमः सुयोधनः । शङ्के चाहं गदायुद्धं वृकोदरस्यैवानेन । अयि सुक्षत्रिये, पश्य—

क्रोधोद्गूर्णगदस्य नास्ति सदृशः सत्यं रणे मारुतेः
कौरव्ये कृतहस्तता पुनरियं देवे यथा सीरिणि ।
स्वस्त्यस्तूद्धतधार्तराष्ट्रनलिनीनागाय वत्साय मे
शङ्के तस्य सुयोधनेन समरं नैवेतरेषामहम् ॥१३॥

(नेपथ्ये)

तृषितोऽस्मि भोस्तृषितोऽस्मि । संभावयतु कश्चित्सलिलच्छायासंप्रदानेन माम् ।

युधिष्ठिरः—(आकर्ण्य) क. कोऽत्र भोः ।

[हताः सकलाः सुहृद्बन्धुवीराः अनुजा राजन्याः क्षत्रियाश्च यासु यथाभूतासु । शरीरमेव शरीरमात्रं विभवो यस्य स तथा । सकलान् रिपून् जेष्याम इति प्रतिज्ञाया भार. सुदूरमत्यन्तमतिक्रान्तो निर्वाहयितुमशक्यो भवेत् । एकस्यापि पाण्डवस्य एकेनापि पाण्डवेनेत्यर्थः । समरं प्रतिपत्तुं सुयोधनः न क्षमो न समर्थः वृकोदरस्य पाण्डवेषु बलिष्ठस्य [एवं अनेन सुयोधनेन गदायुद्धं शङ्के ।]

क्रोधेति । क्रोधेन उद्गूर्णा उद्यमिता गदा येन स तथा तस्य । उद्गूर्णोद्यते इत्यमरः । [कृत· शस्त्रविक्षेपणे अभ्यस्तः हस्तः यस्य स कृतहस्तः । तस्य भावः कृतहस्तता ।] सीरिणि बलभद्रे । [तदुक्तं भारते—उपदेशोऽनयोस्तुल्यो भीमस्तु

युद्ध होगा।' यदि उसने माद्री के दोनों पुत्रो मे से किसी एक के साथ युद्ध की प्रार्थना की होती, तो अनर्थ हो जाता।

युधिष्ठिर—द्रौपदी, जरासन्ध के शत्रु (भीमसेन) का ऐसा विचार होगा—'ग्यारह अक्षौहिणी सेनाओं मे, जिनमे सब मित्र बन्धु वीर, अनुज और क्षत्रिय मर गये हैं, केवल मात्र कृप, कृतवर्मा और अश्वत्थामा के शेष रह जाने पर बान्धव-हीन धृतराष्ट्र-पुत्र, जिसका केवल शरीर ही धन शेष रह गया है, कभी अपने अभिमान को त्यागकर आयुध का परित्याग कर दे, (और) तपोवन को चला जाय अथवा पिता के मुख से सन्धि की प्रार्थना करने लगे। ऐसा होने पर सब शत्रुओं को जीतने की प्रतिज्ञा की निर्वाह बहुत दूर चला जायेगा।' सुयोधन पाँचो पाण्डवों में से किसी के भी साथ युद्ध करने मे समर्थ नही है। और मुझे इसके साथ-भीमसेन के ही गदायुद्ध की आशङ्का है अरी वीर क्षत्रिया, देखो—

सचमुच क्रोध से गदा उठाये हुए वायु-पुत्र (भीम) का युद्ध में कोई जोड़ नही है। लेकिन कौरव (दुर्योधन) में भगवान् ने बलराम जैसी प्रवीणता है। उद्धत कौरव-रूपी कमलिनियों के लिये गज समान, मेरे वत्स (भीम) का कल्याण हो। मैं सुयोधन के साथ उसके ही संग्राम की आशङ्का करता हूँ, अन्यों के (संग्राम) की नही ॥१३॥

(नेपथ्ये में)

मैं प्यासा हूँ, अरे मैं प्यासा हूँ। कोई जल और छाया देकर मुझे अनुगृहीत करे।

युधिष्ठिर—(सुनकर) अरे वहाँ कौन है?

बलबत्तरः। कृती यत्नपरस्त्वेष धार्तराष्ट्रो वृकोदरात् ॥महा० ५८.३.। उद्धता दृप्ता धार्तराष्ट्रा एव नलिन्यः कमलिन्यस्तासां विदलने नागो हस्ती। यद्वा उद्धता धार्तराष्ट्रा एव नालिन्यो येन स चासौ नागः तस्य मङ्गलं कल्याणं भूयात् यतः तस्य भीमस्य सुयोधनेन समरं गदायुद्धं शङ्के। भीमः तेन सह गदायुद्धे विजयी भवेन्नवेति शङ्के इत्यर्थः। इतरेषां तु गदायुद्धं न भवतीति क्षमा एव ते सुयोधनं जेतुमिति तेषां समरं न शङ्के इति भावः ॥१३॥

(प्रविश्य)

कञ्चुकी—आज्ञापयतु देवः ।

युधिष्ठिरः - ज्ञायतां किमेतत् ।

कञ्चुकी—यदाज्ञापयति देवः । (इति निष्क्रम्य पुनः प्रविश्य) देव, क्षुन्मानतिथिरुपस्थितः ।

युधिष्ठिरः—शीघ्रं प्रवेशय ।

कञ्चुकी—यदाज्ञापयति देवः । (इति निष्क्रान्तः) ।

(ततः प्रविशति मुनिवेषधारी चार्वाको नाम राक्षसः)

राक्षसः—(आत्मगतम्) एषोऽस्मि चार्वाको नाम राक्षसः सुयोधनस्य मित्रं पाण्डवान्वञ्चयितुं भ्रमामि । (प्रकाशम्) तृषितोऽस्मि । संभावयतु मां कश्चिज्जलच्छायाप्रदानेन । (इति राज्ञः समीपमुपसर्पति)

(सर्वे उत्तिष्ठन्ति)

युधिष्ठिरः—मुने अभिवादये ।

राक्षसः—अकालोऽयं समुदाचारस्य । जलप्रदानेन संभावयतु माम् ।

युधिष्ठिरः—मुने, इदमासनम् उपविश्यताम् ।

राक्षसः—(उपविश्य) ननु भवतापि क्रियतामासनपरिग्रहः ।

युधिष्ठिरः—(उपविश्य) कः कोऽत्र भोः । सलिलमुपनय ।

(प्रविश्य गृहीतभृङ्गारः)

कञ्चुकी—(उपसृत्य) महाराज, शिशिरसुरभिसलिलसंपूर्णोऽयं भृङ्गारः पानभाजनं चेदम् ।

युधिष्ठिरः—मुने, निर्वर्त्यतामुदन्याप्रतिकारः ।

राक्षसः—(पादौ प्रक्षाल्योपस्पृशन्विचिन्त्य) भोः क्षत्रियस्त्वमिति मन्ये ।

युधिष्ठिरः—सम्यग्वेदी भवान् । क्षत्रिय एवास्मि ।

[क्षुन्मान् बुभुक्षितः । महाभारते तु अयं राक्षसः युद्धसमाप्त्यनन्तरं महाराजयुधिष्ठिरे राजधानिं प्रविष्टे परिव्राजकरूपत्वेन ब्राह्मणैः सह प्रवेशितः । तदुक्तं शान्तिपर्वणि ३८ शेऽध्याये-ब्राह्मण ऊचुः—एष दुर्योधनसखश्चार्वाको नाम राक्षसः । परिव्राजकरूपेण हितं तस्य चिकीर्षति ॥ इति । अकालः अयुक्तः

(प्रवेश करके)

कञ्चुकी—महाराज आज्ञा दीजिये ।

युधिष्ठिर—मालूम करो यह क्या है ?

कञ्चुकी—महाराज की जो आज्ञा हो । (यह कहकर बाहर जाकर पुनः प्रवेश करके) महाराज, (कोई) भूखा अतिथि आया है ।

युधिष्ठिर—शीघ्र अन्दर लिवा लाओ ।

कञ्चुकी—महाराज की जो आज्ञा । (यह कहकर बाहर चला गया) । (तत्पश्चात् मुनि का वेष धारण किये चार्वाक नाम का राक्षस प्रवेश करता है ।)

राक्षस—(मन मे) यह मैं सुयोधन का मित्र चार्वाक नाम का राक्षस हूँ । मैं पाण्डवो को धोखा देने के लिए घूम रहा हूँ । (प्रकट मे) मैं प्यासा हूँ । कोई मुझे जल और छाया देकर अनुगृहीत करे । (यह कहकर राजा के समीप जाता है) ।

(सब उठ खड़े होते है ।)

युधिष्ठिर—मुनि, मैं अभिवादन करता हूँ ।

राक्षस—यह शिष्टाचार का समय नही है । मुझे जल देकर अनुगृहीत कीजिये ।

युधिष्ठिर—मुनि, यह आसन (है) । बैठिये ।

राक्षस—(बैठकर) अब आप भी तो आसन ग्रहण कीजिये ।

युधिष्ठिर—(बैठकर) यहाँ कोई है ? जल लाओ ।

(सुराही लिए हुए प्रवेश करके)

कञ्चुकी—(समीप जाकर) महाराज, यह शीतल और सुगन्धित जल से पूर्ण सुराही है और यह पीने के लिए पात्र है ।

युधिष्ठिर—मुनि, प्यास का प्रतिकार कीजिए ।

राक्षस—(पैर धोकर आचमन करते हुए सोचकर) अरे, मैं समझता हूँ कि तुम क्षत्रिय हो ।

युधिष्ठिर—आप ठीक समझ रहे हैं । क्षत्रिय हूँ ।

काल. । समुदाचारस्य शिष्टाचारस्य ।] भृङ्गारः कनकालुका इत्यमरः. ॥ उदन्या

राक्षस.—सुलभश्च स्वजनविनाश सङ्ग्रामेषु प्रतिदिनमतो नादेयं भवद्भ्यो जलादिकम्। भवतु। छाययैवानया सरस्वतीशिशिरतरङ्गस्पृशा मरुता चानेन विगतक्लमो भविष्यामि।

द्रौपदी—बुद्धिमतिके, वीजय महर्षिमनेन तालवृन्तेन।

[बुद्धिमदिए, वीएहि महेसिं इमिणा तालविन्तेण।]

(चेटी तथा करोति)

राक्षस—भवति, अनुचितोऽयमस्मासु समुदाचारः।

युधिष्ठिर.—मुने, कथय कथमेवं भवान्परिश्रान्तः।

राक्षस—मुनिजनसुलभेन कौतूहलेन सत्र भवतां महाक्षत्रियाणां द्वन्द्वयुद्धमवलोकयितुं पर्यटामि समन्तपञ्चकम्। अद्य तु बलवदया शरदातपस्यापर्याप्त मेवावलोक्य गदायुद्धमर्जुनसुयोधनयारागतोऽस्मि।

(सर्वे विषादं नाटयन्ति)

काञ्चुकी—मुने, न खल्वेवम्। भीमसुयोधनयोरिति कथय।

राक्षसः—आः, अविदितवृत्तान्त एव कथं मामाक्षिपसि।

युधिष्ठिरः—महर्षे, कथय कथय।

राक्षस.—क्षणमात्रं विश्रम्य सर्वं कथयामि भवतो न पुनरस्य वृद्धस्य।

युधिष्ठिरः—कथय किमर्जुनसुयोधनयोरिति।

राक्षस—ननु पूर्वमेव कथितं मया प्रवृत्तं गदायुद्धमिति।

युधिष्ठिरः—न भीमसुयोधनयोरिति।

राक्षस—वृत्त सत्।

(युधिष्ठिरो द्रौपदी च मोहमुपगतौ)

काञ्चुकी—(सलिलेनासिच्य) समाश्वसितु देवो देवी च।

चेटी—समाश्वसितु समाश्वसितु देवी। [समस्ससदु समस्ससदु देवी।]

तु पिपासा तृट् इत्यमरः। स्वजनविनाशः अतोऽशौचसम्भावनेति भावः। सरस्वत्याः शिशिरांस्तरङ्गान्स्पृशतीति तेन]-सरस्वती नदीभेदः। हञ्जे बुद्धिमतिके वीजयतं महर्षिमेतेन तालवृन्तकेन। व्यजनं तालवृन्तकम् इत्यमरः। [द्वन्द्वयुद्धमिति जातावेकवचनम्। शरदातपस्य शरत्सूर्यातपस्य। अपर्याप्तिमसमा-

राक्षस—प्रतिदिन युद्ध मे बन्धु-मरण सुलभ है, इसलिए आप से जल आदि का ग्रहण नहीं करना चाहिए। अच्छा। इस छाया से और सरस्वती (नदी) की शीतल तरङ्गों को छूने वाले इस वायु से ही थकान दूर कर लूँगा

द्रौपदी—बुद्धिमति के, इस पंखे से महर्षि की हवा करो।

(चेटी वैसा ही करती है)

राक्षस—आदरणीय, हमारे प्रति यह शिष्टाचार उचित नहीं।

युधिष्ठिर—मुनि महाराज, बतलाइये, आप इस प्रकार कैसे थक गये ?

राक्षस—मुनि जन सुलभ उत्सुकता के कारण मैं आदरणीय महान् क्षत्रियों का द्वन्द्व-युद्ध देखने के लिये समन्तपञ्चक में घूम रहा हूँ। आज तो शरद् ऋतु की धूप के तेज होने के कारण अर्जुन और सुयोधन के गदा-युद्ध को अधूरा ही देखकर आ गया हूँ।

(सब दुःख का अभिनय करते है)

कञ्चुकी—मुनि, ऐसा नहीं है। 'भीम और सुयोधन का (गदा-युद्ध) ऐसा' कहिये।

राक्षस—आह ! बिना बात जाने ही मुझ पर आक्षेप कैसे कर रहे हो ?

युधिष्ठिर—महर्षि, कहिये, कहिये।

राक्षस—क्षण-भर विश्राम करके सब कुछ आप से कह दूँगा, लेकिन इस बूढ़े से नहीं।

युधिष्ठिर—कहिये, अर्जुन और सुयोधन का क्या (हुआ) ?

राक्षस—मैंने पहले ही बतला तो दिया कि 'गदा-युद्ध हुआ'।

युधिष्ठिर—भीम और सुयोधन का नहीं ?

राक्षस—वह हुआ था।

(युधिष्ठिर और द्रौपदी मूर्च्छित हो जाते है)

कञ्चुकी—(जल छिड़ककर) महाराज और महारानी धैर्य रखें।

चेटी—धैर्य रखिये, महारानी धैर्य रखिये।

(उभौ संज्ञां लभेते)

युधिष्ठिरः—किं कथयसि मुने वृत्तं भीमसुयोधनयोर्गदायुद्धमिति ।

द्रौपदी—भगवन् कथय कथय किं वृत्तमिति ।

[भअवं, कहेहि किं वृत्तंत्ति ।]

राक्षस—कञ्चुकिन्, को पुनरेतौ ।

कञ्चुकी—ब्रह्मन्, एष देवो युधिष्ठिरः । इयमपि पाञ्चालराजतनया ।

राक्षस—आ, दारुणमुपक्रान्तं मया नृशंसेन ।

द्रौपदी—हा नाथ भीमसेन । (इति मोहमुपगता) [हा णाह भीमसेण ।]

कञ्चुकी—किं नाम कथितम् ।

चेटी—समाश्वसितु समाश्वसितु देवी । [समस्ससदु समस्ससदु देवी ।]

युधिष्ठिरः—(सास्रम्) ब्रह्मन्,

पदे संदिग्ध एवास्मिन्दुःखामास्ते युधिष्ठिरः ।
वत्सस्य निश्चिते तत्त्वे प्राणत्यागादयं सुखी ॥१४॥

राक्षस—(सानन्दमात्मगतम्) अत्रैव मे यत्नः (प्रकाशम्) यदि त्ववश्य कथनीयं तदा संक्षेपतः कथयामि । न युक्तं बन्धुव्यसनं विस्तरेणावेदयितुम् ।

युधिष्ठिरः—(अश्रूणि मुञ्चन्)

सर्वथा कथय ब्रह्मन्संक्षेपाद्विस्तरेण वा ।
वत्सस्य किमपि श्रोतुमेष दत्तः क्षणो मया ॥१५॥

राक्षसः—श्रूयताम्,

तस्मिन् कौरवभीमयोर्गुरुगदाघोरध्वनौ संयुगे ।

प्तम् । [यद्भूट्टिनी समाज्ञापयति । बलवत्तर इति स्वार्थिकस्तरप् ।। भवतः कृते इति शेषः । कथय किं वर्तत इति । [उपक्रान्तं प्रस्तुतं । नृशंसेन क्रूरेण ।]

पद इति । संदिग्धे [अस्फुटार्थे] एव पदे भवदुक्ते युधिष्ठिरो दुःखं यथा स्यादेवमास्ते तिष्ठति । [तत्त्वे निश्चिते यथार्थावस्थायां, निश्चयेन ज्ञातायाम् ।] ॥१४॥

(दोनों चेतना प्राप्त करते हैं)

युधिष्ठिर—मुनि, क्या कहते हो कि भीम और सुयोधन का गदा-युद्ध हो चुका।

द्रौपदी—भगवन् बतलाइये, बतलाइये क्या हुआ ?

राक्षस—कञ्चुकी, ये दोनों है कौन ?

कञ्चुकी—ब्रह्मन्, यह भगवान् युधिष्ठिर है, और यह पाञ्चाल की राजकुमारी।

राक्षस—आह ! मुझ निर्दय ने कटु बात आरम्भ कर दी।

द्रौपदी—हाय ! नाथ भीमसेन। (मूर्च्छित हो जाती है)।

कञ्चुकी—आपने क्या कहा ?

चेटी—धैर्य रखिए, महारानी धैर्य रखिए।

युधिष्ठिर—(आंसू भरकर) ब्रह्मन्,

(वृत्तम्) इस सदिग्ध पद के कारण ही युधिष्ठिर दुखी है। वत्स के विषय मे यथार्थ के निश्चित हो जाने पर वह प्राण त्याग देने से सुखी (हो जायेगा) ॥१४॥

राक्षस—(आनन्द के साथ मन में) इसके लिए ही मेरा प्रयत्न है। (प्रकट मे) यदि तो अवश्य कहना ही पड़ेगा तब सक्षेप से कह देता हूँ। (क्योंकि) बन्धु की विपत्ति को विस्तार से कहना ठीक नही है।

युधिष्ठिर—(आंसू बहाते हुए)।

हे ब्राह्मण सक्षेप से या विस्तार से किसी भी प्रकार कह डालिए। मैने वत्स के सम्बन्ध मे कोई भी (अमङ्गल) सुनने के लिए यह क्षण दे दिया है ॥१५॥

राक्षस—सुनिये—

दुर्योधन और भीम का वह भारी गदाओ की भयङ्कर ध्वनि वाला युद्ध होने पर—

सर्वथेति। किमपीत्यनेनामङ्गल्यं निवारयति। क्षणोऽवमेरः। सर्वथा श्रोष्यामीत्यर्थः ॥१५॥

तस्मिन्निति। घोरं भयानकं [गुर्व्योर्महत्योः गदाप्रहारणमिति यावत्।

द्रौपदी—(सहसोत्थाय) ततस्ततः [तदो तदो ।]

राक्षसः—(स्वागतम् कथं पुनरनयोर्लब्धसंज्ञतामपनयामि ।

सीरी सत्वरमागतश्चिरमभूत्तस्याग्रतः सङ्गरः ।
आलम्ब्य प्रियशिष्यतां तु हलिना संज्ञा रहस्याहिता
यामासाद्य कुरूत्तमः प्रतिकृतिं दुःशासनारौ गतः ॥१६॥

युधिष्ठिरः—हा वत्स वृकोदर । (इति मोहमुपगतः)

द्रौपदी—हा नाथ भीमसेन, हा मम परिभवप्रतीकारपरित्यक्तजीवित, जटासुरबकहिडिम्बकिर्मीरकीचकजरासंधनिषूदन, सौगन्धिकाहरणचाटुकार, देहि मे प्रतिवचनम् । (इति मोहमुपगता) [हा णाह भीमसेण हा मह परिभवपडिआरपरिच्चत्तजीविअ, जडासुरबअहिडिम्बकिम्मीरकीचअजरासंधणिसूदण सोअन्धिआहरणचाडुआर देहि मे पडिवअणम् ।]

कञ्चुकी—(सास्रम्) हा कुमार भीमसेन, धार्तराष्ट्रकुलकमलिनीप्रालेयवर्ष (ससंभ्रमम्) समाश्वसितु महाराजः ।, भद्रे, समाश्वासय स्वामिनीम् । महर्षे, त्वमपि तावदाश्वासय महाराजम् ।

राक्षसः—(स्वगतम्) आश्वासयामि प्राणान्परित्याजयितुम् । (प्रकाशम्) भो भीमाग्रज, क्षणमेकमाधीयतां समाश्वासः । कथाशेषोऽस्ति ।

युधिष्ठिरः—(समाश्वस्य) महर्षे, किमस्ति कथाशेष इति ।

द्रौपदी—(प्रतिबुध्य) भगवन्, कथय कीदृशः कथाशेष इति ।

[भअवं कहेहि कीदिसो कहासेसो त्ति ।]

कञ्चुकी—कथय कथय ।

राक्षसः—ततश्च हते तस्मिन्सुक्षत्रिये वीरसुलभां गतिमुपगते समप्रसंगलितं भ्रातृवधशोकजं वाष्पं प्रमृज्य भ्रातृवधशोकादपहाय गाण्डीवं, प्रत्यग्रक्षतजच्छटा-

घोरः द्वन्द्वनियमे यस्मिन् । सीरी बलभद्रः ।] प्रियः शिष्यो यस्येति प्रियशिष्यः । तस्य भावः प्रियशिष्यता ताम् । [संज्ञा हस्तचालयेन प्रहारस्थानसूचनम् ।] प्रतिकृतिं प्रतीकारम् । अर्थात् दुःशासनवधस्य । दुःशासनारौ भीमे । तथा च भीमस्तेन हत इति भावः ॥१६॥

द्रौपदी—(वेग से उठकर) इसके बाद ? इसके बाद ?

राक्षस—(मन में) फिर इन दोनों की चेतना कैसे करूँ;

तब हलधारी (बलराम) जल्दी से वहाँ आ गया; उसके सामने देर तक युद्ध होता रहा; लेकिन हलधारी ने शिष्य (दुर्योधन) के प्रति पक्षपात का आश्रय लेकर चुपके-से संकेत कर दिया, जिस (संकेत) को पाकर कुरुओं में श्रेष्ठ ने दुःशासन के शत्रु से प्रतिशोध पा लिया ॥१६॥

युधिष्ठिर—हाय, वत्स भीम। (यह कहकर मूच्छित हो जाता है)।

द्रौपदी—हाय, नाथ भीमसेन! हाय मेरे अपमान का बदला लेने में प्राणत्याग करने वाले! जटासुर, बक हिडिम्ब किर्मीर कीचक और जरासन्ध को मारने वाले, कमल लाकर प्रसन्न करने वाले, मुझे उत्तर दीजिये। (यह कहकर मूच्छित हो जाती है)।

कञ्चुकी—(आँसू भरकर) हाय, कुमार भीमसेन, कौरव-कुल-रूपी कमलिनी के लिए हिम-वर्षा-सदृश! (घबराहट के साथ) महाराज धैर्य धारण कीजिए। भद्रे, स्वामिनी को धैर्य बँधाइये। महर्षि, आप भी महाराज को सान्त्वना देवें।

राक्षस—(मन में) प्राण-त्याग कराने के लिये धैर्य बंधाता हूँ। (प्रकट में) हे भीम के बड़े भाई, क्षण-भर धैर्य रखिये। (अभी कुछ) कहानी शेष है।

युधिष्ठिर—(संभलकर) महर्षि क्या कहानी शेष है ?

द्रौपदी—(होश में आकर) भगवन कहिये क्या कहना शेष ?

कञ्चुकी—कहिये, कहिये।

राक्षस—तब उस वीर क्षत्रिय के मारे जाने और सुलभ गति पा लेने पर भाई के वध के शोक से उत्पन्न, पूर्णरूप से बहते हुए आँसुओं को पोंछकर

हा नाथ मदीयपरिभव०—हा जटासुर०—हा सौगन्धिकाहरणात्मचाटुकार भवासि। अत्र जटासुरो दैत्यभेदः। बको दैत्यभेदः। सौगन्धिकं कमलम्। गङ्गायाः सुवर्णकमलाहरणाद् द्रौपद्या आराधनं तत्र चाटुकारः प्रेम यस्य। [यद्वा तेन चाटुकार। धार्तराष्ट्राणां कुलं तदेव कमलिनी तस्याः शलेयवर्षं हिमवर्षं। तद्वन्नाशकर। हिमवृष्ट्या कमलिनी विनिश्यन्तीति प्रसिद्धिः।] गतिं मरणरूपाम्। [समग्रं यथा तथा सगलितम्। प्रत्यग्रं नूतनं यत्क्षतजं रक्तं तस्य

चर्चितां तामेव गदां भ्रातृहस्तादाकृष्य निवार्यमाणोऽपि संधित्सुना वासुदेवेन आगच्छागच्छेति सोपहासं भ्रमितगदाझङ्कारमूर्च्छितगम्भीरवचनध्वनिनाहूयमानः कौरवराजेन, तृतीयोऽनुजस्ते किरीटी योद्धुमारब्धः। अकृतिनस्तस्य गदाघातान्निधनमुत्प्रेक्षमाणेन कामपालेनार्जुनपक्षपाती वैवकीसूनुरतिप्रयत्नात्स्वरथमारोप्य द्वारकां नीतः।

युधिष्ठिरः—साधु भो अर्जुन, सदैव प्रतिपन्ना वृकोदरानुगमनपदवी गाण्डीवं परित्यजता। अहं पुनः केनोपायेन प्राणापगममहोत्सवमुत्सहिष्ये।

द्रौपदी—हा नाथ भीमसेन, न युक्तमिदानीं ते कनीयांसं भ्रातरमशिक्षितं गदायां दारुणस्य शत्रोरभिमुखं गच्छन्तमुपेक्षितुम्। (इति मोहमुपगता) [हा णाह भीमसेण ण जुत्तं दाणिं दे कणीअसं भादरं असिक्खिदं गदाए दारुणस्स सत्तुणो अहिमुहं उवेक्खिदुम्।]

राक्षसः—ततश्चाहं।

युधिष्ठिरः—भवतु, मुने, किमतः परं श्रुतेन। हा तात भीमसेन, कान्तारव्यसनबान्धव, हा मच्छरीरस्थितिविच्छेदकातर, जतुगृहविपत्समुद्रतरणयानपात्र हा किर्मीरहिडिम्बासुरजरासंधविजयैकमल्ल, हा कीचकसुयोधनानुजकमलिनीकुञ्जर हा द्यूतपणप्रणयिन् हा मदाज्ञासम्पादक हा कौरववनदावानल,

निर्लज्जस्य दुरोदरव्यसनिनो वत्स त्वया सा तदा
भक्त्या मे समदद्विपायुतबलेनाङ्गीकृता दासता।

छदया समूहेन चर्चितां लिप्ताम्।] संधित्सुना संधिं कर्तुमिच्छुना। [भ्रमिता या गदा तस्या झङ्कारेण मूर्च्छितो वृद्धिं प्राप्तो यः गम्भीरवचनध्वनिस्तेन। अकृतिनो गदायुद्धेऽनभ्यपाटवस्य। अकृतहस्तस्येति यावत्। उत्प्रेक्षमाणेनापेक्षमाणेन। कामपालेन बलभद्रेण। वृकोदरस्य वृकोदरेण भीमेन गता पदवी परलोकमार्गः इत्यर्थः। गाण्डीवं परित्यजता—सति हि गाण्डीवे दुर्योधनकृतस्य पराभवस्याशक्यत्वाद् भीमानुमरणस्य दुर्घटत्वादिति भावः।' हे नाथ भीमसेन युक्तमिदानीं ते कनीयांसं भ्रातर धनुर्धरं गदाशिक्षाविमुखं दारुणस्य शत्रोरभिमुखं गच्छन्तं निवारयितुम्। अत्र कनीयांसं कनिष्ठम्। कान्तारो वर्त्म दुर्गमम् इत्यमरः। [तत्र यानि व्यसनानि आपदस्तत्र बान्धव साहाय्यकारिन्।]

भाई के वध के शोक के कारण गाण्डीव को छोड़कर, और ताजे रुधिर के समूह से लिप्त उस ही गदा को भाई के हाथ से लेकर, सन्धि की इच्छा वाले वसुदेव के द्वारा रोके जाने पर भी, घुमाई गई गदा की झङ्कार से बढ़ी हुई गम्भीर वचनों की ध्वनि वाले कौरव-राज द्वारा हँसी के साथ "आओ, आओ" इस प्रकार ललकारा गया तीसरा (पाण्डव), आपका छोटा भाई, किरीट (मुकुट) धारण करने वाला (अर्जुन) युद्ध करने लगा। (गदा में) अनभ्यस्त उस (अर्जुन) की गदा के प्रहार से मृत्यु की संभावना करता हुआ बलराम अर्जुन के पक्षपाती देवकी पुत्र को बड़े प्रयत्न से अपने रथ में बैठाकर द्वारका ले गया।

युधिष्ठिर—ठीक, अर्जुन, तूने गाण्डीव को त्यागकर तुरन्त भीम का मार्ग अपना लिया। लेकिन मैं किस उपाय द्वारा प्राण-त्याग के महोत्सव की अभिलाषा करूँ।

द्रौपदी—हाय, नाथ भीमसेन, अब तुम्हें गदा (युद्ध) में अनभ्यस्त, क्रूर शत्रु के सम्मुख जाते हुए छोटे भाई की उपेक्षा करनी उचित नहीं थी। (मूच्छित हो जाती है)।

राक्षस—और इसके बाद में—

युधिष्ठिर—मुनि रहने दीजिए, इसके आगे सुनकर क्या (होगा) ? हाय ! प्रिय भीमसेन, वनवासरूपी विपत्ति के बान्धव, हाय ! मेरे शरीर की स्थिति के भङ्ग से कातर, लाक्षागृह की विपत्ति रूपी समुद्र को पार करने में नौका-भूत; हाय ! किर्मीर, हिडिम्ब, जटासुर और जरासन्ध को जीतने में अद्वितीय मल्ल; हाय ! कीचक और सुयोधन के छोटे भाइयों रूपी कमलिनियों के लिये गज समान; हाय ! जूए में (मेरी) शर्त को स्वीकार कर लेने वाले; हाय ! मेरी आज्ञा के पालन करने वाले; हाय ! कौरव-रूपी वन के वनाग्नि,

हे वत्स, द्यूत के व्यसनी मुझ निर्लज्ज की भक्ति के कारण दस सहस्र मतवाले हाथियों के बल वाले तुमने तब वह दासता स्वीकार की थी; मैंने उससे

शरीरस्थितिर्जीवनम्। [तस्य विच्छेदात्कातर।] यानपात्रं तु पोतः इत्यमरः। किर्मीरो दैत्यभेदः। [०नुजा एव कमलिन्यस्तासां कुञ्जर उन्मूलयितः।]

निर्लज्जस्येति। हे वत्स। दुरोदरं द्यूतम्। पणे द्यूते दुरोदरम् इत्यमरः। तत्र व्यसनिनः आसक्तिमतः मे भवत्या। समदानां द्विपानामयुतं तस्येव बलं

किं नामापकृतं मयातदधिकंत्वय्यद्य यद्गम्यते ।
त्यक्त्वाऽनाथमबान्धवं सपदि मां प्रीतिः क्व ते साऽधुना ॥१७॥

द्रौपदी—(सञ्ज्ञामुपलभ्योत्थाय च) महाराज, किमेतद्वर्तते ।

[महाराअ, किं एवं वट्टइ ।]

युधिष्ठिरः—कृष्णे, किमन्यत् ।

स कीचकनिषूदनो बकहिडिम्बकिर्मीरहा
मदान्धमगधाधिपद्विरदसन्धिभेदाशनिः ।
गदापरिघशोभिना भुजयुगेन तेनान्वितः
प्रियस्तव ममानुजोऽर्जुनगुरुर्गतोऽस्तं किल ॥१८॥

द्रौपदी—नाथ भीमसेन, त्वया किल मे केशाः संयमितव्याः । न युक्तं वीरस्य क्षत्रियस्य प्रतिज्ञातं शिथिलयितुम् । तत्प्रतिपालय मां यावदुपसर्पामि । (पुनर्मोहमुपगता) [णाह भीमसेण, तुए किल मे केसा संजमिदव्वा । ण जुत्तं वीररस्स खत्तिअस्स पडिण्णाद सिढिलेदुम् । ता पडिवालेहि मं जाव उवसप्पामि]

युधिष्ठिरः—(आकाशे) अम्ब पृथे, श्रुतोऽयं तव पुत्रस्य समुदाचारः । मामेकमनाथं विलपन्तमुत्सृज्य क्वापि गतः । तात जरासंधशत्रो, किं नाम वैपरीत्यमेतावता कालेनाल्पायुषि त्वयि समालोकितं जनेन । अथवा मयैव बहूपलब्धम् ।

दत्त्वा मे करदीकृताखिलनृपां यन्मेदिनीं लज्जसे
द्यूते यच्च पणीकृतोऽपि हि मया न क्रुध्यसि प्रीयसे ।

यस्य तेन । दशसहस्रसमदहस्तिप्राणासारेणेत्यर्थः ।] त्वया तदा सा प्रसिद्धा दासताङ्गीकृतासीत् । [सीदतेति पाठे क्लेशमनुभवता त्वया ।] किं नामेति । अतोऽधिकं त्वयि मयाद्य किमपकृतं तत्प्रकाशयेत्यर्थः ॥१७॥

किं नामैतद्वर्तते ।

स इति । मगधाधिपो जरासंधः । [मदान्धो दर्पोद्धतो मगधाधिप एव द्विरदो हस्ती तस्य सन्धिभेदे अशनिर्वज्र इव । गदा परिघ इव तेन शोभते तादृशेन । [०पाठान्तरे) गदापरिघः पाणौ यत्र तादृशेन । पाणिः करः । भुजयुगेनेति

अधिक तुम्हारा आज क्या उपकार कर दिया कि जो मुझ अनाथ और बान्धव-हीन को छोड़कर जल्दी से चले जा रहे हो ? अब तुम्हारा वह प्रेम कहाँ (चला गया) ॥१७॥

द्रौपदी—(चेतना प्राप्त करके और उठकर) महाराज, यह क्या है ?

युधिष्ठिर—द्रौपदी, और क्या—

कीचक को मारने वाला, बक, हिडिम्ब और किर्मीर का हनन करने वाला मद में अन्धे मगध-देश के राजा (जरासन्ध) रूपी हाथी की सन्धि छिन्न करने में वज्र के समान, परिघ सदृश गदा से शोभित भुज-युगल से युक्त, तेरा प्रिय, मेरा छोटा भाई और अर्जुन का बड़ा (भाई) वह अस्त को प्राप्त हो गया है ॥१८॥

द्रौपदी—नाथ भीमसेन, आपको तो मेरे केश बाँधने थे। वीर क्षत्रिय को प्रतिज्ञा किये हुए कार्य को छोड़ना उचित नहीं है। इसलिये मेरी प्रतीक्षा कीजिये मैं अभी आती हूँ। (फिर मूच्छित हो जाती है)।

युधिष्ठिर—(आकाश की ओर देखकर) माता पृथा, आपने अपने पुत्र का यह शिष्टाचार सुना—मुझ अकेले, अनाथ, विलाप करते हुए को छोड़कर कहीं चला गया। प्रिय जरासन्ध-रिपु, अब तक लोगों ने तुझे अल्प-आयु वाले के विषय में क्या विरुद्ध (आयु-विरोधी) बात देखी थी ? अथवा मैंने ही बहुत कुछ देख लिया था।

जो तू मुझे पृथ्वी जिसके समस्त राजा (मुझे) कर देने वाले बना दिये थे, देकर लज्जित होता रहा; जो मेरे द्वारा जूए में बाजी पर रक्खा जाने पर तू

लक्षणे तृतीया। किल प्रसिद्धौ ॥१८॥

हा नाथ न युक्तमिदानीं भवतो वीरस्य [न तु निर्बलस्य] मा क्षणमात्रं··· यावत्त्वामनुगच्छामि। पृथे पृथानामधेयि। तात मान्य। जरासधशत्रो भीम। बहु स्वल्पायुःसूचकम्।

तदेवाह। दत्त्वेति। करदो राजभागदाता। [न करदा अकरदाः। अकरदा करदाः सम्पद्यमानाः कृताः करदीकृता अखिला नृपा यस्या तां। लज्जसे इति यत्तदेकं विनश्वरस्य ते चिह्नमित्यर्थः। बहुगुणस्य शीघ्रं विनश्वरत्वात्। एव-

स्थित्यर्थं मम मत्स्यराजभवने प्राप्तोऽसि यत्सूदतां
वत्सैतानि विनश्वरस्य सहसा दृष्टानि चिह्नानि ते ॥१६॥

मुने, किं कथयसि । (तस्मिन्कौरवभीमयोः ६।१६ इत्यादि पठति)

राक्षसः—एवमेतत् ।

युधिष्ठिरः—धिगस्मद्भागधेयानि । भगवन्कामपाल, कृष्णाग्रज, सुभद्राभ्रातः

ज्ञातिप्रीतिर्मनसि न कृता क्षत्रियाणां न धर्मो
रूढं सख्यं तदपि गणितं नानुजस्यार्जुनेन ।
तुल्यः कामं भवतु भवतः शिष्ययोः स्नेहबन्धः
कोऽयं पन्था यदसि विमुखो मन्दभाग्ये मयीत्थम् ॥२०॥

(द्रौपदीमुपगम्य) अयि पाञ्चालि, उत्तिष्ठ । समानदुःखावेवावां भवावः । मूर्च्छया किं मामेवमनिसंधत्से ।

द्रौपदी—(लब्धसंज्ञा) बध्नातु नाथो दुर्योधनरुधिरार्द्रेण हस्तेन दुःशासनविमुक्तं मे केशहस्तम् । हञ्जे बुद्धिमतिके, तव प्रत्यक्षमेव नाथेन प्रतिज्ञातम् । (कञ्चुकिनमुपेत्य) आर्य, किं संदिष्टं तावन्मे देवेन देवकीनन्दनेन पुनरपि केशरचनारभ्यतामिति । तदुपनय मे पुष्पदामानि । विरचय तावत्कबरीम् । कुत्र भगवतो नारायणस्य वचनम् । न खलु सोऽलीकं संदिशति । अथवा किं मया मन्दभाग्यया भणितं । अचिरगतमार्यपुत्रमनु गमिष्यामि ।

[संतप्तया भणितम् । अचिरगतमार्यपुत्रमनुगमिष्यामि । (युधिष्ठिरमुपगम्य) मन्यत्र ।] प्रीयसे प्रीतो भवसि । स्थित्यर्थं वासार्थम् । मत्स्यराजो विराटः । सूदस्तु सूपवत्सूपकारेऽपि यञ्जनेऽपि च । इति विश्वः । हे वत्स एतानि चिह्नानि ते विनाशशीलस्य दृष्टानि । तथा च मम भाग्यदोषाद् गुणा एव ते दोषा वृत्ता इति भावः ॥१६॥

कामपालो हलायुधः । इत्यमरः ।

ज्ञातीति । सुभद्राभ्रातृत्वेन विशेषणात्सुभद्राद्वारा [ज्ञातिप्रीतिर्मनसिनकृता चिन्तिता । क्षत्रियाणां धर्मो मनसि न कृत. । स च वीरयोः समदृष्टिता । अनुजस्य श्रीकृष्णस्य अर्जुनेन सह रूढमुपचितं सख्यं न गणितं मनस्याहितम् । शिष्ययोर्भीमसुयोधनयोः । (मन्दभाग्ये मयि विमुखोऽस्मदहितकरणात्प्रतिकूलः

क्रुद्ध न हुआ, (प्रत्युत) प्रसन्न ही रहा, जो तू मत्स्यदेश के राजा (विराट) के भवन मे मेरे निवास के लिये रसोइया बना, हे वत्स, (मैंने) तुझ सहसा नष्ट होने वाले के ये लक्षण देख लिये थे ॥१६॥

हे मुनि क्या कह रहे हो ? (तस्मिन् कौरवभीमयोः ,,१६ इत्यादि श्लोक का पाठ करता है)।

राक्षस— ऐसा ही है।

युधिष्ठिर—हमारे भाग्य को धिक्कार है। भगवान् बलराम् कृष्ण के बडे भाई, सुभद्रा के भाई,

(आपने) सम्बन्धियो के प्रेम का मन में विचार नही किया, क्षत्रियो के धर्म का विचार नहीं किया; अर्जुन के साथ अपने छोटे भाई की प्रसिद्ध गाढ मैत्री की भी चिन्ता न की। दोनों शिष्यों के प्रति आपका समान अनुराग हो सकता था, लेकिन (आपका) यह कैसा मार्ग है कि जो मुझ भाग्यहीन के प्रतिकूल हो गये हो ॥२०॥

(द्रौपदी के समीप जाकर) अरी पाञ्चाली, उठो। हम दोनों समान दुःख वाले होवें। मूर्छा द्वारा तुम इस प्रकार मुझे क्यों धोखा दे रही हो ?

द्रौपदी—(चेतना पाकर) स्वामी, दुर्योधन के रुधिर से गीले हाथ से दुःशासन द्वारा खोले गये मेरे केशों को बाँधे। सखी बुद्धिमतिका, तेरे सामने ही स्वामी ने प्रतिज्ञा की थी। (कञ्चुकी के समीप जाकर) आर्य, भगवान् वासुदेव ने मेरे लिये क्या संदेश भेजा था कि फिर से केशों का प्रसाधन प्रारम्भ कर दिया जाय। तो मेरे लिये सुमनों की माला लाओ। तब (मेरे लिये) वेणी बनाओ। भगवान् नारायण के वचन का पालन करो। वह कभी असत्य संदेश नहीं देंगे। अथवा मुझ दुःखी ने क्या कह डाला। अभी गये हुए आर्यपुत्र का

असीति कोऽयं पन्थ। न शिष्टसमत इति भावः।] ॥२०॥

अतिसंधत्से अनन्वितं करोषि। [-केशहस्तं केशकलापम्।] तवापि प्रत्यक्षमेव तेन...देवकीनन्दनेन पुनरपि केशबन्धनमारभ्यतामिति।] केशरचना केशसंस्करणम्।] तदुपनय मे पुष्पदामानि तावत्। विरचय-; मे कबरीम्। [अलीकं मिथ्या]। आदीप्यतां चिता। त्वमपि क्षत्रियधर्ममनुवध्नन्नेव तस्य

महाराज, आदीपय मे चिताम् । त्वमपि क्षत्रधर्ममनुवर्तमान एव नाथस्य जीवितहरस्याभिमुखो भव । अथवा यत्ते रोचते ।

[बन्धुदु णाहा दुज्जोहरणरुधिलाद्देण हत्थेण दुस्सासणविमुक्कं केसहत्थम् । हञ्जे बुद्धिमदिए, तव पञ्चक्खं एव्व णाहेण पडिण्णादम् । अज्ज, किं संदिट्ठं दाव मे देवेण देवकीनन्दणेण पुणो वि केसरअणा आरम्भीअदु त्ति । ता उवणेहि मे पुप्फदामाइं । विरएहि दाव कवरीम् । करेहि भअवदो णाराअणस्स वअणम् । ण क्खु सो अलीअं संदिसदि । अहवा किं मए संतत्ताए भणिदम् । अचिरगदं अज्जउत्तं अणुगमिस्सम् । महाराअ, आदीवअ मे चिदाम् । तुमं वि खत्तधम्मं अणुट्ठन्तो एव्व णाहस्स जीविदहरस्स अहिमुहो होहि । अहवा जं दे रोअदि ।]

युधिष्ठिरः—युक्तमाह पाञ्चाली । कञ्चुकिन्, क्रियतामियं तपस्विनी चितासंविभागेन सह्यवेदना । ममापि सज्जं धनुरुपनय । अलमथवा धनुषा ।

तस्यैव देहरुधिरोक्षितपाटलाङ्गी-
मादाय संयति गदामपविध्य चापम् ।
भ्रातृप्रियेण कृतमद्य यदर्जुनेन
श्रेयो ममापि हि तदेव कृतं जयेन ॥१२॥

राक्षसः—राजन्, रिपुंजयविमुख ते यदि चेतस्तदा यत्र तत्र वा प्राणत्यागं कुरु । वृथा तत्र गमनम् ।

कञ्चुकी—धिङ् मुने, राक्षससदृशं हृदयं भवतः ।

राक्षसः—(सभयं स्वगतम्) किं ज्ञातोऽहमनेन । (प्रकाशम्) भो कञ्चुकिन् तयोर्गदया खलु युद्धं प्रवृत्तमर्जुनदुर्योधनयोः । जानामि च तयोर्गदायां भुजसारम् । दुःखितस्य पुनरस्य राजर्षेरपरमनिष्टश्रवणं परिहरन्नेव ब्रवीमि ।

युधिष्ठिरः—(बाष्पम् विसृजन) साधु, महर्षे, साधु । सुस्निग्धमभिहितम् ।

कञ्चुकी—महाराज, किं नाम शोकान्धतया देवेन देवकल्पेनापि प्राकृतेनैव त्यज्यते क्षात्रधर्मः ।

नाथजीवितहरस्य शत्रोरभिमुखो भव । [तपस्विनी वराकी । संविभागेन संप्रदानेन । चिताविरचनेनेति यावत् । सज्यमिति पाठे ज्यया मौर्व्या सहितम् ।]

अनुगमन करूँगी। (युधिष्ठिर के समीप जाकर) महाराज, मेरी चिता प्रज्वलित कीजिये। आप भी क्षत्रिय के धर्म का पालन करते हुए स्वामी के प्राणो का हरण करने वाले का सामना कीजिये। अथवा जो आपको अच्छा लगे।

युधिष्ठिर—पाञ्चाल की राजकुमारी ने (बिल्कुल) ठीक कहा है। कञ्चुकी, इस बेचारी को चिता देकर वेदना सहने योग्य कर दो। मेरे लिए भी धनुष तैयार करके लाओ। अथवा धनुष रहने दो—

भाई से प्रेम करने वाले अर्जुन ने धनुष को छोड़कर उसके ही शरीर के रुधिर से सिक्त और (इसलिये) लाल अङ्गो वाली गदा को लेकर जो आज युद्ध मे किया है, मेरे लिये भी वह श्रेयस्कर है। जय से बस करना चाहिये ॥२१॥

राक्षस—राजन्, यदि आपका चित्त शत्रु को जीतने से पराङमुख है। तो कहीं भी प्राण त्याग दीजिये। वहाँ जाना व्यर्थ है।

कञ्चुकी—मुनि, आपको धिक्कार है। आपका हृदय तो राक्षस के समान है।

राक्षस—(भयपूर्वक आत्मगत) क्या इसने मुझे पहचान लिया है? (प्रकट में) हे कञ्चुकी, अर्जुन और दुर्योधन में गदा-युद्ध प्रारम्भ हुआ था। मैं गदा में उन दोनो के भुज-बल को जानता हूँ। इस दुःखी राजर्षि को अन्य अनिष्ट श्रवण से बचाते हुए ही मैंने ऐसा कहा है।

युधिष्ठिर—(आँसू बहाते हुए) ठीक है' महर्षि, ठीक है। आपने हित की बात कही है।

कञ्चुकी—महाराज, शोक से अन्धा होने के कारण आप देव-तुल्य होकर भी सामान्य पुरुषों की भाँति क्षात्र-धर्म का परित्याग क्यों कर रहे है?

तस्येति। तस्यैव भीमस्यैव। [देहरुधिरेण उक्षित सिक्तमत एव भ्रातृप्रियेणार्जुनेनाद्य संयति युद्धे। पाटल रक्तमङ्गं यस्याः सा ताम्।] अपविध्य त्यक्त्वा।] यत् कृतं तद् गदामादाय युद्ध्वा जीवितत्यागः इत्यर्थः। तन्ममापि श्रेयः।] जयेन् कृतमलम् ॥१२॥

भुजसारमित्यन्तं कञ्चुकिने कथनम् [गदायां गदायुद्ध इति यावत्। भुजबल जानामि। तथाहि अर्जुनस्य हीनबलत्वात्तद्वधो निश्चित इत्यर्थः।] सस्निग्धं हितम्। देवकल्पेन देवतुल्येन।

युधिष्ठिरः—आर्य जयंधर,

शक्ष्यामि नो परिघपीवरबाहुदण्डौ
वित्तेशशक्रपुरदर्शितवीर्यसारौ ।
भीमार्जुनौ क्षितितले प्रविचेष्टमानौ
द्रष्टुं तयोश्च निधनेन रिपुं कृतार्थम् ॥२२॥

अयि पाञ्चालराजतनये, मद्दुर्नयप्राप्तशोच्यदशे, यथा संदीप्यते पावकस्तथा सहितावेव बन्धुजनं समाश्रयावः।

द्रौपदी—आर्य कुरु दारुसंचयम्। प्रज्वाल्यतां चिता त्वरते मे हृदयं नाथं प्रेक्षितुम्। (सर्वतोऽवलोक्य) कथं न कोऽपि महाराजस्य वचनं करोति। हा नाथ भीमसेन, तवैवेदं राजकुलं त्वया विरहितं परिजनोऽपि सांप्रतं परिहरति।

[अज्ज, करेहि दारुसंचअम्। पज्जलीअदु चिदा। तुवरदि मे हिअअं णाधं पेक्खिदुम्। कहं ण को वि महाराअस्स वअणं करेदि। हा णाह भीमसेण, तं एव्व एदं राअउलं तुए विरहिदं परिअणो वि सपदं परिहरदि।]

युधिष्ठिरः—महर्षे न कश्चिच्छृणोति तावदावयोर्वचनम्। तदिन्धनप्रदानेन प्रसादः क्रियताम्।

राक्षसः—मुनिजनविरुद्धमिदम् (स्वगतम्) पूर्णो मे मनोरथः। यावदनुपलक्षितः समिन्धयामि वह्निम्। (प्रकाशम्) राजन्, न शक्नुमो वयमिह स्थातुम्। (इति निष्क्रान्तः)

युधिष्ठिरः—कृष्णे, न कश्चिदस्मद्वचनं करोति। भवतु। स्वयमेवाहं दारुसंचयं कृत्वा चितामादीपयामि।

द्रौपदी—त्वरतां महाराजः। [तुवरदु तुवरदु महाराओ।]

(नेपथ्ये कलकलः)

शक्ष्यामिति। [परिघवदर्गला इव पीवरौ बाहू दण्डाविव बाहुदण्डौ ययोस्तौ। वित्तेशः कुवेरः शक्रश्च तयोः पुरयोः दर्शितं वीर्यसारं याभ्यां तौ। कुवेरपुरे सौगन्धिकाहरणकाले भीमेन अस्त्राधिगमार्थं शक्रपुरीं गतेन शक्राज्ञया निवातकवचान् नाम दैत्यान् हतवतार्जुनेन च।] क्षितितले प्रविचेष्टमानौ

युधिष्ठिर—आर्य जयन्धर,

मैं अर्गला के समान स्थूल भुज-दण्डो वाले और कुबेर तथा इन्द्र के नगरों में बल-पराक्रम दिखला चुके हुए भीम और अर्जुन को भूतल पर छटपटाते और शत्रु को उनकी मृत्यु से चरितार्थ हुआ नही देख सकूँगा ॥२२॥

अरी मेरी दुर्नीति से शोचनीय अवस्था को प्राप्त पाञ्चाल राजकुमारी, जैसे ही यह अग्नि प्रज्वलित हो, तब हम दोनो एक साथ ही बन्धुओ का (अनुगमन द्वारा) सम्मान करेंगे।

द्रौपदी—आर्य लकड़ियाँ एकत्र कीजिये। चिता प्रज्वलित की जाय, मेरा हृदय स्वामी को देखने के लिये उतावला है। (चारो ओर देखकर) कैसे ? कोई भी महाराज की आज्ञा का पालन नही कर रहा है। हाय स्वामी भीमसेन, तुमसे विहीन उस ही इस राजकुल को अब सेवक भी छोड़ रहे है।

युधिष्ठिर—महर्षि, कोई भी हम दोनो की बात नही सुन रहा है। इसलिए अब आप ही ईंधन देकर अनुगृहीत करें।

राक्षस—यह मुनि लोगों के प्रतिकूल है। (आत्मगत) मेरी कामना पूर्ण हुई। अब छिपकर अग्नि प्रज्वलित करूँगा। (प्रकट मे) राजन्, हम यहाँ न ठहर सकेंगे। (यह कहकर बाहर चला गया)।

युधिष्ठिर—द्रौपदी, कोई हमारी बात नही मान रहा ! । अच्छा । मैं स्वय ही लकड़ियाँ इकट्ठा करके चिता प्रज्वलित करता हूँ।

द्रौपदी—जल्दी कीजिये, महाराज जल्दी कीजिये।

(नेपथ्य मे कलंकल ध्वनि होती है)

मरणव्यथाकुलौ भूम्या लुठन्तौ ।] भीमार्जुनौ रिपुं च कृतार्थं कृतकृत्यं द्रष्टुं न शक्ष्यामि। शक्ष्यामि तौ इति पाठे तौ द्रष्टुं शक्ष्यामि [इति काकुना] न शक्ष्यामीत्यर्थः ॥२२॥

[मम दुर्नयः] मद्दुर्नयस्तेन प्राप्ता शोच्या दशा यां तथाभूते। सहितावेकत्र देहत्यागेनेत्यर्थः:] महाराज महाराज आनाय्यतां तावद्दारुसंचयः। संप्रज्वाल्यतां चिता। तदेव राजकुलमिदानी त्वया विरहितम्। परिजनोऽपि महाराजं परिभवति। समिन्धयामि दीपयामि। [दर्पः अस्य सजातः असौ दर्पित. । बलेन

द्रौपदी—(सभयमाकर्ण्य) महाराज, कस्याप्येष बलदर्पितस्य विषमः शङ्खनिर्घोषः श्रूयते। अपरमप्यप्रियं श्रोतुमस्ति निर्बन्धस्ततो विलम्ब्यते।
[महाराअ, कस्स वि एसो बलप्पिदस्स विसमो सङ्खणिग्घोसो सुणीअदि। अवरं वि अप्पिअं सुणिदुं अत्थि णिब्बन्धो तदो विलम्बीअदि।]

युधिष्ठिरः—न खलु विलम्ब्यते। उत्तिष्ठ।

(इति सर्वे परिक्रामन्ति)

युधिष्ठिरः—अयि पाञ्चालि, अम्बायाः सपत्नीजनस्य च किंचित्संदिश्य निवर्तय परिजनम्।

द्रौपदी—महाराज अम्बायै एवं संदेक्ष्यामि—यः स बकहिडिम्बकिर्मीरजटासुरजरासंधविजयमल्लस्ते मध्यमपुत्रः स मम हताशायाः पक्षपातेन परलोकं गतः इति। [महाराअ, अम्बाए एव्वं संदिसिस्सं—जो सो बअहिडिम्बकिम्मीरजडासुरजरासन्धविजअमल्लो दे मज्झमपुत्तो सो मम हदासाए पक्खवादेण परलोअं गदो' त्ति।]

युधिष्ठिरः—भद्रे बुद्धिमतिके, उच्यतामस्मद्वचनादम्बा।

येनासि तत्र जतुवेश्मनि दीप्यमाने
निर्वाहिता सह सुतैर्भुजयोर्बलेन।
तस्य प्रियस्य बलिनस्तनयस्य पाप-
मादमामि तेऽम्ब कथयेत्कथमीदृगन्यः ॥२३॥

आर्य जयंधर, त्वयापि सहदेवसकाशं गन्तव्यम्। वक्तव्यश्च तत्रभवान्पाण्डुकुलबृहस्पतिर्माद्रेयः कनीयानस्माकं सकलकुरुकुलकमलाकरदावानलो युधिष्ठिरः परलोकमभिप्रस्थितः प्रियानुजमप्रतिकूलं सततमाशंसनीयमसंमूढं व्यसनेऽभ्युदये च धृतिमन्तं भवन्तमविरलमालिङ्ग्य शिरसि चाघ्रायेदं प्रार्थयते—

दर्पितः बलदर्पितस्तस्य। विषमः कर्णकठोरः। निर्घोषः शब्दः। निर्बन्धः आग्रहः। दृढभिलाष इत्यर्थः। ततो विलम्ब्यते इति प्रश्नकाकुः। विजये मल्लः विजयमल्लः। [एतत्संदेष्टव्यम्—योऽसौ मल्लो मध्यमपुत्रस्ते स मम···।]

येनेति। तत्र वारणावते। तथा च भारतम्—भीमसेनस्तु राजेन्द्र भीमवेग-

द्रौपदी—(सुनकर भयपूर्वक)- महाराज, यह किसी बल के गर्वीले की भयङ्कर शङ्खध्वनि सुनाई दे रही है। (आपको) अन्य भी अप्रिय सुनने की अभिलाषा है, इसलिए (वह) विलम्ब किया जा रहा है।

युधिष्ठिर—नहीं, (अब कोई) विलम्ब नहीं है। उठो।

(सब जाते हैं)

युधिष्ठिर—अरी पाञ्चाली, अम्मा और सपत्नियों को कुछ संदेश देकर सेवकों को लौटा दो।

द्रौपदी—महाराज, अम्मा को इस प्रकार संदेश दूंगी–जो बक, हिडिम्ब, किर्मीर, जटासुर और जरासन्ध को जीतने वाला मल्ल, (आपका) मंझला पुत्र था, वह मुझ मूर्ख के प्रति प्रेम के कारण परलोक चला गया।

युधिष्ठिर—भद्र बुद्धिमतिका, मेरी ओर से अम्मा से कहना—

हे अम्ब, जिसने वहाँ वारणावत में लाक्षा-गृह के जलने पर तुम्हें पुत्रों सहित अपने भुजबल से निकाला था, (तुम्हारे) उस बलवान् प्रिय पुत्र के अमङ्गल के विषय में कह रहा हूँ। अन्य ऐसा कैसे कह सकता है ॥२३॥

आर्य जयन्धर, आप भी सहदेव के पास जायें और पाण्डु-वंश के बृहस्पति माद्री के पुत्र, हमारे छोटे भाई से कहें कि—सम्पूर्ण कुरुकुलरूपी कमलाकर में वनवह्नि सदृश, परलोक को प्रस्थान करने वाला युधिष्ठिर सर्वदा अनुकूल रहने वाले, प्रत्याशा के योग्य, विपत्ति में विमूढ न होने वाले और अभ्युदय में क्षमाशील आप प्रिय अनुज का गाढ आलिङ्गन करके और सिर सूँघकर यह याचना करता है—

पराक्रमः। जगाम भ्रातॄनादाय सर्वान्मातरमेव च ॥ आ. अ. १४८ श्लो. २०]
निर्वाहिता रक्षिताः। ते आख्यामि तुभ्यं कथयामि। अन्यो मत्त इति शेषः। मदन्यः क ईदृशं दुःखं कथयेत्। किं तु न कोऽपीत्यर्थः ॥२३॥

[सकलं कुरुकुलमेव कमलाकरस्तस्य दावानलः। अनेन आत्मनोऽसमीक्ष्यकारिता क्रूरता चोक्ता। न-ह्यमूढचेताः कमलानि दावानले प्रक्षिपेदिति भावः] प्रियश्चासावनुजश्चेति विग्रहः। बह्वच्यनियमः इति प्रियस्यैव पूर्वनिपातः। अर्थात्सहदेवम्। अप्रतिकूलमायत्तम्। आशंसनीयं प्रत्याशार्हम्। विपत्तावमूढममुग्धम्। [अभ्युदये धृतिमन्तं क्षमावन्तम्।] आघ्राय परिचुम्ब्य।

मम हि वयसा दूरेणाल्पः श्रुतेन समो भवा-
　　न्सहजकृतया बुद्धया ज्येष्ठो मनीषितया गुरुः ।
शिरसि मुकुलौ पाणी कृत्वा भवन्तमतोऽर्थये
　　मयि निरन्तरं नेयः स्नेहः पितुर्भव वारिदः ॥२४॥

अपि च । बाल्ये सावधिलस्य निरयाभिमानिनोऽस्मरसहृदयसारस्यापि नकुलस्य ममाज्ञया वचने स्थातव्यम् । तदुच्यतां नकुलः नानुगन्तव्यास्मत्पदवी । त्वया हि वत्स,

विस्मृत्यास्मान्श्रुतिविशदया प्रज्ञया सानुजेन
　　पिण्डान्पाण्डोरुदकपृषतानश्रुगर्भान्प्रदाशुम् ।
दायादानामपि तु भवने यादवानां कुले वा
　　कान्तारे वा कृतवसतिना रक्षणीयं शरीरम् ॥२५॥

गच्छ जयंधर, अस्मच्छरीरस्पृष्टिकया शापितेन भवताऽकालहीनमिदमवस्थावेदनीयम् ।

द्रौपदी—हला बुद्धिमतिके, भण मम वचनेन प्रियसखीं सुभद्राम्—'अद्य वत्साया उत्तरायाश्चतुर्थो मास. प्रतिपन्नस्य गर्भस्य । त्वमेवं कुलप्रतिष्ठापकं सावधानं रक्ष । कदाचीतः परलोकगतस्य श्वसुरकुलस्यास्माकमपि सलिलबिन्दुदो भविष्यति इति ।

[हला बुद्धिमदिए, भणाहि मह वअणेण पिअसही सुभद्दाम्—अज्ज वच्छाए उत्तराए चउत्थो मासो पडिवण्णस्स गब्भस्स । तुम एव्व कुलपडिट्ठावअ सावहाणं रक्ख । कदा वि इदो परलोअगदस्स ससुरउलस्स अह्माण वि सलिलबिन्दुदो भविस्सदि त्ति ।]

युधिष्ठिरः—(सास्रम्) भोः कष्टम् ।

ममेति । दूरेणाधिकेन अल्पः कनिष्ठः । श्रुतेनाध्ययनेन । सहजा स्वाभाविको [कृता संस्कारेण वर्धिता । ०कृपयेति पाठे कृपा दया यस्यां तया धीरो मनीषी. ज्ञ प्राज्ञः इत्यमर. । अतः मुकुलौ पाणी. कृत्वाऽञ्जलिं बद्ध्वा

आप मुझसे अवस्था मे बहुत छोटे, ज्ञान में बराबर, सहज और अर्जित बुद्धि मे बड़े और विद्वत्ता में गुरु हैं। इसलिये मैं सिर पर दोनो हाथों को मुकुल बनाकर (=दोनों हाथ जोड़कर) आपसे याचना करता हूँ कि आप मेरे प्रति स्नेह कम कर दे और पिता को जल देने वाले होवें ॥२४॥

और भी, मेरी आज्ञा से, बाल्यावस्था मे पाले गये, सर्वदा अभिमान करने वाले और हमारे समान हृदय के सार वाले भी नकुल के वचन का पालन करना। इसलिये नकुल से कहना—वह हमारे पथ का अनुगमन न करे। हे वत्स आपको—

अनुज सहित ज्ञान से निर्मल बुद्धि द्वारा हमें भुलाकर पाण्डु को पिण्ड और अश्रु-मिश्रित जल-बिन्दु देने के लिये सम्बन्धियों के भवन मे अथवा यादवों के कुल मे अथवा वन मे वास करके (अपने) शरीर की रक्षा करनी है ॥२५॥

जयन्धर, जाओ। हमारे शरीर को छूकर सौगन्ध लिये हुए आप अविलम्ब अवश्य ही कह देवें।

द्रौपदी—सखी बुद्धिमतिका मेरी, ओर से प्रिय सखी सुभद्रा से कहो—'आज बेटी उत्तरा को गर्भ धारण किये चौथा मास है। तू ही इस कुल के प्रतिष्ठापक की सावधानी मे रक्षा करना। शायद (वही) यहाँ से परलोक गये श्वसुर-कुल को और हमे जलाञ्जलि देने वाला होगा।'

युधिष्ठिर—(आँसुओं के साथ) ओह ! (बड़ा) कष्ट है।

भवन्तमर्थय इदं याचे। मयि स्नेहो विरलतां कृशत्वं नेयः। अस्मदर्थे प्राणान्मा त्यजेरित्यर्थः। वारिद. निवापोदकस्य दाता ॥२४॥

विस्मृत्येति। सानुजेन त्वयाऽस्मान्प्रज्ञया विस्मृत्य पाण्डोरुदकपृषतान्प्रदातुं शरीरं रक्षणीयमित्यन्वयः। पृषन्ति बिन्दुपृषताः पुमांसः। इत्यमरः। श्रुतिरध्ययनम् वसतिर्वासः ॥२५॥

[स्पृष्टिका स्पर्शः।] शापितेन मदङ्गशपथवता। अकालहीनं कालः योग्यसमयस्तेन हीनं यथा न भवेत्तथा। कदाप्येतेनापि परलोकगतस्यास्माकं श्वशुरकुलस्योदकबिन्दुर्भविष्यति। अत्रापन्नसत्त्वा गर्भवती। नाभिकुलं पितृकुलम्। [निक्षिपसि निधापयिष्यसि। अन्नस्यस्य विनाशसम्भवात्।]

शाखारोधस्थगितवसुधामण्डले मण्डिताशे
पीनस्कन्धे सुसदृशमहामूलपर्यन्तबन्धे ।
दग्धे दैवात्सुमहति तरौ तस्य सूक्ष्माङ्कुरेऽस्मि-
न्नाशाबन्धं कमपि कुरुते छाययार्थी जनोऽयम् ॥२६॥

साधु । इदानीमध्यवसितं करणीयम् । (कञ्चुकिनमवलोक्य) आर्य जयन्धर, स्वशरीरेण शापितोऽसि तथापि न गम्यते ।

कञ्चुकी—(साक्रन्दम्) हा देव पाण्डो, तव सुतं मामजातशत्रुभीमार्जुननकुलसहदेवानामयं दारुणः परिणामः । हा देवि कुन्ति, भोजराजभवनपताके,

भ्रातुस्ते तनयेन शौरिगुरुणा श्यालेन गाण्डीविन-
स्तस्यैवाखिलधार्तराष्ट्रनलिनीव्यालोलने दन्तिनः ।
आचार्येण वृकोदरस्य हलिनोन्मत्तेन मत्तेन वा
दग्धं त्वत्सुतकाननं ननु मही यस्याश्रयाच्छीतला ॥२७॥

(इति रुदन्निष्क्रान्तः)

युधिष्ठिरः—जयन्धर, जयन्धर ।

(प्रविश्य)

कञ्चुकी—आज्ञापयतु देवः ।

युधिष्ठिरः—वक्तव्यमिति ब्रवीमि । न पुनरेतावन्ति भागधेयानि नः । यदि कदाचिद्विजयी स्याद्वत्सोऽर्जुनस्तद्वक्तव्योऽस्मद्वचनाद्भवता,

---

शाखेति । रोधोऽवरोधः । आधिक्यमिति यावत् [शाखारोधेन निरन्तरप्ररूढशाखाविस्तारेण स्थगितमाच्छादितं वसुधामण्डलं येन तस्मिन् । मण्डिता अलंकृता आशा दिशो येन । पीनः स्कन्धः प्रकाण्डः यस्य तस्मिन् । सुसदृशः तयोरनुरूपः महामूलस्य पर्यन्तः परितो बन्धो यस्य तस्मिन् । ईदृशि सुमहति तरौ दग्धे सति तस्य सूक्ष्माङ्कुरे अस्मिन् । छायया अर्थी छायामिच्छन्नित्यर्थः । अयं जनः कमपि दुष्पूरमित्यर्थः । आशाबन्धं दैवात् कुरुते ।] आशाबन्धः समाश्वासे तथा मर्कटजालके । इति विश्वः । छाययार्थी छायाप्रार्थकः ।

छाया की कामना करने वाला यह जन (द्रौपदी) शाखाओं के विस्तार से पृथ्वी मण्डल को आच्छादित करने वाले, दिशाओं को भूषित करने वाले, मोटे तने वाले और सुयोग्य बड़ी जड़ के चारो ओर बधान (चबूतरे) वाले; विशाल वृक्ष के भाग्य से जल जाने पर उसके इस सूक्ष्म अङ्कुर पर विचित्र आशा बाँध रहा है ॥२६॥

ठीक है ! अब निश्चित कर्त्तव्य करना चाहिये (कञ्चुकी को देखकर) आर्य जयन्धर, शरीर की सौगन्ध दिलाई है, फिर भी नहीं जा रहे हो।

कञ्चुकी—(विलाप करते हुए) हाय महाराज पाण्डु, तुम्हारे पुत्र युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव का यह क्रूर अन्त ! हाय भोजराज के भवन की पताका देवी कुन्ती,

तेरे भाई के पुत्र, कृष्ण के बडे, गाण्डीवधारी के साले और सम्पूर्ण धृतराष्ट्र के पुत्र रूपी कमलिनी के दलन मे गज-रूप उस वृकोदर के ही आचार्य, हल-धारी (बलराम) ने पागल अथवा मद-मत्त होकर तेरे पुत्ररूपी बन को, यह पृथ्वी जिसके अवलम्बन से शीतल थी, जला दिया है ॥२७॥

(इस प्रकार रोता हुआ बाहर चला गया)

युधिष्ठिर—जयन्धर, जयन्धर।

(प्रवेश करके)

कञ्चुकी—महाराज आज्ञा दें।

युधिष्ठिर—कहना चाहिये, इसलिये कह रहा हूँ। हमारे ऐसे भाग्य तो नहीं है। यदि कहीं वत्स अर्जुन विजयी हो जाय तो आप हमारी ओर से (उसे यह) कहें—

[दग्धपाण्डुवंशाङ्कुरेऽस्मिन् सलिलबिन्द्वादिलाभाशेत्यर्थः।] ॥१६॥

भ्रातुरिति। ते भ्रातुर्वसुदेवस्य शौरिगुरुणा [शौरेः कृष्णस्य गुरुणा ज्यायसा भ्रात्रा। अर्जुनस्य श्यालेन सुभद्राया भ्रातृत्वात्। अखिलाधार्तराष्ट्रा एव नलिन्यः कमलिन्यः तासाम्] व्यालोलनं व्याघट्टना। तत्र दन्तिनः। तस्य भीमस्य आचार्येण गुरुणा। हलिना बलेनाथ च हलवाहकेन। [उन्मत्तेन उन्मादवता अथवा मत्तेन। क्षीबेण। ननु यस्याश्रयादाश्रयं प्राप्य मही शीतला शान्तिमती आसीत्तत् त्वत्सुतकाननं दग्धम् ॥२७॥

हली हेतुः सत्यं भवति मम वत्सस्य निधने
तथाप्येष भ्राता सहजसुहृदस्ते मधुरिपोः ।
अतः क्रोधः कार्यो न खलु यदि च प्राणिषि ततो
वनं गच्छेर्मा गाः पुनरकरुणां क्षात्रपदवीम् ॥२८॥

कञ्चुकी—यदाज्ञापयति देवः । (इति निष्क्रान्तः)

युधिष्ठिरः—(अग्निं दृष्ट्वा सहर्षम्) कृष्णे, ननूद्धतशिखाहस्ताहूतास्मद्विधव्यसनिजनः समिद्धो भगवान्हुताशनस्तत्त्वेन्धनीकरोम्यात्मानम् ।

द्रौपदी—प्रसीदतु प्रसीदतु महाराजो ममानेनपश्चिमेन प्रणयेन । अहं तावदग्रतः प्रविशामि । [पसीदहु पसीदहु महाराओ मम इमिणा अपच्छिमेण पणएण । अहं दाव अग्गदो पविसम्मि ।]

युधिष्ठिरः—यद्येवं सहितावेवाम्युदयमुपभोक्ष्यावहे ।

चेटी—हा भगवन्तो लोकपालाः, परित्रायध्वं । एष खलु सोमवंशराजर्षी राजसूयसर्तर्पितहव्यवाह; खाण्डवसर्तर्पितहुतवहस्य किरीटिनो ज्येष्ठो भ्राता सुगृहीतनामधेयो महाराजयुधिष्ठिर. । एषापि पाञ्चालराजतनया देवी यज्ञवेदिमध्यसंभवा याज्ञसेनी । द्वावपि निष्करुणज्वलनस्य प्रवेशेनेन्धनीभवतः । तत्परित्रायध्वमार्या, परित्रायध्वम् । कथं न कोऽपि परित्रायते । (तयोरग्रतः पतित्वा) किं व्यवसितं देव्या देवेन च ।

[हा भअवन्तो लोअवाला परित्ताअह परित्ताअह । एसो क्खु सोमवंसराएसी राअसूअसतप्पिदहव्ववाहो खण्डवसंतप्पिहुदवहस्स किरीडिणो जेट्ठो भादा सुग्गहीदणामहेओ महाराअजुहिट्ठिरो । एसा वि पाञ्चालराअतणआ देवी जण्णवेदिमज्झसभवा जण्णसेणी । दुवे वि णिक्करुणजलणस्स प्पवेसेण इन्धणीहोन्ति ता परित्ताअहं अज्जा परित्ताअह । कधं ण को वि परित्ताअदि । किं ववसिदं देवीए देवेण अ ।]

[एतावन्ति अर्जुनविजयावहानीति यावत् ।]

हलीति । हेतुः कारणम् । [तथाप्येष हली ते सुहृदः भ्राता भवती । अतस्तस्मिन् क्रोधो न कार्यः ।] प्राणिषि जीवसि । गच्छेर्नमिष्यति । क्षात्रपदवीं

(यह) सच (है) कि मेरे वत्स (भीम) की मृत्यु का कारण हलधारी (बलराम) हैं, फिर भी यह तुम्हारे सहज मित्र मधु-सूदन (कृष्ण) का भाई है। इसलिये (उस पर) क्रोध नहीं करना चाहिये। यदि जीवित रह जाओ तो वन को चले जाना, लेकिन कठोर क्षात्र-धर्म पर न चलना ॥२८॥

कञ्चुकि—महाराज जैसी आज्ञा दें (बाहर चला गया)।

युधिष्ठिर—(अग्नि को देखकर हर्ष के साथ) ऊपर उठी हुई ज्वाला रूपी हाथ से हम जैसे विपत्ति मे पड़े हुए जनो को निमन्त्रित करने वाला भगवान् अग्निदेव प्रज्वलित हो गया है। (अब) इसमे स्वयं को ईंधन बनाता हूँ।

द्रौपदी—कृपा कीजिये, महाराज मेरी यह अन्तिम प्रार्थना स्वीकार कर कृपा कीजिये। मैं पहले प्रवेश करूँगी।

युधिष्ठिर—यदि ऐसा है, तो फिर हम दोनो साथ-साथ ही अभ्युदय का उपभोग करेंगे।

चेटी—हाय भगवान् लोकपालों, रक्षा करो, रक्षा करो। यह चन्द्रवंश के राजर्षि, राजसूय यज्ञ से अग्नि को तृप्त करने वाले, खाण्डव-वन से अनल को सन्तुष्ट करने वाले अर्जुन के बड़े भाई, प्रातः स्मरणीय नाम वाले, महाराज युधिष्ठिर हैं। और यह पाञ्चाल की राजकुमारी, यज्ञवेदी के बीच मे उत्पन्न, महारानी द्रौपदी है। दोनो ही क्रूर अग्नि मे प्रवेश करके (उसके) ईंधन हो रहे हैं। इसलिये, हे आर्य लोगो, बचाओ, बचाओ। कैसे ? कोई भी नहीं बचा रहा है ? (उन दोनो के आगे पड़कर) महारानी और महाराज ने क्या सोच रक्खा है ?

क्षत्रियपथं [शत्रुहननरूपम्।] पुनर्मा गा न गमिष्यसि। मा गाः इति माङ् योगे आशंसाया लङ्। न माङ् योगे इत्यटो निषेध ॥२८॥

[शिला एव हस्ताः शिलाहस्ताः। उद्धता ये शिलाहस्तास्तैः आहूतः अस्मद्विध व्यसनिजनः येन स तथोक्तः।] अत्र पश्चिमेन प्रथमेन मत्येन वा। [नास्ति पश्चिमो यस्मात्तेन चरमेणेत्यर्थः।] प्रणय. प्रेम्णि याञ्चायाम्। इति धरणिः। [राजा सोमः सूयते अत्र इति राजसूयः तेन सन्तर्पितः हव्यवाहः येन सः। सुगृहीतं प्रातः स्मृतं नामधेयं यस्य स तथोक्तः। तदुक्तं—स सुगृहीतनामा

युधिष्ठिरः—अयि बुद्धिमतिके, धनञ्जयेन प्रियानुजेन विना सदृशं तत् । उत्तिष्ठोत्तिष्ठ, भद्रे, उदकमुपनय ।

चेटी—यद्देव आज्ञापयति (इति निष्क्रम्य पुनः प्रविश्य च) जयतु जयतु महाराजः । [जं देवो आणवेदि । जेदु जेदु महाराओ ।]

युधिष्ठिरः—पाञ्चालि, त्वमपि तावत्स्वयशश्शालिनो वृकोदरस्य प्रियस्यानुजस्योदकक्रियां कुरु ।

द्रौपदी—महाराज एव करोतु । अहं पुनर्ज्वलनं प्रवेक्ष्यामि ।
[महाराओ एव्व करेदु । अहं उण जलणं पविसिस्सम् ।]

युधिष्ठिरः—अनतिक्रमणीयं लोकवृत्तम् । भद्रे, उदकमुपनय ।

(चेटी तथा करोति)

युधिष्ठिरः—(पादौ प्रक्षाल्योपस्पृश्य च) एष तावत्सलिलाञ्जलिर्गाङ्गेयाय भीष्माय गुरवे । अयं प्रपितामहाय शान्तनवे । अयमपि पितामहाय विचित्रवीर्याय । (सास्रम्) तातस्याधुनावसरः । अयमपि तत्रभवते सुगृहीतनाम्ने पित्रे पाण्डवे,

अद्य प्रभृति वारीदमस्मत्तो दुर्लभं पुनः ।
तात माद्रयम्बया सार्धं मया दत्तं निपीयताम् ॥२९॥

एतज्जलं जलजनीलविलोचनाय
भीमाय तस्य मम चाप्यविभक्तमस्तु ।
एवं क्षणं विरम वत्स पिपासितोऽपि
पातुं त्वया सह जवादयमागतोऽस्मि ॥३०॥

अथवा सुक्षत्रियाणां गतिमुपगतं वत्समहमुपगतोऽप्यकृतो द्रष्टुम् । वत्स भीमसेन,

---

स्याद्यः प्रातः स्मर्यते बुधैः ।] खाण्डववनादीपनजननस्य किरीटिनो…द्वावप्येतौ …। उपस्पृश्याचम्य । गाङ्गेयाय भीष्माय । शान्तनवे शान्तनुनाम्ने ।

अद्येति । हे तात मया दत्तमेतज्जलं माद्रयम्बया सह निपीयताम् ॥२९॥

युधिष्ठिर—अरी बुद्धिमतिका, जो प्रेम करने वाले, प्रिय अनुज के बिना उचित है, वही (सोचा हुआ है)। कल्याणी उठो; जल ले आओ।

चेटी—जो महाराज आज्ञा दें। (यह कहकर बाहर जाकर और फिर प्रवेश करके।) जय हो महाराज की जय हो।

युधिष्ठिर—पाञ्चाल-पुत्री, अब तुम भी अपने पक्षपाती भीम और प्रिय अर्जुन को जलाञ्जलि दे दो।

द्रौपदी—महाराज ही (जलाञ्जलि) दे लें। मैं तो अग्नि में प्रवेश करूँगी।

युधिष्ठिर—लोकाचार का उल्लङ्घन नहीं किया जा सकता है। हे भद्रे, जल लाओ।

(चेटी वैसा ही करती है)

युधिष्ठिर—(पैर धोकर और आचमन करके) यह जलाञ्जलि गङ्गा-पुत्र गुरु भीष्म के लिये है। यह प्रपितामह शान्तनु के लिये है और यह पितामह विचित्रवीर्य के लिये है। (आँसुओं के साथ) अब पिता का बार है। यह (जलाञ्जलि) आदरणीय प्रातःस्मरणीय पिता पाण्डु के लिये है।

आज के बाद फिर यह जल हमसे मिलना कठिन है, इसलिये, हे तात, मेरे द्वारा दिये गये (जल) को माता माद्री के साथ (मिलकर) पीजिये ॥२६॥

कमल के समान नेत्र वाले भीम के लिये (दिया हुआ) यह जल उसका और मेरा सम्मिलित रहे। हे वत्स, प्यासे होते हुए भी तुम क्षण-भर ठहरे रहो। (इसे) तुम्हारे साथ पीने के लिये मैं यह वेगपूर्वक आ रहा हूँ ॥३०॥

अथवा समीप जाने पर भी मैं यह वीर क्षत्रियों की गति को प्राप्त हुए वत्स को देखने में असमर्थ रहूँगा। वत्स भीमसेन,

---

एतदिति। [जलज कुवलयमिव नीले विलोचने यस्य तस्मै] जलजस्य लीला विलासो यत्र तत्। भीमप्रियस्य प्रीतिविषयभीमस्य। अविभक्तं साधारणम्। हे वत्स भीम। [पिपासितः सजाततृष्णोऽपि एकं क्षणं] विरम मा प्रतिपालय। अयमहं एतज्जलं त्वया सह पातुं जवाद्वेगदागतोऽस्मि। [वर्तमानसामीप्ये भविष्यति लट्] ॥३०॥

गतिं स्वर्गम्। [अकृती असमर्थः।]

मया पीतं पीतं तदनु भवताम्बास्तनयुगं
मदुच्छिष्टैर्वृत्तिं जनयसि रसैर्वत्सलतया ।
वितानेष्वप्येवं तव मम च सोमे विधिरभू-
न्निवापाम्भः पूर्वं पिबसि कथमेवं त्वमधुना ॥३१॥

कृष्णे, त्वमपि देहि सलिलाञ्जलिम् ।

द्रौपदी—हञ्जे बुद्धिमतिके, उपनय मे सलिलम् ।
[हञ्जे बुद्धिमदिए उवणेहि मे सलिलम्]

(चेटी तथा करोति)

द्रौपदी—(उपसृत्य जलाञ्जलिं पूरयित्वा) महाराज, कस्मै सलिलं ददामि ? [महाराअ कस्स सलिलं देह्मि ?]

युधिष्ठिरः—

तस्मै देहि जलं कृष्णे सहसा गच्छते दिवम् ।
अम्बापि येन गान्धार्या रुदितेन सखीकृता ॥३२॥

द्रौपदी—नाथ भीमसेन, परिजनोपनीतमुदकं स्वर्गगतस्य ते पादोदकं भवतु ।
[णाह भीमसेण, परिअणोवणीद उदअं सग्गगदस्स दे पादोदअ भोदु ।]

युधिष्ठिरः—फाल्गुनाग्रज,

असमाप्तप्रतिज्ञेऽस्तं याते त्वयि महाभुजे ।
मुक्तकेश्यैव दत्तस्ते प्रियया सलिलाञ्जलिः ॥३३॥

द्रौपदी—उत्तिष्ठ महाराज, दूरं गच्छति ते भ्राता ।
[उट्ठेहि महाराअ दूरं गच्छदि दे भादा ।]

मयेति । [मया अम्बास्तनयुगं लक्षणया स्तयुगजं पयः पीतं तदनु भवता पीतम् । वत्सलतया मयि स्नेहात् मदुच्छिष्टैः रसैः रसवद्भिः भोज्यविशेषैः वृत्तिं जनयसि । वितानेषु यज्ञेष्वपि सोमे सोमपाने एवं तव मम च विधिरभूत् । अधुना तु त्वं निवापाम्भः एव पूर्वं कथं पिबसि । तदनु तत्पश्चात् । रसैर्दुग्धैः । वृत्तिं वर्तनम् । क्रतुविस्तारयोरस्त्री वितानम् । इत्यमरः साम्यो विधिः समः

आपने माता के दोनों स्तनों को मेरे पी चुकने के बाद पिया था। तुम प्रेम के कारण मेरे बचे हुए रसीले भोजन से आहार करते थे। यज्ञों में भी सोम विषय में मेरा और तुम्हारा यही ढङ्ग था। (फिर) तू अब तर्पण के जल को इस प्रकार पहले क्यों पी रहा है? ॥३१॥

कृष्णा, तुम भी जलाञ्जलि दो।

द्रौपदी—सखी बुद्धिमतिका, मेरे पास जल लाओ।

(चेटी वैसा करती है)

द्रौपदी—(समीप जाकर और जलाञ्जलि भरकर) महाराज किसे जल दूं?

युधिष्ठिर—

हे कृष्णा, अकस्मात् स्वर्ग को चले जाने वाले उस (भीम) को जल दो, जिसने रोदन द्वारा माताजी को भी गान्धारी की सखी बना दिया है ॥३२॥

द्रौपदी—नाथ भीमसेन, सेवक द्वारा लाया हुआ (यह) जल स्वर्ग में गये हुए आपके लिये चरणोदक होवे।

युधिष्ठिर—हे अर्जुन के बड़े भाई,

प्रतिज्ञा बिना पूर्ण किये (ही) तुम महाबाहु के निधन को प्राप्त हो जाने पर खुले हुए केशों वाली ही तेरी प्रिया ने (तुम्हें) जलाञ्जलि दी है ॥३३॥

द्रौपदी महाराज, उठिये। आपके भाई दूर चले जा रहे हैं।

प्रकार। साम्य इति चातुर्वर्ण्यादित्वात्स्वार्थे ष्यञ्। साम्ये विधिः इति पाठे साम्ये तुल्यत्वे विधिरित्यर्थः सोमे विधिः इति पाठे सोमलताद्रवपानेऽयं प्रकार इत्यर्थः। निवापः पितृदेयम् ॥३१॥

तस्मा इति। सहसा शीघ्रं जल देहीत्यन्वय.। येन [रुदितेन हेतुना अम्बापि गान्धार्या. सखी कृता। पाठान्तरं] गान्धारीरुदितेनाम्बापि सखीकृता रोदनवती कृतेत्यर्थः ॥३२॥

फाल्गुनोऽर्जुनः।

असमाप्तेति। [०प्रतिज्ञेऽपि याते इति पाठे याते दिवमिति शेषः मुक्ता अवद्धा. केशा यस्यास्तया।] ॥३३॥

युधिष्ठिरः—(दक्षिणाक्षिस्पन्दनं सूचयित्वा) पाञ्चालि, निमित्तानि मे कथयन्ति संभावयिष्यसि वृकोदरमिति ।

(नेपथ्ये कलकलः)

(प्रविश्य संभ्रान्तः)

कञ्चुकी—परित्रायतां परित्रायतां महाराजः । एष खलु दुरात्मा कौरवापसदः क्षतजाभिषेकपाटलिताम्बरशरीरः समुच्छ्रितदिग्धभीषणगदापाणिरुद्यतकालदण्ड इव कृतान्तोऽग्रमयतीं पाञ्चालराजतनयामितस्ततः परिमार्गमाण इत एवाभिवर्तते ।

युधिष्ठिरः—हा दैव, ते निर्णयो जातः । हा गाण्डीवधन्वन्,

(इति मुह्यति)

द्रौपदी—हा आर्यपुत्र, हा मम स्वयंवरस्वयंग्राहदुर्ललित, प्रियं भ्रातरमनुगतोऽसि, न पुनर्महाराजमिमं दासजनं च (इति मोहमुपगता)

[हा अज्जउत्त हा मम सअंवरअंगाहदुल्ललिद पिअं भादुअं अणुगदोसि । ण उण महाराअं इमं दासजणं अ ।]

युधिष्ठिरः—हा वत्स सव्यसाचिन्, हा त्रिलोचनाङ्गनिष्पेषमल्ल, हा निवातकवचोद्धरणनिष्कण्टकीकृतामरलोक, हा बदर्याश्रममुनिद्वितीयतापस, हा द्रोणाचार्यप्रियशिष्य, हा अस्त्रशिक्षाबलपरितोषितगाङ्गेय, हा राधेयकुलकमलिनी-

---

महाराज उत्तिष्ठोत्तिष्ठ । ···ने भर्ता संभावयिष्यसि प्राप्स्यसि । [कौरवेषु अपसदः कौरवापसदः । क्षताज्जायते इति] क्षतजं रक्तं [तेन पाटलिते रक्तीकृते अम्बरशरीरे यस्य] अम्बरं वासः । [समुच्छ्रिता या दिग्धा रक्तलिप्ता भीषणा च गदा सा पाणौ यस्य ।] गदाशक्तिः शक्तिरस्त्रभेदस्तद्वद्गदेत्यर्थः । हा मम, स्वयंवर स्वयंग्राहदुर्ललित भ्रातृप्रिय परलोकमनुगतोऽसि । [स्वयंवरे यः स्वयंग्राहः मया पतित्वेन वरणं स एव दुर्ललितं यस्य । मद्ग्रहणे कृतनिश्चयेत्यर्थः । अनेन मम त्यागोऽत्यन्तमनुचित इति ध्वनितम् ।]

मध्येन वामकरेण सचते दक्षिणहस्तेनेव बाणान् वर्षते असौ सव्यसाची तस्य सम्बुद्धिः] सव्यसाचिन्नर्जुन । [त्रिलोचनस्य किरातवेषधारिणः अङ्गानां

युधिष्ठिर—(दाहिनी आँख का फड़कना सूचित करके) पाञ्चाल-पुत्री, मेरे शकुन बतला रहे है कि तुम वृकोदर को प्राप्त करोगी।

द्रौपदी—महाराज, (आपका) शकुन सत्य होवे।

(नेपथ्य में कलकल ध्वनि होती है)

(प्रवेश करके घबराया हुआ)

कञ्चुकी—बचाइये, महाराज बचाइये। यह दुष्ट अधम कौरव रुधिर में स्नान से लाल वस्त्र और शरीर वाला, हाथ मे उठायी हुई और रुधिर से लिप्त भीषण गदा वाला, मानो कालदण्ड उठाये यमराज आदरणीय पाञ्चाल राजकुमारी को इधर-उधर खोजता हुआ, इधर ही आ रहा है।

(यह कहकर मूर्च्छित हो जाता है)

द्रौपदी—हाय, आर्यपुत्र! मेरे स्वयंवर मे स्वयं ग्रहण करने के दुराग्रही (अर्जुन), आपने (भी) प्रिय भाई का अनुगमन किया; लेकिन महाराज और इस दासजन का (विचार) नही किया। (यह कहकर मूर्च्छित हो जाती है)।

युधिष्ठिर—हाय वत्स अर्जुन, हाय त्रिनेत्र शङ्कर के अङ्गों का मर्दन करने वाले, मल्ल, हाय निवातकवच नामक दैत्यों का नाश करके देवलोक को निष्कण्टक करने वाले हाय बदरिकाश्रम के मुनियो (नर-नारायण) मे से दूसरे तपस्वी, हाय द्रोणाचार्य के प्रिय शिष्य, हाय अस्त्र-शिक्षा के बल से गङ्गापुत्र पितामह भीष्म को सन्तुष्ट कर देने वाले, हाय राधा-पुत्र (कर्ण) के कुलरूपी

निष्पेषे मर्दने मल्ल।] **निवातेति**। वितातकवचनामकदैत्यहननेन निःशत्रूकृत-सुरलोक इत्यर्थः। [निवातकवचा नाम दानवा मम शत्रवः। समुद्रकुक्षिमाश्रित्य दुर्गे प्रतिवसन्त्युत। तिस्र. कोटयः समाख्यातास्तुल्यरूपबलप्रभाः। इत्यादि कथा भारते वनपर्वणि द्रष्टव्या। पृ० ६८-७१,-७३] **बदर्याश्रमो** बदरिकाश्रमः। तत्र यौ मुनी नरनारायणो तयोः द्वितीयः तापसः। नारायणस्य प्रथमत्वात्। मुन्यारिनि निर्धारणे सप्तमी। [तदुक्तं महाभारते नरस्त्वं पूर्वदेहे वै नारायण-सहायवान्। बदर्यां तप्तवानुग्रं तपो वर्षायुतान बहून्॥ इति राधेलकुलमेव कमलिनी तस्या. प्रालेयवर्षं हिमपात। तस्य विनाशकेत्यर्थः। गन्धर्वाच्चित्ररथा-

प्रालेयवर्ष, हा गान्धर्यनिर्वासितदुर्योधन, हा पाण्डवकुलकमलिनीराजहंस,

तां वत्सलामनभिवाद्य विनीतमम्बां
गाढं च मामनुपगुह्य मयाप्यनुक्तः ।
एतां स्वयंवरवधूं दयितामदृष्ट्वा
दीर्घप्रवासमयि तात कथं गतोऽसि ॥३४॥

(मोहमुपगतः)

कञ्चुकी—भोः कष्टम् । एष दुरात्मा कौरवाधमो यथेष्टमिति एवाभि-वर्तते । सर्वथा सम्प्रत्ययमेव कालोचितः प्रतीकारः । चितासमीपमुपनयनाम्यत्र-भवतीं पाञ्चालराजतनयाम् । अहमप्येवमेवानुगच्छामि । (चेटीं प्रति) भद्रे, त्वमपि देव्या भ्रातरं धृष्टद्युम्नं नकुलसहदेवौ वाऽवाप्नुहि । अथवा एवमवस्थिते महा-राजेऽस्तमितयोर्भीमार्जुनयोः कुतोऽत्र परित्राणाशा ।

चेटी—परित्रायध्वं परित्रायध्वमार्याः [परित्ताअहं परित्ताअह अज्जा ।]

(नेपथ्ये कलकलानन्तरम्)

भो भोः समन्तपञ्चकसंचारिणः क्षतजासवमत्तयक्षराक्षसपिशाचभूतवेताल-कङ्कगृध्रजम्बुकोलूकवायसभूयिष्ठा विरसघोषपुरुषाः, कृतमस्मद्दर्शनत्रासेन । कथयत कस्मिन्नुद्देशे याज्ञसेनी संनिहितेति । कथयाम्युपलक्षणं तस्याः ।

ऊरुं करेण परिघट्टयतः सलीलं
दुर्योधनस्य पुरतोऽपहृताम्बरा या ।

निर्वासितो मोचितो दुर्योधनो येन तत्सम्बुद्धिः ।

तामिति । [अयि इति कोमलामन्त्रणे । तात वत्स तां वत्सलां स्नेहवतीं-मम्बां मातरं कुन्तीं विनीतं सविनयं यथा तथा अनभिवाद्य मां च गाढं यथा तथा अनुपगुह्यानालिङ्ग्य मयापि अनुक्तोऽननुमतः एतां स्वयंवरवधूं दयिताम् अदृष्ट्वा दीर्घप्रवासं कथं गतोऽसि । नैतद् युक्तमिति भावः ।] तातानुकम्प्य । ततोऽनुकम्प्ये जनके इति विश्वः ॥३४॥

[आवाप्नुहि आश्रयार्थं गच्छ ।] गृध्रादीनां भूयिष्ठः प्रचुरो निलयो गृहं येषु

कमलिनी के लिये हिम-वर्षा-स्वरूप, हाय गन्धर्वों से दुर्योधन को छुडाने वाले हाय पाण्डव-कुल रूपी कमलिनी के राजहंस,

हे तात, उस वत्सल माता को विनयपूर्वक प्रणाम बिना किये, मेरा गाढ आलिङ्गन न करके मेरे बिना कहे ही, और स्वयंवर में (जीती गई) इस प्रिया को बिना देखे ही लम्बे प्रवास पर कैसे चले गये ॥३४॥

(मूर्च्छित हो जाता है)

कञ्चुकी—आह ! कष्ट है । यह दुष्ट नीच कौरव स्वच्छन्दतापूर्वक इधर ही चलता आ रहा है । अब केवल यही समयोचित उपाय है । आदरणीय पाञ्चाल राजकुमारी को पिता के समीप ले जाता हूँ । मैं भी इसी प्रकार अनुगमन करूँगा । (चेटी का लक्ष्य करके) कल्याणी, तुम भी देवी के भाई धृष्टद्युम्न अथवा नकुल और सहदेव के पास जाओ । अथवा महाराज के ऐसी अवस्था में वर्तमान होने पर और भीम तथा अर्जुन के निधन को प्राप्त हो जाने पर (अब) यहाँ रक्षा की आशा कहाँ ?

चेटी—बचाओ आर्यो, बचाओ ।

(नेपथ्य में कलकल ध्वनि के पश्चात्)

रुधिर रूपी आसव से मत्त यक्ष, राक्षस, पिशाच, भूत, वेताल, कङ्क, गीध, सियार, उल्लू और कौवों के बाहुल्य वाले, समन्तपञ्चक में घूमने वाले, अल्प-संख्या में बचे हुए हे वीर पुरुषों, हमें देखकर भय मत करो । बतलाओ, द्रौपदी किस जगह है ? मैं उसकी पहचान बतलाता हूँ ।

हाथ से दोनों जाँघों को लीलापूर्वक पीटते हुए दुर्योधन के सामने दुःशासन ने जिसके वस्त्र उतारे थे, और केश खींचकर धम्मिल (=जूड़े) को बिगाड़ा

ते तथा । वायसा भूयिष्ठा येषु ते । वायसादिभिर्बहुसख्याका इत्यर्थः] उपलक्षणं परिवाचकम् ।

ऊरू इति । (सलीलं करेण ऊरू निजोरुयुगं) परिघट्टयतः हस्तेन परामृशतः । तथा च भारतम्-एवमुक्त्वा तु कौन्तेयमपोह्य वसनं स्वकं । अभ्युत्स्मयित्वा राधेयं भीममाधर्षयन्निव । द्रौपद्याः प्रेक्षमाणायाः सव्यमूरुदर्शयत् ॥ इति ॥ दुर्योधनस्य पुरतः या दुःशासनेन अपहृतमम्बरं वस्त्रं यस्याः सा अपहृताम्बरा । या च

दुःशासनेन कचकर्षणभिन्नमौलिः
सा द्रौपदी कथयत क्व पुनः प्रदेशे ॥३५॥

कञ्चुकी—हा देवि यज्ञवेदिसंभवे, परिभूयसे संप्रत्यनाथा कुरुकुलकलङ्केन।

युधिष्ठिरः—(सहसोत्थाय सावष्टम्भम्) पाञ्चालि, न भेतव्य, न भेतव्यम्। (ससंभ्रमम्) कः कोऽत्र भोः। सनिषङ्गं मे धनुरुपनय। दुरात्मन्दुर्योधनहतक आगच्छागच्छ। अपनयामि ते गदाकौशलसंभृतं भुजदर्पं शिलीमुखासारेण। अन्यच्च रे कुरुकुलाङ्गार,

प्रियमनुजमपश्यंस्तं जरासंधशत्रुं
कुपितहरकिरातायोधिनं तं च वत्सम्।
त्वमिव कठिनचेताः प्राणितुं नास्मि शक्तो
ननु पुनरपहर्तुं बाणवर्षैस्त्वदासून् ॥३६॥

(ततः प्रविशति गदापाणिः क्षतजसिक्तसर्वाङ्गो भीमसेनः)

भीमसेनः— (उद्धतं परिक्रामन्) भो भोः समन्तपञ्चकसंचारिणः सैनिकाः, कोऽप्यमावेगः।

नाहं रक्षो न भूतो रिपुरुधिरजलप्लाविताङ्गः प्रकामं
निस्तीर्णोरुप्रतिज्ञाजलनिधिगहनः क्रोधनः क्षत्रियोऽस्मि।

पाञ्चाना कर्षणमाकर्षणं। कचः केशः शिरोरुहः। इत्यमरः। तेन।) भिन्नमौलिः विदारितधम्मिल्ला। मौलिः किरीटे धम्मिल्ले इति विश्वः। [सा द्रौपदी पुनः क्व कस्मिन्।] प्रदेशेऽस्तीति शेषः। कथयत् तामिति शेषः ॥३५॥

हा देवि अर्थसूचनरूपा धृतिकेयम्। अन्तः पटीप्रविष्टैर्यक्रियतेऽर्थस्य सूचनम्। धृतिकार्थप्रकाशनम्। इति भरतः। इह सादननामावमर्शसंधिः। यदाह—बीजकार्योपगमनं सादनं समुदीरितम्। [सनिषङ्गं सतूणीरम्। संभृतमुपचितम्।]

प्रियमिति। कुपितः हर एव किरातः हरकिरातः। किरातरूपी हर इत्यर्थः। [तेन सहायुध्यते इति। तं वत्समर्जुनम्। प्राणितुं जीवितुम्। त्वमिवेति व्यतिरेके

था, वह द्रौपदी अब किस स्थान पर है ? (मुझे) बतलाओ ॥३५॥]

कञ्चुकी—हाय यज्ञवेदी से उत्पन्न देवी, अब तू अनाथ होकर कुरुकुल के कलङ्क-भूत (दुर्योधन) द्वारा अपमानित हो रही है।

युधिष्ठिर—(एकदम उठकर संभलते हुए) पाञ्चाल-पुत्री, डरो मत, डरो मत। (जल्दी से) अरे ! यहां कोई है ? तूणीर-सहित मेरा धनुष लाओ दुष्ट नीच दुर्योधन, आ, आ। मैं बाणों की वृष्टि से तेरे गदा-नैपुण्य से ,उत्पन्न बाहुबल के अभिमान को दूर किये देता हूँ। और भी, अरे कुरुकुल के लिये अङ्गारस्वरूप,

जरासन्ध के शत्रु उस प्रिय अनुज को और कुपित किरातरूपधारी शङ्कर से युद्ध करने वाले उस वत्स को न देखता हुआ मैं तुझ कठोर चित्त वाले के समान जीवित रहने में समर्थ नहीं हूँ, लेकिन बाण वर्षा से तेरे प्राण अपहरण करने में तो समर्थ हूँ ही ॥३६॥

(तब हाथ में गदा लिये और रुधिर से सब अङ्गों में लिप्त
भीमसेन प्रवेश करता है।)

भीमसेन—(अकड़कर इधर-उधर घूमते हुए) हे समन्तपञ्चक में घूमने वाले सैनिकों, यह कैसी घबराहट है ?

मैं न (कोई) राक्षस हूँ और न (कोई) भूत। मैं शत्रु के रुधिर रूपी जल में अत्यधिक डुबाये हुए अङ्गों वाला और विशाल प्रतिज्ञारूपी गहन सागर को पार कर चुका हुआ क्रोधी क्षत्रिय हूँ।। युद्ध रूपी अग्नि की ज्वालाओं में जलने

दृष्टान्त'। यथा त्वं जीवितुं शक्तस्तथा नाहमित्यर्थः। [तवासून्बाणवर्षैः पुनरपहर्तुं ननु शक्तोऽस्मि। न चेति पाठे न च नास्मि शक्त इति योज्यम्।] नः शिरश्चालने॥३६॥

नाहमिति। [अहं रक्षो न। भूतो न। प्रकामं रिपोः रुधिरमेव जलं तेन प्लावितं सर्वतः सिक्तमङ्गं यस्य तथोक्तः। निस्तीर्णः उरुः गुर्वी प्रतिज्ञा एव जलनिधिः तस्य गहनं दुस्तरो भागो येन। निस्तीर्णः उरुः प्रतिज्ञा एव गहनः जलनिधिर्येन इति वा।] जलनिधिगहन इत्यत्र पूर्वनिपातविधेरनित्यत्वमेव

भो भो राजन्यवीरा. समरशिखिशिखादग्धशेषाः कृतं व-
स्त्रासेनानेन लीनैर्हतकरितुरगान्तर्हितैरास्यते यत् ॥३७॥

कथयन्तु भवन्तः कस्मिन्नुद्देशे पाञ्चाली तिष्ठति।

द्रौपदी - (लब्धसंज्ञा) परित्रायतां परित्रायतां महाराजः।

[परित्ताअदु परित्ताअदु महाराओ।]

कञ्चुकी—देवि पाण्डुस्नुषे, उत्तिष्ठोत्तिष्ठ। संप्रति झटिति चिताप्रवेश एव श्रेयान्।

द्रौपदी—(सहसोत्थाय) कथं न संभावयाम्यद्यापि चितासमीपम्।

[कह ण संभावेमि अज्जवि चिदासमीवम्।]

युधिष्ठिरः—कः कोऽत्र भो.। सनिषङ्गं धनुरुपनय। कथं न कश्चित्परिजन। भवतु। बाहुयुद्धेनैव दुरात्मानं गाढमालिङ्ग्य ज्वलनमभिपातयामि। (परिकर बध्नाति)

कञ्चुकी—देवि पाण्डुस्नुषे संयम्यन्तामिदानीं नयनोपरोधिनो दुःशासनावकृष्टा मूर्धजा.। अस्तमिता संप्रति प्रतीकाराशा। चितासमीपमेव द्रुततरं संभावय।

युधिष्ठिरः—कृष्णे, न खल्वनिहते तस्मिन्दुरात्मनि दुर्योधने संहर्तव्याः केशाः।

भीमसेनः—पाञ्चालि, न खलु मयि जीवति संहर्तव्या दुःशासनविलुलिता वेणिरात्मपाणिभ्याम्। तिष्ठतु। स्वयमेवाहं संहरामि।

[द्रौपदी भयादपसरति]

भीमसेनः—तिष्ठ, तिष्ठ। भीरु क्वाधुना गम्यते ? (इति केशेषु ग्रहीतुमिच्छति)

युधिष्ठिरः—(वेगाद्भीममालिङ्ग्य) दुरात्मन्, भीमार्जुनशत्रो, सुयोधनहतक,

आशैशवादनुदिनं जनितापराधो
मत्तो बलेन भुजयोर्हतराजपुत्रः।

समाधानम्। क्रोधन. कोपशीलः क्षत्रियः अस्मि। भो भो समरमेव शिखी तस्य शिखाभिर्दग्धास्तेभ्यः शेषा अवशिष्टाः राजन्यवीराः यः अनेन त्रासेन कृतभर्त

से बचे हुए हे क्षत्रिय वीरो, आप लोगों को यह नहीं चाहिये, जो (आप लोग) मरे हुए हाथियों और घोड़ों की ओट लिये बैठे हैं ॥३७॥

आप लोग बतलायें पाञ्चाल-पुत्री किस जगह है ?

द्रौपदी—(चेतना प्राप्त करके) रक्षा कीजिये, महाराज रक्षा कीजिये।

कञ्चुकी—देवी, पाण्डु की पुत्रवधू, उठिये, उठिये। अब झट से चिता में प्रविष्ट हो जाना ही अच्छा है।

द्रौपदी—(एकदम उठकर) अभी भी चिता के समीप कैसे नहीं जाऊँगी ?

युधिष्ठिर—अरे ! यहाँ कोई है ? तुणीर-सहित धनुष लाओ। कैसे ? कोई भी सेवक नहीं है ! अच्छा, बाहु-युद्ध द्वारा ही (इस) दुष्ट का गाढ़ आलिंगन करके आग में गिराये देता हूँ (यह कहकर कमर कसता है)।

कञ्चुकी—देवी पाण्डु की पुत्रवधू, आँखों को ढकने वाले दुःशासन द्वारा खींचे गये, अपने केशों को अब बाँध लो। अब प्रतिशोध की आशा नष्ट हो गई है। जल्दी से चिता के समीप ही चलो।

युधिष्ठिर—हे कृष्णा, उस दुर्योधन के बिना मरे केश न बाँधो।

भीमसेन—हे पाञ्चाल-पुत्री मेरे जीवित रहते दुःशासन द्वारा खोली गई वेणी को अपने हाथों से नहीं बाँधोगी।

(द्रौपदी भय से दूर भागती है)

भीमसेन—ठहर, ठहर। हे कातर, तू अब कहाँ जा रही है ? (यह कहकर केश पकड़ना चाहता है)।

युधिष्ठिर—(वेगपूर्वक भीम से लिपटकर) दुष्ट, भीम और अर्जुन के शत्रु, नीच सुयोधन,

हे पापी, बाल्यवस्था से ही प्रतिदिन अपराध करने वाला बल से मत्त

यत् हता ये करितुरगास्तै. अन्तर्हितैः तिरोहितैः अत. लौनैलेयं गर्तैरिव युष्माभिः आस्यते स्थीयते। न तथा स्थातव्यमिति भावः। आसफलमेतत् ॥३७॥

'झटिति सत्वरम। विलुलिता विस्खलिता। निषङ्गेन तूणीरेण सहि परिकर. पर्यङ्कपरिवारयोः इत्यमरः न खलु नैवेत्यर्थः।

आशैशवादिति। पाप आशैशवाद्बाल्यात्प्रभृति अनुदिनं दिने दिने कृताः कारिताश्च अपराधा येन स तथा। भुजयोर्बलेन मत्त.। हत

आसाद्य मेऽन्तरमिदं भुजपञ्जरस्य
जीवन्प्रयासि न पदात्पदमद्य पाप ॥३८॥

भीमसेनः—अये कथमार्यः सुयोधनशङ्कया क्रोधान्निर्दयं मामालिङ्गति ।

कञ्चुकी—(निरूप्य सहर्षम्) महाराज, वञ्च्यसे । अयं खल्वायुष्मान्भीमसेनः सुयोधनक्षतजारुणीकृतसकलशरीराम्बरो दुर्लक्ष्यव्यक्तिः । अलमधुना संदेहेन ।

चेटी—(द्रौपदीमालिङ्ग्य) देवि, निवृत्यतां निवृत्यताम् । एष खलु पूरितप्रतिज्ञाभारो नाथस्ते वेणीसंहारं कर्तुं त्वामेवान्विष्यति ।

[देवी, णिवट्टीअदु णिवट्टीअदु । एसो क्खु पूरिदपदिण्णाभरो णाहो दे वेणीसंहारं कादुं तुवं एव्व अण्णेसदि ।]

द्रौपदी—हञ्जे, किं मामलीकवचनैराश्वासयसि ।

[हञ्जे किं मं अलीअवअणेहिं आसासेसि ।]

युधिष्ठिरः—जयंधर, किं कथयसि नायमनुजद्वेषी दुर्योधनहतकः ।

भीमसेनः—देव अजातशत्रो, भीमार्जुनगुरो, कुतोऽद्यापि दुर्योधनहतकः । यतो हि तस्य दुरात्मनः पाण्डुकुलपरिभाविनः—

भूमौ क्षिप्तं शरीरं निहितमिदमसृक्चन्दनाभं निजाङ्गे
लक्ष्मीरार्ये निषण्णा चतुरुदधिपयः सीमया सार्धमुर्व्या ।
भृत्या मित्राणि योधाः कुरुकुलमखिलं दग्धमेतद्रणाग्नौ
नामैकं यद् ब्रवीमि क्षितिप तदधुना धार्तराष्ट्रस्य शेषम् ॥३९॥

भीमार्जुनौ येन स तथा । त्वमद्य मे भुजौ एव पञ्जरं तस्य अन्तरमासाद्य जीवन् पदात्पदमपि न प्रयासि ।] [पाठान्तरे] संकटं मध्यम् । त्वं जीवन्सन्पदात्पदमप्यवश्यं न प्रयास्यसि वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा इति भविष्यति लट् । यद्वा । तत्कालीनक्रियायां वर्तमानत्वाद्वर्तमाने लट् ॥३८॥

[सुयोधनस्य क्षतजेन अरुणीकृतं रक्तीकृतं सकलं शरीरं अम्बरं च यस्य स तथोक्तः । दुर्लक्षा दुर्ज्ञेया व्यक्तिः स्पष्टाकारो यस्य स तथा ।] वेणीसंहारं वेणीबन्धनम् । अलीकवचनैः [मिथ्याभाषणैः ।] परिभवतीति पाण्डुकुलपरिभावी तस्य ।

भूमाविति [मया तस्य शरीरं भूमौ क्षिप्तम् । इदं तस्य असृक् चन्दनेन

हुआ तू, जिसने राजकुमारों (भीम और अर्जुन) को मारा है, आज मेरे बाहु-रूपी पञ्जर के मध्य मे आकर एक पग से (दूसरा) पग जीवित न जा सकेगा ॥३८॥

भीमसेन—अरे कैसे ? आर्य दुर्योधन के भ्रम से क्रोध के कारण निर्दयता से मेरा आलिगन कर रहे है ।

कञ्चुकी—(ध्यान से देखकर हर्ष के साथ) महाराज, आप धोखा खा रहे है। यह तो आयुष्मान् भीमसेन है, जिनका सम्पूर्ण शरीर और वस्त्र सुयोधन के रुधिर से लाल हो गये है, (और इसलिये) जिनको पहचानना कठिन हो रहा है। (अब कोई) शङ्का नही करनी चाहिये ।

चेटी—(द्रौपदी का आलिगन करके) हे देवी, लौट आओ, लौट आओ । यह आपका स्वामी, जिसने प्रतिज्ञा के भार को पूरा कर लिया है, आपकी वेणी बाँधने के लिये आपको ही ढूंढ रहा है ।

द्रौपदी—सखी, क्यो झूठे वचनों से मुझे आश्वासन दे रही हो ?

युधिष्ठिर—जयन्धर, क्या कह रहे हो कि यह मेरे छोटे भाई का शत्रु नीच दुर्योधन नही है ।

भीमसेन—महाराज अजातशत्रु, भीम तथा अर्जुन के बड़े भाई, अब नीच दुर्योधन कहाँ से (आया) मैने पाण्डु के कुल का अपमान करने वाले उस दुष्टात्मा के—

शरीर को पृथ्वी पर फेंक दिया है और अपने शरीर पर (उसका) यह चन्दन सदृश रुधिर लगाया है । आर्य मैं पृथ्वी के साथ, चारों समुद्रों का जल जिसकी सीमायें हैं, लक्ष्मी स्थित हो गयी है; सेवक, मित्र और योद्धा—यह सम्पूर्ण कुरुकुल युद्धाग्नि मे जल गया है । हे पृथ्वीपति, धृतराष्ट्र के पुत्र का यह एक नाम ही शेष रह गया है, जिसे आप कह रहे हैं ॥३९॥

सदृशं यथा तथा चन्दनाभं निजाङ्गे निहितम् । चतुर्णामुधीनां पयास्येव सीमानो यस्याः सा तयोक्तया । उर्व्या भूम्या सह श्रीः आर्ये त्वयि निषण्णा स्थिता । भृत्याः कुरूणामिति शेषः । [मित्राणि योधाः अखिलं कुरुकुलं च इत्येतद्रणाग्नौ दग्धम् । हे क्षितिप यद् नाम ब्रवीषि तदेकमधुना धार्तराष्ट्रस्य दुर्योधनस्य । शेषमवशिष्टम् ।] शेषशब्दोऽयं कर्मणजन्तो वाच्यलिङ्ग इत्यवधेयम् ॥३९॥

युधिष्ठिरः—(स्वैरं मुक्त्वा भीममवलोकयन्नश्रूणि प्रमार्जयति)

भीमसेनः—(पादयोः पतित्वा) जयत्वार्यः ।

युधिष्ठिरः—वत्स, बाष्पजलान्तरितनयनत्वान्न पश्यामि ते मुखचन्द्रम्। तत्कथय कच्चिज्जीवति भवान्समं किरीटिना ।

भीमसेनः—निहतसकलरिपुपक्षे त्वयि नराधिपे, जीवति भीमोऽर्जुनश्च ।

युधिष्ठिरः—(पुनर्गाढमालिङ्ग्य)

रिपोरास्तां तावन्निधनमिदमाख्याहि शतशः
प्रियो भ्राता सत्यं त्वमसि मम योऽसौ बकरिपुः।

भीमसेनः—आर्य, स एवाहम् । तन्मुञ्चतु मामार्यः क्षणमेकम्।

युधिष्ठिरः—किमपरमशिष्टम् ।

जरासंधस्योरःसरसि रुधिरासारसलिले
तटाघातक्रीडाललितमकरः सयति भवान् ॥४०॥

भीमसेनः—आर्य सुमहदवशिष्टम् । संयच्छामि तावदनेन सुयोधन-शोणितोक्षितेन पाणिना पाञ्चाल्या दुःशासनावकृष्टं केशहस्तम् ।

युधिष्ठिरः—सत्वरं गच्छतु भवान् अनुभवतु तपस्विनी वेणीसंहार-महोत्सवम् ।

भीमसेनः—(द्रौपदीमुपसृत्य) देवि पाञ्चालराजतनये, दिष्ट्या वर्धसे रिपुकुलक्षयेण । अलमलमेवंविधं मामालोक्य त्रासेन ।

कृष्टा येनासि राज्ञां सदसि नृपशुना तेन दुःशासनेन

रिपोरिति । रिपोर्निधनं तावदास्ताम् । शत्रुनाशं न पृच्छामीत्यर्थः । इदं शतशः शतं वारानाख्याहि कथय । सरसि जलधाविति व्यस्तरूपकम् । तटाघातो जलधितटहननम् । मकरो जलजन्तुभेदः क्रीडाललितमकरोत् इति पाठे यः क्रीडाललितं क्रीडारूपं विलासं चकारेत्यर्थः ॥४०॥

कृष्टेति—[येन नृपशुना तेन प्रसिद्धेन दुःशासनेन राज्ञां सदसि कृष्टासि

युधिष्ठिर—(धीरे से छोड़कर भीम को देखता हुआ आंसू पोंछता है)।

भीमसेन—(पैरों पर गिरकर) आर्य की जय हो।

युधिष्ठिर—वत्स, आंसुओं से नेत्रों के आच्छन्न होने के कारण मैं तुम्हारे मुखरूपी चन्द्रमा को देख नहीं पा रहा हूँ। इसलिए बतलाओ, आप अर्जुन सहित जीवित तो हैं ?

भीमसेन—आप राजा के सम्पूर्ण शत्रुपक्ष को नष्ट कर देने पर भीम और अर्जुन जीवित है।

युधिष्ठिर—(फिर गाढ़ आलिङ्गन करके)।

शत्रु के नाश की बात रहने दो। मुझे सैकड़ों बार (=बार-बार) यह बतलाओ कि क्या तुम सचमुच ही मेरे वह प्रिय भाई हो, जो बक का शत्रु है?

भीमसेन—आर्य, मैं वही हूँ।

युधिष्ठिर—

(क्या) आप युद्ध में रुधिर-वर्षा रूपी जल वाले, जरासन्ध के वक्षःस्थल रूपी तालाब में तटाघात की क्रीड़ा करने में सुन्दर (प्रतीत होने वाले) मकर हैं ? ॥४०॥

भीमसेन—आर्य, मैं वही हूँ। इसलिए आर्य मुझे क्षणभर के लिए छोड़ दें।

युधिष्ठिर—और क्या शेष रह गया है ?

भीमसेन—आर्य, बहुत बड़ा (कार्य) शेष रह गया है। अब सुयोधन के रुधिर से भीगे हुए इस हाथ से पाञ्चाली के दुःशासन द्वारा खींचे गये उत्तम केशों को बाधूंगा।

युधिष्ठिर—आप जल्दी से जायें (वह) बेचारी वेणी बाँधने के आनन्द का उपभोग करे।

भीमसेन—(द्रौपदी के समीप जाकर) हे पाञ्चाल की राजकुमारी देवी, शत्रु-कुल के नाश के लिए आपको बधाई है। इस प्रकार के मुझे देखकर भय से बस करो, बस करो।

राजाओं की सभा में जिस नर-रूप में पशु, दुःशासन ने तुझे घसीटा था,

तस्य मत्पीतशेषाणि मम करयोः स्थितानि स्त्यानानि असृञ्जि . .

स्त्यानान्येतानि तस्य स्पृश मम करयोः पीतशेषाण्यसृञ्जि ।
कान्ते राज्ञः कुरूणामपि सरसमिदं मद्गदाचूर्णितोरो-
रङ्गेऽङ्गेऽसृङ्निषिक्तं तव परिभवजस्यानलस्योपशान्त्यै ॥४१॥

बुद्धिमतिके, क्व सा संप्रति भानुमती योपहसति पाण्डवदारान् । भवति यज्ञवेदिसमवे याज्ञसेनि ।

द्रौपदी—आज्ञापयतु नाथः [आणवेदु णाहो ।]

भीमसेन.—स्मरति भवती यन्मयोक्तम् । (चञ्चद्भुजेत्यादि १-२१ पूर्वोक्तं पठति) ।

द्रौपदी—नाथ, न केवलं स्मरामि । अनुभवामि च नाथस्य प्रसादेन ।
[णाह, ण केवलं सुमरामि । अणुहवामि अ णाहस्स प्पसादेण ।]

भीमसेनः—(वेणीमवधूय) भवति, संयम्यतामिदानीं धार्तराष्ट्रकुलकालरात्रिर्दुःशासनविलुलितेयं वेणी ।

द्रौपदी—नाथ, विस्मृताऽस्म्येतं व्यापारम् । नाथस्य प्रसादेन पुनरपि शिक्षिष्ये । [णाह, विसमरिदह्मि एदं वावारम् । णाहस्स प्पसादेण पुणो वि सिक्खिस्सम् ।

भीमः—(वेणीं बध्नाति)

(नेपथ्ये)

महासमरानलदग्धशेषाय स्वस्ति भवतु राजन्यकुलाय ।
क्रोधान्धैर्यस्य मोक्षात्क्षतनरपतिभिः पाण्डुपुत्रैः कृतानि
प्रत्याशं मुक्तकेशान्यतुलभुजबलैः पार्थिवान्तःपुराणि ।

मद्गदया चूर्णितौ ऊरू यस्य तस्य कुरूणां राज्ञोऽपि सरसं मम अङ्गे अङ्गे निषिक्तम् असृक् रक्तं तव परिभवजस्य अनलस्य उपशान्त्यै भवेत् । [निर्वहणमिह श्लोके । यदुक्तं तत्रैव-पूर्वं प्रसारितानां तु बीजादीनां समापनम् । निर्व्यूढत्वेन क्रियते तन्निर्वहणमीरितम् ॥४१॥

नाथस्य प्रसादेन पुनरनुभवामि । [अवधूय आस्फाल्य । धार्तराष्ट्रकुलस्य कालरात्रिः प्रलयकरी । विलुलिता अवकृष्टा व्यत्यस्ता च । एतं व्यापारं केश-

उसके मेरे दोनों हाथों में पीने से बचे हुए इस गाढ़े रुधिर का स्पर्श करो। हे प्रिया, तेरी अपमान से उत्पन्न वह्नि की शान्ति के लिए मेरी गदा से चूर्ण हुई जंघाओं वाले, कुरुओं के राजा का भी यह ताजा रुधिर (मेरे) अङ्ग-अङ्ग पर सीचा हुआ है ॥४१॥

हे बुद्धिमतिका, अब वह भानुमती कहाँ है, जो पाण्डवों की पत्नी का उपहास करती थी। श्रीमती यज्ञवेदी से उत्पन्न याज्ञसेनी,

द्रौपदी—स्वामी आज्ञा कीजिये।

भीमसेन—जो मैंने कहा था, वह आपको याद है। (चञ्चद्भुज'''इत्यादि पूर्वोक्त श्लोक १/२१ का पाठ करता है)।

द्रौपदी—नाथ, केवल याद ही नहीं है, अपितु नाथ की कृपा से (उसका) अनुभव भी कर रही हूँ।

भीमसेन— (वेणी को हिलाकर) श्रीमती जी, अब धृतराष्ट्र के कुल के लिए कालरात्रि-स्वरूप, दुःशासन द्वारा खोली गई, इस वेणी को बाँध लीजिये।

द्रौपदी—नाथ, मैं यह काम भूल गई, हूँ। स्वामी की कृपा से फिर सीखूँगी।

भीम—(वेणी बाँधता है)।

(नेपथ्य में)

महायुद्ध की अग्नि में जलने से बचे हुए क्षत्रियकुल का कल्याण हो।

जिसके खुलने के कारण क्रोध से अन्धे हुए, अतुल बाहुबल वाले, पाण्डु के पुत्रों ने राजाओं को नष्ट करके प्रत्येक दिशा में राजाओं के अन्तःपुरों को खुले हुए केशों वाला कर दिया है, क्रुद्ध हुए यमराज के सदृश और कुरुओं के लिये

बन्धनम्। नाथ विस्मृतोऽयं व्यापारो मया। साम्प्रतं नाथस्य।

क्रोधान्धैरिति। [यस्य केशपाशस्य मोक्षान्मोचनात् क्रोधेनान्धैः क्रोधान्धः शता नरपतयो यैस्तैः क्षतनरपतिभिः अतुलं भुजयोः बलं येषां तैः अतुलभुजबलैः पाण्डुपुत्रैः। आशायामाशायामिति प्रत्याशं प्रतिदिशं पार्थिवान्तःपुराणि पृथिव्या ईश्वराः पार्थिवा नृपास्तेषामन्तःपुराणि लक्षणया तत्रस्थाः स्त्रियः। मुक्ताः केशा येषां तानि मुक्तकेशानि कृतानि। भर्तृविनाशाद्वैधव्यप्रापणादिति भावः।

कृष्णायाः केशपाशः कुपितयमसखो धूमकेतुः कुरूणां
सोऽयं बद्ध प्रजानां विरमतु निधनं स्वस्ति राज्ञां कुलेभ्यः॥४२॥

युधिष्ठिरः—देवि, एष ते वेणीसंहारोऽभिनन्द्यते नभस्तलसंचारिणा सिद्धजनेन ।

(ततः प्रविशतः कृष्णार्जुनौ)

कृष्णः—(युधिष्ठिरमुपगम्य) विजयतां निहताशेषारातिमण्डलः सानुजः पाण्डवकुलचन्द्रमा महाराजो युधिष्ठिरः ।

अर्जुनः—जयत्वार्यः ।

युधिष्ठिरः—(विलोक्य) अये भगवान्पुण्डरीकाक्षो वत्सश्च किरीटी । भगवन्, अभिवादये (किरीटिनं प्रति) एह्येहि वत्स ।

(अर्जुनः प्रणमति)

युधिष्ठिरः—(वासुदेवं प्रति) देव, कुतस्तस्य विजयादन्यद्यस्य भगवान्पुराणपुरुषो नारायणः स्वयं मङ्गलान्याशास्ते ।

कृतगुरुमहदादिक्षोभसंभूतमूर्तिं
गुणिनमुदयनाशस्थानहेतुं प्रजानाम् ।
अजममरचिन्त्यं चिन्तयित्वाऽपि न त्वां
भवति जगति दुःखी किं पुनर्देव दृष्ट्वा ॥४३॥

सः अथ कुपितस्य यमस्य सखा कुपितयमसखः । राजाहःसखिभ्यष्टच् । कुरूणां धूमकेतुः नाशहेतुत्वात् । कृष्णायाः केशपाशः केशकलापः । बद्धः । प्रजानां निधनं सङ्ग्रामं इति शेषः । विरमतु । राज्ञां कुलेभ्यः स्वस्ति भूयात् । अत्र पूर्वार्धे काव्यलिङ्गमलङ्कारः । उत्तरार्धे उपमार्धं रूपकं चेत्येतयोः संसृष्टिः ।] पार्थिवोऽत्र दुर्योधनः । तथा च दुर्योधने हते तदन्तःपुरनार्यः अनिबद्धकेशाः कृता इति भावः । [पाठान्तरे] दिष्ट्येति आनन्दहेतुः ॥४२॥

[सिद्धा देवयोनिविशेषाः ।] पुण्डरीकाक्षः कृष्णः । आशास्ते स्वीकरोति ।

कृतेत्यादि । हे देव जगति त्वां चिन्तयित्वाऽपि जनो दुःखी न भवति । किं पुनर्दृष्ट्वा दुःखी भवति । अपि तु न भवतीति भावः । कीदृशम् । कृता गुरोः स्थूलद्रव्यस्य महदादेर्महत्तत्त्वबुद्धितत्त्वादेः पर्वतादेर्वा क्षोभेन परिणामेन संभूता व्यापिका मूर्तिस्त्रिनयनत्वादिरूपा येन तम् । यद्वा कृतो गुरुः पर्वतादिर्येन स

(उत्पात-सूचक) धूमकेतु स्वरूप, कृष्णा का वह यह केशपाश बँध गया है। प्रजाओं का नाश बन्द हो जाये। राजाओं के कुलों का कल्याण हो ॥४२॥

युधिष्ठिर—हे देवी, आकाश-तल में विचरण करने वाले सिद्ध लोग तुम्हारे वेणी-बन्धन का अभिनन्दन कर रहे हैं।

(तत्पश्चात् कृष्ण और अर्जुन प्रवेश करते हैं)

कृष्ण—(युधिष्ठिर के समीप जाकर) सम्पूर्ण शत्रु समूह को नष्ट कर देने वाले, पाण्डव-कुल में चन्द्रतुल्य, महाराज युधिष्ठिर अनुजों सहित विजय पायें।

अर्जुन—आर्य की जय हो।

युधिष्ठिर—अरे! भगवान विष्णु (=कमल तुल्य नेत्रों वाला) और वत्स अर्जुन! भगवन् मैं प्रणाम करता हूँ, (अर्जुन को लक्ष्य करके) वत्स, आओ, आओ।

(अर्जुन प्रणाम करता है)

युधिष्ठिर—(वासुदेव को लक्ष्य करके) भगवन् जिसके लिए स्वयं पुरातन पुरुष भगवान् नारायण मङ्गल की कामना करें, उसकी जय से अतिरिक्त अन्य कैसे हो सकती है?

हे देव, किये गये महत्तत्त्व आदि के महान् क्षोभ से उत्पन्न मूर्ति वाले, प्रजाओं की उत्पत्ति, विनाश और स्थिति के कारणभूत, सगुण, अजन्मा, अमर और अचिन्त्य आप (देव) का चिन्तन करके भी संसार में (कोई प्राणी) दुःखी नहीं रहता है, फिर देखकर तो क्या? ॥४३॥

तथा। महदादेराकाशादेः क्षोभेन मिलनेन महाभूतसमाधिना संभृता कृतास्मदादेमूर्तिः शरीरं येन स तथा। पश्चाद्विशेषणसमासः। यद्वा। कृतं गुरुकार्यं द्रव्यं येन तादृशेन महदादिना कालाकाशादिना संभृता मिलिता मूर्तिर्यस्य तम्। सामान्यकारणेन सह भगवान्वेदादिकर्तेति भावः। अत एव गुणिनं वेदादिसृष्टियोग्यप्रयत्नादिमन्तम्। यद्वा। गुणाः सत्त्वरजस्तमोरूपास्तद्योगिनं लोकसृष्टनाशस्थैर्यकारणं च। तथा च सत्त्वरजस्तमोरूपं गुणत्रयं सहकारि समासाद्य हरिहरहिरण्यगर्भरवतारैस्त्रयं भगवान्कार्यत्रयकर्तेति भावः। [स्थानं स्थितिः] अजमजन्मम्। अमरमनाश्यम्। [अजरमिति पाठे जराहितमविकारमित्यर्थः।] अचिन्त्यं वाङ्मनसागोचरम् तदुक्तम्—यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह इति। अथ च विरोधाभासः। यो हि संभृतमूर्तिः स कथमजः। यो ह्यचिन्त्यस्तस्य कथं चिन्तेति। अविरोधस्तु दर्शित एव ॥४३॥

(अर्जुनमालिङ्गय) वत्स, परिष्वजस्व माम् ।

कृष्णः—महाराज युधिष्ठिर,

व्यासोऽयं भगवानमी च मुनयो वाल्मीकिरामादयो
धृष्टद्युम्नमुखाश्च सैन्यपतयो माद्रीसुताधिष्ठिताः ।
प्राप्ता मागधमत्स्ययादवकुलैः राज्ञाविधेयैः समं
स्कन्धोत्तम्भिततीर्थवारिकलशा राज्याभिषेकाय ते ॥४४॥

अहं पुनर्दुरात्मना चार्वाकेण विप्रकृतं भवन्तमुपलभ्यार्जुनेन सह त्वरिततरं-मायातः ।

युधिष्ठिरः—कथं चार्वाकेण रक्षसा वयमेवं विप्रलब्धाः ।

भीमसेनः—(सरोषम्) क्वासौ धार्तराष्ट्रसखा पुण्यजनापसदो येनार्यस्य महांश्चित्तविभ्रमः कृतः ।

कृष्णः—निगृहीतः स दुरात्मा नकुलेन । तत्कथय महाराज, किमस्मात्परं समीहितं सपादयामि ।

युधिष्ठिरः—एवं पुण्डरीकाक्ष, न किंचिन्न ददाति भगवान्प्रसन्नः । अहं तु पुरुषसाधारण्या बुद्धया संतुष्यामि । न खल्वतः परमभ्यर्थयितुं क्षमः । पश्यतु देव,

क्रोधान्धैः सकलं हतं रिपुकुलं पञ्चाक्षतास्ते वयं
पाञ्चाल्या मम दुर्नयोपजनितस्तीर्णो निकारार्णवः ।
त्वं देवः पुरुषोत्तमः सुकृतिनं मामादृतो भाषसे

व्यासोऽयमिति । [अयं भगवान् व्यासः । अमी च वाल्मीकिरामादयः मुनयः । रामः परशुरामः । माद्रीसुताभ्यामधिष्ठिताः धृष्टद्युम्नमुखाः धृष्टद्युम्नो मुखमाद्यो येषां ते तथा । आज्ञाविधेयैः मागधमत्स्ययादवकुलैः समं सह । स्कन्धेन उत्तम्भिता उत्तोलिताः तीर्थवारि जाह्नवीप्रभृतिजलं तस्य कलशा यैस्ते तथोक्ताः ते तव राज्याभिषेकाय प्राप्ता उपस्थिताः सन्तीति शेषः] [पाठान्तरे] जाबालिनामा मुनिः ॥४४॥

[पुण्यजनेषु राक्षसेषु अपसदो नीचः ।] इहोच्यतां किमन्यदित्यनेन काव्य-

(अर्जुन का आलिङ्गन करके) वत्स, मेरा आलिङ्गन करो।

कृष्ण—महाराज युधिष्ठिर,

यह भगवान् व्यास, ये वाल्मीकि तथा परशुराम आदि मुनि और माद्री के पुत्रों से अधिष्ठित धृतद्युम्न आदि सेनापति आज्ञाकारी मागध, मत्स्य और यादव कुलों के साथ तेरे राज्याभिषेक के लिये कन्धों पर तीर्थों के जलों से भरे कलश उठाये हुए आ रहे हैं ॥४४॥

लेकिन मैं आपको दुष्ट चार्वाक द्वारा व्याकुलित किया हुआ जानकर अर्जुन के साथ जल्दी चला आया हूँ।

युधिष्ठिर—कैसे ? चार्वाक राक्षस ने हमें इस प्रकार धोखा दिया।

भीमसेन—(रोषपूर्वक) कहाँ है वह दुर्योधन का मित्र नीच राक्षस जिसने आर्य को महान् बुद्धि-व्यामोह उत्पन्न कर दिया था।

कृष्ण—उस दुष्ट को नकुल ने पकड़ लिया है। महाराज, इससे आगे (आपका) और क्या अभीष्ट करूँ ?

युधिष्ठिर—पुण्डरीकाक्ष, भगवान् प्रसन्न होकर क्या कुछ नहीं देते हैं ? मैं तो सामान्य पुरुषों की बुद्धि से ही सन्तुष्ट हूँ। इससे अधिक माँगने का सामर्थ्य मुझ में नहीं है। भगवान् देखिये—

क्रोध से अन्धे हुए (हम पाण्डवों) ने सम्पूर्ण शत्रुकुल को मार डाला, लेकिन वह हम पाँचों अक्षत रहे। पाञ्चाल की राजपुत्री ने मेरी दुर्नीति से उत्पन्न अपमान के सागर को पार कर लिया। आप भगवान् पुरुषोत्तम मुझ पुण्यशाली से आदरयुक्त होकर बातें कर रहे हैं। इससे अधिक और क्या है,

---

संहाररूपनिर्वहणसंधि। यदाहु—वरप्रदान-संप्राप्तिः काव्यसंहार उच्यते। किंचिन्न न ददासि। किं तु ददास्येव। द्वौ निषेधौ प्रकृतमर्थं गमयतः। [पुरुषेषु साधारणी पुरुषसाधारणी] तया।

क्रोधान्धैरिति। क्रोधान्धैरर्थात्पञ्चपाण्डवैरेव। [ते वयं] पञ्चपाण्डवा अक्षता इत्यन्वयः। पाञ्चाल्या निकारसिन्धुः [परिभवसागरः] मम दुर्नयेन [द्यूतपरिपणनादिना] विहितस्तीर्णः। पुरुषोत्तम इति। पुरुषेभ्य उत्तम इति समासः। न तु पुरुषेषूत्तम इति। न निर्धारणे इति निषेधात्। न चानेन षष्ठीसमासनिषेधो न तु सप्तमीसमासनिषेध इति वाच्यम्। तथा सति षष्ठी-

किं नामान्यदतः परं भगवतो याचे प्रसन्नादहम् ॥४५॥

तथापि प्रीततरश्चेद्भगवांस्तदिदमस्तु ।

अकृपणमरुक्श्रान्तं जीव्याज्जनः पुरुषायुषं
भवतु भगवन्भक्तिर्द्वैतं विना पुरुषोत्तमे ।
दयितभुवनो विद्वद्बन्धुर्गुणेषु विशेषवि-
त्सततसुकृती भूयाद् भूपः प्रसाधितमण्डलः ॥४६॥

अपि च,

अवनिमवनिपालाः पान्तु वृष्टिं विधत्तां
जगति जलधराली शस्यपूर्णाऽस्तु भूमिः ।
त्वयि मुरनरकारौ भक्तिरद्वैतयोगा-
द्भवतु मम सुदीर्घं हव्यमश्नन्तु देवाः ॥४७॥

कृष्णः—एवमस्तु ।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

* इति षष्ठोऽङ्कः *

समाप्तमिदं वेणीसंहारं नाम नाटकम्

समासस्याप्राप्तेरेव निषेधात्सर्वत्र सप्तमीसमासेनव प्रयोगसिद्धेः । तस्मात्पञ्चमो समास एवायमित्यदोषः । सुकृतिनं पुण्यवन्ताम् ॥४५॥

अकृपणमिति अकृपणं कार्पण्यरहितमरुक्श्रान्तं न रोगेण परिश्रान्तं च यथा स्यादेव [जनः] लोकः पुरुषायुषं जीव्याज्जीवतु । पुरुषायुषमिति अचतुर-इत्यादौ साधितम् । हे भगवन द्वैतं विनाऽद्वैतक्रमेण पुरुषोत्तमे भक्तिर्भवतु । मम

जिसे मैं प्रसन्न हुए भगवान से माँगू ॥४५॥

फिर भी यदि भगवान् बहुत ही प्रसन्न है, तो यह तो हो जाये—

हे भगवान्, प्रजायें कार्पण्य रहित तथा निरोग होकर पुरुष की आयु पर्यन्त जियें। पुरुषोत्तम में द्वैतरहित भक्ति होवे। राजा प्रजा का अनुरागी, विद्वानों का बन्धु, गुणों का विशेष ज्ञाता, सदा पुण्य कार्य करने वाला और अधीन राज्यों को वश में रखने वाला होवे ॥४६॥

और भी—

राजा लोग पृथ्वी का पालन करें; मेघापङ्क्ति भुवन में वृष्टि करे; पृथ्वी धान्य से पूर्ण हो, मेरी मुर और नरक के शत्रु आप में अद्वैत सम्बन्ध से भक्ति हो। और दीर्घकाल पर्यन्त देव लोग हवि का भोग करते रहें ॥४७॥

कृष्ण—ऐसा ही होगा।

(सब निकल जाते हैं)

* षष्ठ अङ्क समाप्त *

वेणीसंहार नाम का नाटक समाप्त हुआ।

जनाना चेति शेषः। पण्डितगुणेषु पण्डितजनो विहितहृदयो दत्तचित्तः सानुरागो वा भवतु। भूपः [दयितं भुवनं यस्य तथा प्रियलोकः। विदुषां बन्धुः। विशेषविद्विशिष्टगुणज्ञः] सदा पुण्यवान्प्रसाधितराजचक्रश्च भूयात् ॥४६॥

जलधराली मेघपंक्तिः जगति वृष्टिं विधत्ताम्। भूमिः शस्यैः पूर्णा धान्यादिसमृद्धिमती अस्तु। मुरनरकयोस्तन्नामकदैत्योः शत्रौ। अद्वतयोगादनन्यमनसा भक्तिः भवतु। देवाः हव्यं होमेषु हुतमाज्यादि सुदीर्घं बहुकालमश्नन्तु ॥४७॥

* इति षष्ठोऽङ्कः *

टिप्पणकृतो जगद्धरस्य वंशादिकीर्तनम्

कतीह नाटकाम्बुधौ स्फुरन्ति वोज्ज्वला रसाः ।
मदीयबुद्धिरल्पिका क्व वेद तानशेषतः ॥१॥

नानादरं मम कृतो नियतं तनुध्व-
मत्राधुनातनतया गुणदोषविज्ञाः
ग्राह्यं शिशोरपि सुभाषितमित्यमात्य
यूयं ततोऽपि मम टिप्पनमाद्रियध्वम् ॥२॥

लब्धं दुर्लभशासनं सुरगणग्रामोऽभिरामो गुणै-
र्विद्यावंशविभूषणे अपि शुभे छत्रे उभे धारिते ।
येनायं समभूद् द्विजातितिलकश्चण्डेश्वरः पण्डितो
मीमांसैकरहस्यवश्यहृदयो दातावदाताशयः ॥३॥

प्रासूतासावहितनगरीनागरीगीतकीर्ति
विप्रं क्षीप्रं गुणदमधिकं वेदपूर्वं धरं तम् ।
कैवर्तानामलभत नृपाच्छासनं सोऽप्युच्चै-
रापत्पुत्रं गुणमयतनुं रामपूर्वंधरान्तम् ॥४॥

सोऽयं थुवामनगरे पदमाप शुद्धे
मीमांसको विमलकीर्तिपवित्रमूर्तिः ।
पुत्रं गदाधरमवाप गुणैरगाधं
सत्ताग्निकं गुणिगणप्रथिताभिमानम् ॥५॥

असूत विद्याधरमेव धीरं गुणैरनूनं सुकृताधिवासम् ।
तं रत्नपूर्वं धरमाप पुत्रं सोऽपि प्रसिद्धं गुणिनां गुणेन ॥६॥

दमयन्त्यामयं धीरो लेभे सुतमरिंदमम् ।
श्रीजगद्धरनामानमनर्घगुणशालिनम् ॥७॥

विद्याछत्रं कुलच्छत्रं धारितं येन धीमताम् ।
जगद्धरः सुरगणे सोऽयं नैयायिकः कविः ॥८॥

येनापाठि कठोरगौतममतं वैशेषिकं खण्डनं
येनाश्रावि सकोपकाव्यनिवहं तत्पाणिनीयं मतम् ।
छन्दोऽलंकरणं च शुद्धभरतं येनाध्यगायि स्थिरं
तेनानेन जगद्धरेण कविना टीका कृतेयं मुदा ॥९॥

नानालंकृतिसुन्दरी रसवती नानागुणानां निधि-
र्नानाभावविभावनैकचतुरा नानार्थसार्थाधिका ।
टीकेयं विमलाङ्गनेव रहिता दोषैरशेषैरस-
स्तामेतामधिभूषयन्तु कृतिनस्तेभ्यो नमः सर्वदा ॥१०॥

यदि भवति मदीयग्रन्थमध्ये प्रमादः
क्वचिदपि स महिम्ना शोधनीयो महद्भिः ।
स्खलति गमनकारी प्रायशो नात्र चित्रं
भवति च गुरुहस्तालम्बनोऽपि प्रकारः ॥११॥

असूत यं रत्नधरो गुणीशो नानागुणाढ्या दमयन्तिकापि ।
जगद्धरं तस्य कृतौ व्यरंसीत्षष्ठोऽयमङ्को वरटिप्पनेऽत्र ॥१२॥

इति महामहोपाध्यायधर्माधिकारिक श्रीजगद्धरकृतौ
वेणीसंहारटीकायां षष्ठोऽङ्कः समाप्तः ।
॥ शुभमस्तु ॥

वेणीसंहारस्थश्लोकानां वर्णानुक्रमसूची

वेणीसंहारस्थश्लोकानां वर्णानुक्रमसूची

वेणीसंहारेस्थानि सुभाषितानि

वेणीमहारम्यानि सुभाषितानि

१ न युक्तं पराक्रमवतां वाङ्मात्रेणापि विरागमुत्पादयितुम् । २४४
२२ न युक्तं बन्धुव्यसन विस्तरेणावेदयितुम् । २५०
२३ न युक्तं धीरस्य क्षत्रियस्य प्रतिज्ञात शिथिलयितुम् । १७२
२४ पुण्यवन्तो हि दु खभाजो भवन्ति । ६२
२५ प्रकृतिर्दुस्त्यजा । २००
२६ ब्रह्मशोणित खल्वेतत् । गल दहद्दहन्प्रविशति । ३६
२७ भवति तनय सत्य सशय. साहसेषु ।
२८ तं मोहान्धः कथमयममु वेत्तु देव पुराणम् । ६८
२९ यदि समरमपास्य नास्ति मृत्योर्भयमिति युक्तमितोऽन्यत प्रयातुम् ।
अथ मरणमवश्यमेव जन्तो कि मनि मुधा मलिन यश कुरुध्वे ॥ २३४
३० यद्देवस्त्रिभुवननाथो भणति नन्कथमन्यथा भविष्यति ।
३१ यावत्क्षत्र तावत्समरविजयिनो जिना हताश्च वीरा ।
३२ यावत्प्राणिति तावदुपदेष्टव्यभूमिर्विजिगीषु प्रज्ञावताम् । १०८
३३ यावदयं ससारस्तावत्प्रसिद्धेवेय लोकयात्रा यत्पुत्रै पितरो लोकद्वये- १२४
ऽप्यनुवर्तनीया इति । २०६
३४ वक्तु सुकरमिद दुष्करमध्यवसितुम् । ६२
३५ विश्राव्य नामकर्मणी वन्दनीया गुरव. ।
३६ ■ एव स्निग्धो जनीय पृष्ट परुषमपि हित भणति । २०
३७ स्त्रीणा हि साहचर्याद् भवन्ति चेतासि भर्तृ सदृशानि । ४८
मधुरापि हि मूर्छयते विषविटपिसमाश्रिता वल्ली ॥ १८८
३८ स्वपञ्जन. कि न खलु प्रलपति ।
३९ हीयमानाः किल रिपोर्नृपा सदधते परान् ।

नाटक में प्रयुक्त छन्दों के लक्षण स्थल-निर्देश सहित

(१) अनुष्टुप् (श्लोक)—श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम्। द्विचतुः पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः॥ आठ अक्षरों के प्रत्येक चरण में पाँचवां अक्षर लघु और छठा अक्षर गुरु होता है, सातवां अक्षर प्रथम तथा तृतीय चरण में गुरु और द्वितीय तथा चतुर्थ चरण मे लघु होता है। अन्य अक्षरों मे लघु का नियम नही है। उदा० १. १३, १४, १६, १७, १८, १९, २६, २. ३, ४, १३, १४, २३, ३. १७, १८, २६, २८, ३१।

(२) पथ्यावक्त्र—युजोश्चतुर्थतो जेन पथ्यावक्त्रं प्रकीर्तितम्।

१. ६, ३. १४, ३६, ३७, ४१, ४२, ४३, ४६, ४८, ४६, ४. ४, ७, ६, ११, १४, ५ ४, ६, १२, १५, १७, १६, २०, २३, २४, २५, २, ३१, ३४, ३६, ६. ६, १०, ११, १४, १५, २६, ३२, ३२।

(३) आर्या—यस्याः पादे प्रथमे द्वादश मात्रास्तथा तृतीयेऽपि।
अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या॥

मात्रिक छन्द, चरणों में क्रमशः १२, १८, १२, १५, मात्रायें। उदा० १. ४, ५, ६, २०, ५. १०, १८।

(४) उपजाति—इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा का मिश्रण। इन्द्रवज्रा—स्यादिन्द्रवज्रा यदि तो जगौ गः। त, त, ज, ग, ग।

उपेन्द्रवज्रा—उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ। ज, त, ज, ग, ग। उदा० ६. ३।

(५) पुष्पिताग्रा—अयुजि नयुगरेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा। अर्धसमवृत्त; विषम चरण—न, न, र, य। समचरण—न, ज, ज, र, ग। उदा० ३. ६, ४. ३।

(६) पृथ्वी—जसौ जसयला वसुग्रहयतिश्च पृथ्वी गुरुः। ज, स, स, य, ल, ग! ८ वें अक्षर पर विराम। उदा० ३. ४, ३४, ६. १८।

(७) प्रहर्षिणी—त्र्याशाभिर्मनजरगाः प्रहर्षिणीम्। म, न, ज, र, ग; तीसरे अक्षर पर यति उदा० २. २८, ३. २७।

(८) मालिनी—ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः। न, न, म, य, य; आठवें अक्षर पर विराम। उदा० २. १५; ३, ४०; ५. २१, २७, ४०, ६. ३६, ४३।

(९) वसन्ततिलका—उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः। त, भ, ज, ज, ग, ग। उदा० १. ७, ८, १५, २१, २. ६, ११, २२, २५, २७; ३. १०, १२, १३, १५, २१, २९, ३०, ४४, ४. ५, ६, ८, १०; ५. २, ३, १३, १६, २२, ३२, ३८, ४२; ६. ४, ९, २१, २, २३, ३०, ३४, ३५, ३८।

(१०) शार्दूलविक्रीडित—सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम् म, स, ज, स, त, त, ग; बारहवें अक्षर पर विराम। उदा० १. २, १२, २४, २५; २. १, २, ८, १२, १६, १९, २४; ३. ५, ९, ३३, ३५, ४७; ४. १, १२; ५. १, ५, ७, ९, १८; ६. १, ७, १२, १३, १६, १७, १९, २७, ४४, ४५, ४८।

(११) शिखरिणी—रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला ग. शिखरिणी। य, म, न, स, भ, ल, ग; छठे अक्षर पर विराम। उदा० १. १, १०, ११; ३, १६, १९, २२, २५, ३८; ४५; ६. ५, २८, ३१, ४०।

(१२) स्रग्धरा—म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम् म, र, भ, न, य, य, य, सातवें और चौदहवें अक्षरों पर विराम। उदा० १. ३, २२. २७; २. १८, २१, २६; ३. ७, ३२; ४. २; ५. २६, २९, ३०, ३५; ३६, ३७, ६. २, ८, ३७, ३९, ४१, ४२।

(१३) हरिणी—नसमरसला गः षड्वेदैर्हरिणी मता। न, स, म, र, स, ल, ग; छठे और दसवें अक्षरों पर विराम। उदा० ३. २४; ५. ८, ४१, ६, २४, ४६।

(१४) द्रुतविलम्बित—द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ। न, भ, भ, र। उदा० २, २०।

(१५) मन्दाक्रान्ता—मन्दाक्रान्ता जलधिषडगैर्म्भौ नतौ ताद् गुरू चेत् म, भ, न, त, ग, ग; चौथे और दसवें अक्षरों पर विराम। उदा० १. २३, २. ७, १०, १७; ३. ८, ११, २०, २३; ४. १३, १५; ५. ३३; ६. २० २५, २६।

(१६) मञ्जुभाषिणी—सजसा जगौ च यदि मञ्जुभाषिणी। स, ज, स, ज, ग। उदा० ३. ३६; ५. १४।

(१७) वियोगिनी या सुन्दरी—विषमे ससजा गुरु समे सभरा लोऽथ गुरु-वियोगिनी। अर्धसमवृत्त, विषम चरण—स; स, ज, ग; समचरण—स, भ, र, ल, ग। उदा० २ ५।

(१८) औपच्छन्दसिक—पर्यन्ते यौ तथैव शेषमौपच्छन्दसिकं सुधीभिरुक्तम्। औपच्छन्दसिक छन्द में वियोगिनी के चरण के अन्त में एक गुरु अक्षर और जोड़ दिया जाता है। इसलिये, विषम चरण—स, स, ज ग, ग; समचरण—स, भ, र, य। उदा० २. ६।